

चितवनि महिमा

टीका एवं भावार्थ
श्री राजन स्वामी

संकलनकर्ता
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

प्रकाशक
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट
सरसावा, जिला-सहारनपुर (उ.प्र.)

प्रथम आवृत्ति - १००० प्रतियां, अप्रैल २०२१

प्रकाशक :

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

सरसावा, जिला-सहारनपुर (उ.प्र)

वेबसाइट - www.spjin.org

E-mail - Shriprannathgyanpeeth@gmail.com

Whatsapp- 7533876060

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन © :

इस पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री सत्वाधिकारी श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट के पास सुरक्षित है। अतः किसी भी व्यक्ति या संस्था के द्वारा इस पुस्तक का नाम, फोटो, कवर या डिजाइन, एवं प्रकाशित लेख इत्यादि को किसी भी तरह से तोड़ मरोड़ कर आंशिक या पूर्ण रूप से किसी पुस्तक, पत्रिका, समाचार पत्र या वेबसाइट में प्रकाशित करने से पूर्व प्रकाशक की अनुमति लेना अनिवार्य है, अन्यथा समस्त कानूनी हर्जे-खर्चे के जिम्मेवार होंगे। किसी भी प्रकार के मुकदमे के लिये न्याय क्षेत्र सरसावा, जिला सहारनपुर ही होगा।

ISBN No.- 978-93-85094-37-8

मुद्रक :- ज्ञानपीठ मुद्रणालय (प्रेस)

प्राणाधार सुन्दरसाथ जी! आत्म-जागृति ऐसे प्रत्येक सुन्दरसाथ का परम लक्ष्य है जिन्होंने इस जागनी के ब्रह्माण्ड में स्वयं को ब्रह्मसृष्टि माना है। किन्तु आत्म-जागृति के लिये केवल पाठ-पारायण, सेवा-पूजा अथवा विभिन्न प्रकार की कर्मकाण्ड वाली भक्ति ही पर्याप्त नहीं है।

आत्म-जागृति के लिये वाणी मन्थन, सेवा तथा चितवनि का कोई विकल्प नहीं है। वाणी मन्थन से प्रियतम की पहचान होती है, सेवा से जीव में निर्मलता आती है तथा चितवनि से हमारे धाम हृदय में विराजमान प्रियतम की छवि का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। परन्तु यह दुःखद आश्चर्य की बात है कि जिस निजानन्द दर्शन में संसार की सर्वोच्च ध्यान पद्धति (निजानन्द योग) का ज्ञान दिया गया है, वही समाज आज ध्यान से कोशों दूर होकर मात्र कर्मकाण्ड के पालन में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझ रहा है।

तब तो और अधिक आश्चर्य होता है जब समाज के तथाकथित ज्ञानी वर्ग के द्वारा इस प्रकार की भ्रांति का प्रचार किया जाता है कि चितवनि नहीं करनी चाहिए, चितवनि करने से शरीर छूट जाता है। राज जी का दर्शन करने से मृत्यु हो जाती है।

यह ग्रन्थ प्रत्येक सुन्दरसाथ के लिये चितवनि करने की अनिवार्यता को सिद्ध करने में प्रेरक होगा तथा सभी तथाकथित स्वयंभू ज्ञानियों की भ्रामक विचारधारा को खण्डित करेगा। क्योंकि इसमें रास से कियामतनामा की उन सभी चौपाईयों को समाविष्ट किया गया है, जिनमें प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से चितवनि करने की प्रेरणा दी गई है।

वैसे तो सम्पूर्ण परिक्रमा, सागर तथा सिनगार ग्रन्थ चितवनि से ही सम्बन्धित हैं, फिर भी ग्रन्थ के आकार को ध्यान में रखते हुये हमने उन्हीं चौपाईयों को चुना है, जिनमें स्पष्ट रूप से चितवनि करने की बात कही गई है।

सुन्दरसाथ से आग्रह है कि सभी प्रकार की वैचारिक दुराग्रहों को हटाते हुये कृपया इन सभी चौपाईयों के द्वारा प्रियतम श्री राज जी हमें क्या आदेश दे रहे हैं, उसको आत्मसात् करें तथा इस ग्रन्थ से चितवनि की महिमा को समझते हुये व्यवहारिक चितवनि में डूब जायें तथा अपने प्रियतम तथा परमधाम को अपने हृदय में अनुभव करें।

आशा है यह ग्रन्थ आपके जीवन में ज्ञान का नया प्रकाश तथा चितवनि करने की नयी प्रेरणा और उमंग लेकर आयेगा। धाम धनी आप सभी सुन्दरसाथ को अपनी शोभा में डूबोयें, इसी कामना के साथ।

आपका
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

रास

प्रकरण १

पचवीस पख छे आपणा, तेमा कीजे रंग विलास।

प्रगट कह्या छे पाधरा, तमे ग्रहजो सहु साथ॥७६॥

हे साथ जी! अपने परमधाम में पच्चीस पक्ष हैं। इनकी शोभा में चितवनि द्वारा आप अलौकिक आनन्द का रसपान करें। धाम धनी ने आत्म-जागृति के लिये चितवनि का यही मार्ग स्पष्ट रूप से बताया है। आप इसका अनुसरण अवश्य करें।

आपणू धन तां एह छे, जे दिए छे आधार।

रखे अधखिण तमें मूकतां, वालो कहे छे वारंवार॥८०॥

हमारे जीवन के आधार अक्षरातीत ने २५ पक्षों की चितवनि का जो ज्ञान दिया है, वह हमारी सर्वोपरि सम्पदा है। प्रियतम बारम्बार यह बात कह रहे हैं कि हे साथ जी! आधे पल के लिये भी चितवनि के सुख को न छोड़ें।

द्रष्टव्य— उपरोक्त दोनों चौपाइयां चितवनि की सर्वोपरि महत्ता को ही दर्शा रही हैं। यद्यपि ज्ञान तथा सेवा का भी महत्व है, किन्तु प्रेममयी चितवनि को छोड़कर आत्मजागृति की कल्पना करना एक दिवा स्वप्न ही है।

प्रकरण ३

हवे रे तूने हूं जे कहूँ, ते तू सांभल द्रढ करी मन।

पचवीस पख छे आपणा, तेमां झीलजे रात ने दिन॥२२॥

रे जीव! अब मैं तुमसे जो बात कह रही हूँ, उसे तू दृढ़ मन से सुन। अपने परमधाम में पच्चीस पक्ष हैं। तू दिन-रात उनकी शोभा के ध्यान (चितवनि) में डूबा रह।

प्रकाश

प्रकरण ३

जब लग तुम रहो माया में, जिन खिन छोड़ो रास जी।

पचीस पख लीजो धाम के, ज्यों होए धनी को प्रकास जी॥५॥

इस माया के खेल में जब तक आपको रहना पड़े तब तक आप रास ग्रन्थ के सार तत्त्व प्रेम को न छोड़िये। परमधाम के पच्चीस पक्षों की अनुपम शोभा को अपने धाम हृदय में बसा लीजिए, जिससे आपको धाम धनी के स्वरूप की यथार्थ रूप से पहचान हो जाय।

भावार्थ— रास ग्रन्थ का चिन्तन करने से उसके सार तत्त्व 'प्रेम' को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति पैदा होती है, जो हमारी आत्म जागृति का आधार है। परमधाम की प्रेममयी चितवनी के द्वारा ही हृदय के विकार नष्ट होते हैं और धाम धनी की यथार्थ पहचान होती है। केवल शुष्क शाब्दिक ज्ञान

के द्वारा प्रियतम को यथार्थ रूप में नहीं जाना जा सकता।

प्रकरण ८

साहेब चले वतन को, केहे केहे बोहोतक बोल।

धिक धिक पड़ो मेरे जीव को, जिन देख्या न आंखां खोल॥४॥

मेरे सर्वस्व, मेरे जीवन के आधार धनी ने मुझे जागृत करने के लिये मेरे ऊपर तारतम ज्ञान की बहुत अधिक अमृत वर्षा की और अदृश्य हो गये। मेरे इस निष्ठुर जीव को धिक्कार है, जिसने अपनी अन्तर्दृष्टि को खोलकर उनके स्वरूप की पहचान नहीं की।

भावार्थ— यद्यपि 'आंखें खोलना' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है— सावधान हो जाना, किन्तु यहां अन्तर्दृष्टि या विवेक दृष्टि खोलने का प्रसंग है।

प्रकरण १०

सुख धाम के जो पाइए इत, सो काहूँ मेरी आतम न देखे कित।

इन अंग की जुबां किन विध कहे, जो सुख कहूँ सो उरे रहे॥२१॥

परमधाम के जिन सुख का अनुभव यहां किया जा सकता है, मेरी आत्मा उन्हें अपने अतिरिक्त अन्य कहीं भी किसी के अन्दर अनुभव होते हुए नहीं देख पा रही है। किन्तु इस नश्वर तन की जिह्वा से उसका वर्णन मैं कैसे करूँ ? मैं जो कुछ भी कहती हूँ तो वह वर्णन इधर (बैकुण्ठ—निराकार तक) ही रह जाता है।

भावार्थ— कुछ सुन्दरसाथ के मन में यह भ्रान्ति थी कि गादी पर बैठने मात्र से बिहारी जी की आत्मा परमधाम के सुखों (युगल स्वरूप एवं पच्चीस पक्षों की शोभा का दर्शन तथा वर्णन करने की सामर्थ्य) का अनुभव कर रही है। उनके इस भ्रम का निराकरण करने के लिये ही यह चौपाई अवतरित हुई है। इसके दूसरे चरण में कथित 'काहूँ' और 'कित' शब्दों का प्रयोग यही दर्शा रहा है। किसी आध्यात्मिक महान पुरुष के आसन (गादी) का आभा मण्डल अवश्य पवित्र होता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उस आसन में ही अक्षरातीत की सारी कृपा दृष्टि बरसती हैं तथा उस पर बैठने मात्र से परमधाम का दर्शन होने लगेगा या वह व्यक्ति अक्षरातीत कहलाने लगेगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये तो स्वयं को विरह—प्रेम की अग्नि में जलाकर निर्विकार होना पड़ेगा। जैसा कि इस चौपाई की अगली चौपाई के तीसरे चरण में कहा गया है— 'ए सुख विलसूँ होए निरदोस'।

यह विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य है कि छठें दिन की लीला में प्रत्येक सुन्दरसाथ को यह स्वर्णिम अवसर प्राप्त है कि वह तारतम के तारतम (खिल्वत, परिक्रमा, सागर एवं श्रृंगार) को आत्मसात् करके तथा विरह एवं प्रेम में स्वयं को भस्मीभूत करके परमधाम के सभी सुखों का अनुभव प्राप्त कर सकता है। बिहारी जी गादी पर भले ही बैठे रहें, किन्तु वे तारतम ज्ञान, अटूट विश्वास (ईमान) तथा विरह—प्रेम से रहित होने के कारण इस सुख से वंचित ही रहे।

प्रकरण २०

धनी मिले स्वांत न कीजे, क्यों बैठिए करार।

जाग दौड़ कीजे सब अंगों, स्वांत कीजे संसार।।३४।।

हे जीव! अब तुझे ज्ञान दृष्टि से धाम धनी के चरण कमल प्राप्त हो चुके हैं। ऐसी अवस्था में तुझे आनन्द मनाते हुए चुपचाप शान्ति पूर्वक नहीं बैठे रहना चाहिए। तू आलस्य की नींद को छोड़कर प्रियतम को अपने धाम हृदय में बसाने के लिये सचेत हो जा और अपने सभी अंगों (मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार) में प्रेम भरकर उनकी ओर निरन्तर उन्मुख हो। इस प्रपंचमय संसार से उदासीन हो जा।

भावार्थ—तारतम्य वाणी का बाह्य ज्ञान ग्रहण करने के पश्चात् सुन्दरसाथ में प्रायः यह भावना घर कर जाती है कि अब तो मैंने श्री राजजी को जान ही लिया है, चितवनी में इतना परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है? किन्तु यह प्रवृत्ति आध्यात्मिक जीवन में उन्नति के रथ को रोक देती है। ज्ञान का उद्देश्य सत्य को दर्शाना होता है, प्राप्त कराना नहीं। धाम धनी को अपने हृदय में बसाने के लिये चितवनी का मार्ग अपनाना ही पड़ेगा। मात्र शब्द ज्ञान ही सब कुछ नहीं है।

स्वांत कहे मैं तबलों थी, जोलों नींद हुती आतम।

अब मैं बैठी तरफ माया के, विलसो अपना खसम।।३५।।

शान्ति कहती है कि मैं तभी तक थी, जब तक आत्मा के ऊपर नींद का आवरण पड़ा हुआ था। अब मैं आपको छोड़कर माया में अपना निवास बनाने जा रही हूँ। आप अपने प्रियतम अक्षरातीत के साथ आनन्द में मग्न रहिए।

भावार्थ—इस चौपाई में यह बात विशेष रूप से दर्शायी गयी है कि तमोगुण एवं रजोगुण के संस्कारों से ही इस प्रकार की मानसिकता पैदा होती है कि शब्द ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात् अन्य कुछ (चितवनी, सेवा, जागनी आदि) करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार की विचारधारा को संसार की ओर केन्द्रित कर देना चाहिए और धाम धनी को अपने हृदय मन्दिर में बसाने के लिये पूर्ण पुरुषार्थ करना चाहिए।

तुझमें बल है सावचेती, चित चेतन अति रोसन।

परआतम बस कर दे आतमा, ना होए अंतराए एक खिन।।३६।।

हे सतर्कता (सजगता)! तुम्हारे अन्दर आत्म जागृति करने के लिये विशेष बल है। तू मेरे जीव के हृदय को निरन्तर सजग रख जिससे उसमें जागनी का बहुत अधिक प्रकाश भर जाय। मेरी आत्मा को परात्म के वश में कर दे जिससे प्रियतम से एक क्षण के लिये भी अलगाव का अनुभव न हो।

भावार्थ—परात्म साक्षात् धाम धनी का तन है, इसलिये उसके हृदय में वही कुछ होता है जो श्री राज जी के हृदय में होता है। आत्मा जीव के ऊपर अधिष्ठित होकर इस संसार की दुखमयी लीला को देख रही है। इस प्रकार परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा होते हुए भी आत्मा के हृदय में जीव के मनोविकारों एवं सांसारिक सुख दुःख की लीला भी भर जाती है। यदि जीव में आत्म-जागृति

के प्रति सजगता का गहन भाव पैदा हो जाता है तथा वह तारतम वाणी के चिन्तन एवं युगल स्वरूप की चितवनी में लग जाता है तो विरह की अग्नि में जलने लगता है। फलतः आत्मा प्रेम रस का पान करने लगती है तथा युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में बसाने लगती है। इसी अवस्था को आत्मा का परात्म के वश में अर्थात् समरूप हो जाना कहते हैं। सागर 11/44 में इस तथ्य को इस प्रकार दर्शाया गया है—

अन्तस्करण आतम के, जब ए रहयो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥

इस स्थिति को प्राप्त कर लेने पर एक क्षण के लिये भी धनी से वियोग का अनुभव नहीं होता।

प्रकरण २२

आंखां खोल तूं आप अपनी, निरख धनी श्री धाम।

ले खुसवास याद कर, बांध गोली प्रेम काम॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे मेरी आत्मा! अब तू तारतम ज्ञान के प्रकाश में अज्ञानता की निद्रा को छोड़कर अपनी अन्तर्दृष्टि को खोल और अपने प्राणजीवन आराध्य को देख। दिव्य प्रेम के स्वर्णिम पथ पर चलते हुए प्रेम की सुगन्धि ले और प्रियतम को अपने हृदय सिंहासन पर विराजमान कर।

भावार्थ— प्रेम काम की गोली बांधने का अर्थ है— स्वयं के लिए ऐसे मार्ग का अनुसरण करना जिससे प्रेम के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की इच्छा ही न हो। इसी प्रकार याद करने का आशय वाणी द्वारा शुष्क भाव से नाम जपना नहीं बल्कि अपने हृदय की पुकार द्वारा अपने हृदय में सर्वदा के लिये बसा लेना है।

प्रेम प्याला भर भर पीऊँ, त्रैलोकी छाक छकाऊँ।

चौदे भवन में करुं उजाला, फोड़ ब्रह्माण्ड पिउ पास जाऊँ॥२॥

मेरी एकमात्र यही कामना है कि अपने हृदय रूपी प्याले में प्रियतम के प्रेम का अमृत रस भर लूं तथा आनन्द मग्न होकर उसका पान करूं। केवल इतना ही नहीं, तीनों लोकों (पृथ्वी, स्वर्ग एवं बैकुण्ठ) को भी इसी प्रेम रस से मैं पूर्णतया तृप्त कर देना चाहती हूं। मैं चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र ही तारतम ज्ञान का प्रकाश फैला देना चाहती हूं। इसके अतिरिक्त अपनी अन्तर्दृष्टि से इस ब्रह्माण्ड को भी पार करके निराकार तथा बेहद मण्डल को भी उल्लंघन कर परमधाम में अपने अनन्त सौन्दर्य से विराजमान अपने सर्वस्व अक्षरातीत का मैं प्रेम भरा दर्शन करना चाहती हूं।

भावार्थ—वैदिक दृष्टि से तीन लोक (त्रैलोकी) इस प्रकार है—

1. पृथ्वी—जिसमें सभी स्थूल लोक आ जाते हैं।

2. अन्तरिक्ष— अनन्त आकाश, जिसमें सभी स्थूल लोक विद्यमान है।

3. द्युलोक— जहां से आकाशगंगाएं प्रकट होती हैं, किन्तु उपरोक्त चौपाई की मान्यता में पौराणिक मान्यता का ही भाव झलकता है। पृथ्वी पर ही सातों पाताल लोकों (सातों समुद्रों के निकटवर्ती भूभागों) को जोड़ लेने पर चौदह लोकों की मान्यता सिद्ध हो जाती है।

खोल आंखां तूं हो सावचेत, पेहेचान पिउ चित ल्याए।

ले गुन तूं हो सनमुख, देख परदा उड़ाए।।५।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे जीव! अब तो तूं सावधान हो जा और अपनी अन्तर्दृष्टि को खोल। प्रियतम की पहचान करके उन्हें अपने हृदय मन्दिर (चित्त) में बसा। प्रियतम के प्रेम (गुण) को आत्मसात् करके माया का पर्दा हटा दो और अपने सम्मुख उनका प्रत्यक्ष दर्शन करो।

द्रष्टव्य— उपरोक्त चौपाई के तीसरे चरण में 'गुण' शब्द का अभिप्राय तीनों गुणों से नहीं बल्कि प्रेम (गुण) से है। इसी के द्वारा प्रियतम का साक्षात्कार होता है।

धिक धिक पड़ो मेरे सब अंगों, जो न आए धनी के काम।

बिना पेहेचाने डारे उलटे, ना पाए धनी श्री धाम।।१०।।

मेरे शरीर के उन सभी अंगों को धिक्कार है जो धाम धनी की पहचान करने एवं सेवा करके रिझाने के काम में नहीं आ सके। प्रियतम की पहचान न होने से इन्होंने मुझे उल्टी (माया की) राह पर डाल दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि मैं अपने प्राणेश्वर का साक्षात्कार नहीं कर पायी।

द्रष्टव्य— वस्तुतः यह कथन सांकेतिक रूप से हम सुन्दरसाथ के लिये है, जो मायावी सुखों के पीछे भागकर प्रियतम के मधुर दर्शन (शरबत-ए-दीदार) से वंचित हो जा रहे हैं।

प्रकरण २३

कहे इन्द्रावती अति उछरंगे, फोड़ ब्रह्मांड करूं रोसन।

सीधी राह देखाऊं जाहेर, ज्यों साथ सुखे आवे वतन।।२१।।

अत्यधिक उत्साह में भरकर श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैं इस ब्रह्माण्ड से परे जाकर बेहद मण्डल को भी उलंघ लूं तथा अपने हृदय में परमधाम की अनन्त शोभा को आत्मसात् (प्रकाशित) कर लूं। सब सुन्दरसाथ को मैं जागनी का सहज सीधा मार्ग बताना चाहती हूँ। इस मार्ग का अनुसरण करके सब सुन्दरसाथ आनन्दपूर्वक परमधाम आ सकता है।

भावार्थ— ब्रह्माण्ड को फोड़ने का तात्पर्य है आत्मिक दृष्टि से इससे परे हो जाना। वस्तुतः यह सारा कथन सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये कहा गया है। इसी प्रकार परमधाम आने का भाव यह है कि जब चितवनि के द्वारा आत्मिक दृष्टि से परमधाम का साक्षात्कार हो जायेगा तो आत्मा जाग्रत हो जायेगी। महाप्रलय के पश्चात् तो सबकी आत्मा अपनी परात्म में एक साथ जाग्रत हो ही जायेगी।

प्रकरण २४

करतब चितवनी और सेवा करे, माया गुन उलटे परहरे।

मनसा वाचा कर करमना, करे दौड़ प्यार अति घना।।४।।

प्रियतम को रिझाना ही अपना कर्तव्य मानकर जो चितवनी और सेवा करता है तथा मन, वाणी एवं कर्म से उनके प्रति बहुत अधिक प्रेम की भावना रखता है, वह अनायास ही माया के उल्टे गुणों अर्थात् विकारों को दूर कर लेता है।

पर जब लग दया तुमारी न होए, तब लग काम न आवे कोए।

ए परीछा में करी निरधार, देखे सबके सब्द विचार॥५॥

किन्तु जब तक आपकी प्रेम भरी दया (कृपा) न हो तब तक चितवनी, सेवा और पुरुषार्थ आदि से भी कोई विशेष लाभ नहीं होता। मैंने इस बात का अच्छी प्रकार से परीक्षण किया है तथा सभी मनीषी जनों के कथनों पर विचार करके मैंने यह निर्णय किया है कि आपकी कृपा ही सर्वोपरि है।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाई के कथन का आशय यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि चितवनी और सेवा का कोई महत्व ही नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि आत्म-जागृति के लिये ज्ञान, प्रेममयी चितवनी और सेवा का कोई विकल्प ही नहीं है। श्री मुखवाणी कि. 79/14 के कथन 'कृपा करनी माफक' और 'कृपा माफक करनी' को ध्यान में रखते हुए हमें निष्काम भावना के साथ प्रेम, चितवनी और सेवा के कार्य में इस आशा के साथ लगे रहना चाहिए कि 'जब तुम आप दिखाओगे, तब देखूंगी नैन नजर जी।'

प्रकरण २५

कोई सोए रहियां आतन में, उठियां तब उदमाद।

दुख पाया तब दिल में, जब सूत आया याद॥११॥

कोई तो सूत कातने के आंगन में मात्र सोती ही रहती हैं और जब उठती हैं तो उनमें नींद का आलस्य (खुमारी, नशा) बना ही रहता है। जब उन्हें सूत कातने की याद आती है तो अपने मन में वे बहुत दुःखी होती हैं कि मैंने अपना सारा समय सोने में ही खो दिया है।

भावार्थ— कुछ सुन्दरसाथ ऐसे हैं जो न तो तारतम वाणी का ज्ञान ही ग्रहण करते हैं, न सेवा और न चितवनी। ऐसी अवस्था में मात्र नाम के ही वे सुन्दरसाथ कहलाते हैं। ज्ञान, श्रद्धा, समर्पण एवं प्रेम से रहित होने के कारण वे आत्म जागृति के पथ पर एक कदम भी नहीं चले होते हैं। परिणाम स्वरूप उनका अन्तिम समय प्रायश्चित के आँसुओं में ही बीतता है।

एक फेरे चरखा उतावला, दिल बांध तांत के साथ।

रातों भी करे उजागरा, सूत होवे तिनके हाथ॥१६॥

एक सखी चरखे को तेजी से घूमाती है फिर भी उसका ध्यान सूत की गुणवत्ता तथा सुरक्षा के प्रति बना रहता है। इस लक्ष्य को पूर्ण करने के लिये वह रात्रि के समय भी जागरण करती है और सूत कातती है। उस समय भी उसके हाथ में सूत ही होता है।

भावार्थ— तारतम वाणी के अलौकिक ज्ञान को शीघ्रता पूर्वक ग्रहण करने के साथ-साथ यदि रात्रि के समय चितवनी भी की जाय तो स्वर्ण में सुगन्धि की अवस्था हो जाती है। प्रेम पाने का एकमात्र मार्ग युगलस्वरूप एवं परमधाम की चितवनी ही है। ज्ञान और प्रेम का अद्भुत संगम हमारे जीवन को धन्य-धन्य कर देता है।

ना कछू कात्या रात में, ना कछू कात्या दिन।

सो वतन बीच सैयन में, मुख नीचा होसी तिन॥१६॥

जिन्होंने न तो रात में ही कुछ सूत काता (प्रेम किया या प्रेममयी चितवनी की) और न दिन

के समय ही। वे जब मूल-मिलावे में अपने मूल तन में जागृत होंगी तो अन्य सखियों के बीच में लज्जा से उनका शिर झुक जायेगा।

प्रकरण २६

भट परो नींद मोह की, जो टाली न टले क्यों।

आंखां खोल सीधा कहे, फेर वली त्यों की त्यों॥१॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि इस अज्ञानमयी निद्रा को धिक्कार है जो बार-बार प्रयास करने पर भी छूटती नहीं है। इससे उलझी हुई सखियां निद्रा का त्याग कर यदि आंखें खोलती हुई कुछ करने का प्रयास भी करती हैं, तो मायावी नींद का इतना गहरा नशा होता है कि वह पुनः सो जाती है।

भावार्थ— तारतम वाणी का प्रकाश पाकर यदि कोई ब्रह्मसृष्टि माया (लौकिक सुख का मोह सांसारिक स्नेह बन्धन, स्वयं की पद-प्रतिष्ठा) को छोड़कर धनी से प्रेम करने के लिये जैसे ही कदम बढ़ाती है, वैसे ही वह पुनः पूर्व अवस्था (माया में आसक्त) हो जाती है। ज्ञान तो मात्र पथ प्रदर्शक है। माया का प्रेम छोड़कर धनी से प्रेम (चितवनी) करने पर ही माया छूट सकती है, अन्यथा नहीं।

एक औरों को उलटावहीं, कहा बिध होसी तिन।

कातना उन पीछा पड़या, सामी धके दिए औरन॥५॥

कुछ ऐसी भी सखियां हैं जो अन्य सखियों को तारतम वाणी के चिन्तन एवं चितवनी के विरुद्ध उल्टे मार्ग (कर्मकाण्ड) में लगा देती हैं। ऐसा करने वाली सखियों की स्थिति क्या होगी? उनके बहकाने से अन्य सखियां स्वयं तो प्रेम का सूत कातना बन्द ही कर देती हैं, अन्य को भी अपनी राह में सम्मिलित कर लेती हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में धक्का देने का आशय बहकाकर पतन की गर्त में गिराने से है। अपने शब्दजाल से सम्मोहित करके किसी को चितवनी की राह से हटाना बहुत बड़ा अपराध है। इस प्रकार का कुतर्क केवल नादान लोग ही दे सकते हैं कि चितवनी करने से मृत्यु हो सकती है क्योंकि अनन्त तेजोमय श्रीराजजी को कैसे देखा जा सकता है या छठें दिन की लीला में कैसे दर्शन हो सकता है? उन मन्दभाग्य सुन्दरसाथ से प्रश्न है कि यदि चितवनी करने से शरीर छूट सकता है तो श्री देवचन्द्र जी, श्री मिहिरराज जी एवं महाराजा छत्रशाल जी का क्यों नहीं छूटा? क्या वे चितवनी नहीं करते थे? यदि छठें दिन की लीला में दर्शन नहीं हो सकता तो परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी को दर्शन क्यों हुआ? वे भी तो रात-रात भर चितवनी करते थे। उनका शरीर क्यों नहीं छूटा?

प्रकरण २६

पिउ पेहेचान टालो अंतर, परआतम अपनी देखो घर।

इन घर की कहा कहूं बात, वचन विचार देखो साख्यात॥१३॥

श्री मुखवाणी के प्रकाश में प्रियतम अक्षरातीत की पहचान करके माया के परदे को हटा दीजिए तथा प्रेममयी चितवनी के द्वारा अपनी परात्मा एवं परमधाम को देखिये। अपने परमधाम के

सम्बन्ध में मैं क्या कहूँ? आप तारतम ज्ञान से उसका चिन्तन करके प्रेममयी चितवनी के द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन कीजिए।

प्रकरण ३०

इन उजाले जेहेर उतरसी, तब बढ़ते बल नहीं बेर जी।

परआत्म को आत्म देखसी, तब उतर जासी सब फेर जी॥४४॥

हृदय में तारतम वाणी का प्रकाश होते ही माया का विष समाप्त हो जायेगा। उस समय आत्मबल की वृद्धि में नाम मात्र भी देर नहीं लगेगी। जब आपकी आत्मा अपने जीव भाव को छोड़कर अपने मूल तन परात्म को देखेगी तो सभी प्रकार के बन्धनों (अज्ञानता एवं जन्म मरण के चक्र आदि) से छुटकारा हो जायेगा।

भावार्थ— जिस प्रकार किसी चलचित्र (फिल्म) के किसी मनोहर दृश्य को देखने में हम इतने तल्लीन हो जाते हैं कि हम स्वयं को उस दृश्य को एक भाग मानने लगते हैं। हमें कुछ पलों के लिये इसका जरा भी अहसास नहीं होता कि हम इस दृश्य के भाग नहीं हैं, बल्कि द्रष्टा हैं। दृश्य को आत्मसात् करने के पश्चात् जब हम अपनी पूर्व स्थिति में आते हैं तो हमें वास्तविकता का आभास होता है कि हम कहीं खो गये थे। ठीक इसी प्रकार आत्मा जीव के ऊपर बैठ कर उसके द्वारा किये जाने वाले अच्छे-बुरे कार्यों को भले ही देखती है, किन्तु आत्मसात् उतना ही करेगी जो उसके अनुकूल होगा अर्थात् वह परमधाम की शोभा, लीला एवं अक्षरातीत से सम्बन्धित तथ्यों को ही ग्रहण करेगी। विषय भोग या बुरे कर्मों से सम्बन्धित किसी भी विषय को वह ग्रहण नहीं करेगी, यद्यपि द्रष्टा रूप में उसे देखेगी अवश्य, किन्तु जिस प्रकार किसी तैलीय कागज पर रंग चढ़ाने पर वह चढ़ता नहीं है, उसी प्रकार आत्मा के निर्विकार स्वरूप पर जीव के द्वारा किये जाने वाले विषय भोगों की स्मृति की काली छाया नहीं पड़ सकती। सूर्य का प्रकाश यदि मल-मूत्र पर पड़ भी जाय तो सूर्य या उसके प्रकाश में दुर्गन्ध का अस्तित्व नहीं रहेगा। हाँ, वहां स्थित वायु या स्थान रूपी जीव अवश्य प्रभावित होगा।

जीव के द्वारा तारतम वाणी का जो चिन्तन किया जाता है, उसमें वह अपनी बौद्धिक एवं मानसिक क्षमता के अनुसार ही तथ्यों को ग्रहण करता है। तारतम वाणी को अपने संस्कारों के अनुसार ही आत्मसात् भी करता है। यदि ऐसा कहा जाय कि हम तारतम वाणी का जो भी चिन्तन-मनन करते हैं वह परात्म तक पहुँच रहा है तो यह पूर्णतः सत्य नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार कोई चुम्बक मात्र लोहे के टुकड़े को ही आकर्षित करता है, प्लास्टिक के टुकड़ों को नहीं, उसी प्रकार परात्म केवल अपने एवं अक्षरातीत सम्बन्धी तथ्यों को ही आत्मसात् करेगी।

तारतम वाणी में वर्णित अन्य धर्म ग्रन्थों के विभिन्न विषयों तथा तर्क-वितर्क से परात्म का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि वह साक्षात् अक्षरातीत की अंगरूपा है। वह परमधाम के एकत्व में है, उसमें संसार के लौकिक विषयों के ज्ञान को ग्रहण करने की प्रवृत्ति ही नहीं है। इस तथ्य को इस दृष्टान्त से समझा जा सकता है कि जब हम गहन ध्यान से उठते हैं तो कुछ देर के लिये हम किसी भी प्रकार की निन्दा या विषय भोग की बुरी बातों को सुनने एवं ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते।

प्रकरण ३१

वतन देखत जाहेर, दूजी दोए लीला जो करी।

ए सब याद आवहीं, इत दोए दूसरी॥१२६॥

तारतम वाणी के प्रकाश में प्रेममयी चितवनी के द्वारा परमधाम का साक्षात्कार होता है। इसके अतिरिक्त उन दो लीलाओं (ब्रज एवं रास) की भी अनुभव होता है जो बेहद मण्डल में अखण्ड है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में दोनों स्वरूपों (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी एवं श्री प्राणनाथ जी) के द्वारा होने वाली दोनों लीलाओं का भी हृदय में छवि बनी रहती है।

याद आवें सारे सुख, और जीव नैनों भी देखे।

तारतम सब सुख देवहीं, विध विध अलेखें॥१३०॥

इस प्रकार तारतम वाणी के प्रकाश में सभी लीलाओं (ब्रज, रास, श्री देवचन्द्र जी और श्री प्राणनाथ जी) के सुखों की याद बनी रहती है तथा जीव भी चितवनी के द्वारा अपनी अन्तर्दृष्टि को खोलकर प्रत्यक्ष रूप से उनका दर्शन प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार तारतम ज्ञान से अनेक प्रकार के अनन्त सुख प्राप्त होते हैं।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाइयों में यह बात दृढ़ता से दर्शायी गयी है कि तारतम ज्ञान (वाणी) क प्रकाश में श्री राजजी के द्वारा धारण किये गये सभी स्वरूपों (ब्रज व रास के श्री कृष्ण तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी एवं श्री प्राणनाथ जी) एवं उनके द्वारा की गयी सभी लीलाओं को चितवनी के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है, किन्तु आज कल दुर्भाग्यवश चितवनी की राह से समाज को हटाकर माला के द्वारा मन्त्र जाप की क्रिया सिखायी जाती है। साथ ही यह भय पैदा कर दिया जाता है कि यदि तुम इसका मुख से उच्चारण कर दोगे तो इसकी शक्ति चली जायेगी। अपनी इस मिथ्या मान्यता की पुष्टि में तारतम देते समय भी कान में फूंकने की अन्ध परम्परा का पालन किया जाता है।

यह सर्वदा ही ध्यान रखना चाहिए कि अक्षरातीत के हृदय से प्रकट होने वाली तारतम की अमृत धारा भव बन्धन से छुड़ाने वाली है। उसको मुख से उच्चारित कर देने पर यदि उसकी शक्ति नष्ट होती है तो यह परमधाम की सर्वोच्च निधि कैसे कही जा सकती है ? ऐसी अवस्था में तो यह ब्रह्माण्ड की नश्वर वस्तु ही मानी जा सकती हैं।

चारों वेदों, ६ अंग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और व्याकरण), ६ उपांग (सांख्य, योग, वेदान्त, न्याय, मीमांसा तथा वैशेषिक), ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदों की व्याख्यान स्वरूप ११२७ शाखाओं में कहीं पर भी इस प्रकार के अन्धविश्वास का वर्णन नहीं हैं कि मन्त्रका उच्चारण कर देने से इसकी शक्ति चली जायेगी, इसलिये इसे कान में कहकर फूंक मारनी चाहिए।

तारतम ज्ञान का मूल उद्देश्य है अविद्या के अन्धकार को दूर करके सत्य का प्रकाश करना, जिससे जीवन के चरम लक्ष्य (प्रियतम के साक्षात्कार) को पाया जा सके। इसे कर्मकाण्डों एवं अन्ध विश्वासों के बन्धन में बांधना दुर्भाग्य पूर्ण है।

ए दोऊ विध मैं तो कही, सुपन हरखें उड़ाऊँ।

कहे इंद्रावती उछरंगे, साथ जुगतें जगाऊँ॥१६६॥

श्री इंद्रावती जी अत्यधिक आनन्द में भरकर कहती हैं कि हे साथ जी! मैंने तारतम ज्ञान के प्रकाश में इस संसार तथा परमधाम दोनों की ही यथार्थता दर्शा दी है। अब मैं उनके हृदय से मायावी जगत को हटा दूंगी तथा युक्तिपूर्वक (प्रेममयी चितवनी के द्वारा) जागृत कर दूंगी।

भावार्थ— लौकिक भोगों, प्रतिष्ठा एवं सगे सम्बन्धियों से आसिक्त का बन्धन ही वास्तविक रूप से सूक्ष्म जगत है जो हमारे हृदय में विद्यमान होता है। इसे निकाले बिना संसार का त्याग सम्भव ही नहीं है। श्री मुखवाणी के प्रकाश में चितवनी के द्वारा ही यह लक्ष्य प्राप्त हो सकता है। इसे ही दूसरे चरण में स्वप्नमयी जगत को उड़ा देना कहा गया है।

प्रकरण ३२

हो वतनी बांधो कमर तुम बांधो, सुरत पिआसों साधो।

तीनों कांडों बड़ा सुकदेव, ताकी बानी को कहूँ भेव॥१॥

श्री इंद्रावती जी कहती हैं कि हे परमधाम के सुन्दरसाथ जी! आप अपनी आत्मा की जागृति के लिये तैयार हो जाइए। अपनी सूरता को प्रियतम के स्वरूप में केन्द्रित कीजिए। ज्ञान, कर्म एवं उपासना के क्षेत्र में शुकदेव जी अग्रगण्य माने जाते हैं। उनकी वाणी (श्री मद्भागवत) के एक रहस्य की ओर मैं आपका ध्यान खींचती हूँ।

अंतरगत बैठे हैं सही, अंतर उड़ावने बानी कही।

विचार देखो तो इतहीं पिउ, सागर तबहीं तूल करे जिउ॥२६॥

यह पूर्णतः सत्य है कि प्राणेश्वर अक्षरातीत मेरे धाम हृदय में विराजमान हैं। आपके और धाम धनी के मध्य यह माया का जो आवरण (परदा) आ गया है उसे हटाने के लिये ही उन्होंने यह तारतम वाणी कही है। यदि आप विचार पूर्वक देखें तो यह स्पष्ट होगा कि अपने जीव में प्रियतम का प्रेम भर लेने पर यह भवसागर आपको रूई के एक रेशे के समान तुच्छ सा प्रतीत होगा और आप इसी संसार में अपनी आत्मा के धाम हृदय में अपने प्राणवल्लभ का साक्षात्कार कर सकते हैं।

तब इतहीं जो वतन पिउ पार, सखी भाव भजिए भरतार।

आतम महामत है सूरधीर, प्रेम देखिए जुदे खीर नीर॥३०॥

हे साथ जी! आप स्वयं को अपने प्राणधन अक्षरातीत की अंगना मान कर अपने हृदय में बसाइये। इस प्रकार जो परमधाम बेहद से भी परे है, वह आपको अपनी आत्मा के धाम हृदय में ही दृष्टिगोचर होने लगेगा। मेरे प्राणेश्वर ने मेरी आत्मा को महामति की शोभा दी है। निश्चित ही यह प्रेम— युद्ध की वीरांगना है जिसने प्रेम के द्वारा अपने आराध्य को अपने हृदय के सिंहासन पर विराजमान किया है। इसका फल यह निकला है कि जीव और मन को भी अलग-अलग निरूपित किया जा सका है। मेरे जीव ने धनी के चरणों को अपने अन्दर आत्मसात् कर लिया है तथा मन को संसार देखने के लिये छोड़ दिया है।

भावार्थ— इस चौपाई को पढ़कर उन सुन्दरसाथ को आत्म मन्थन करना चाहिये जो यह मानते हैं कि इस संसार में या तो आत्मा है ही नहीं, या यदि है भी तो प्रियतम का साक्षात्कार इस संसार में नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी भूल है—अपनी आत्मा के धाम हृदय में परमधाम और धाम धनी को मूल सम्बन्ध से सूक्ष्मरूप में न मानना।

प्रकरण ३३

निराकार के पार के पार, तारतम को जागनी भयो सार।

अछर पार घर अछरातीत, धाम के यामें सब चरित्र॥२७॥

तारतम ज्ञान का सार है, जागनी अर्थात् निराकार के परे बेहद है, उसके परे अक्षर है तथा अक्षर के भी परे पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द अक्षरातीत का जो परमधाम है, वही हमारा मूल घर है। उसकी शोभा एवं लीला में डूब जाना ही जागनी है।

विशेष— शोभा में डूबने का आशय ही है— अपने धाम हृदय में उसे बसा लेना।

देख्यो खेल मिल्यो सब साथ, जागनी रास बड़ो विलास।

खेलते हंसते चले वतन, धनी साथ सब होए प्रसन्न॥३२॥

हे साथ जी! देखिए! इस जागनी रास का आनन्द बहुत अधिक है। इस खेल में सभी सुन्दर साथ तारतम वाणी के द्वारा धनी के चरणों में आकर एकत्रित होंगे। तत्पश्चात् प्रियतम के प्रेम में हंसते—खेलते परमधाम पहुंचेंगे। वहां परात्म में जागृत होंगे और स्वयं को साक्षात् धनी के सम्मुख पाकर अति आनन्दित होंगे।

भावार्थ— जो सुन्दरसाथ तारतम वाणी के चिन्तन एवं युगल स्वरूप की चितवनी में लगे रहेंगे वे इस मायावी संसार के प्रपंचों से दूर रहकर सदा आनन्द का ही अनुभव करेंगे। इसे ही उपरोक्त चौपाई में हंसना—खेलना कहा गया है।

इतहीं बैठे जागे घर धाम, पूरन मनोरथ हुए सब काम।

उड़्यो अग्यान सबों खुली नजर, उठ बैठे सब घर के घर॥३३॥

इस जागनी लीला में प्रेममयी चितवनी के द्वारा हमें ऐसा प्रतीत होगा जैसे कि भले ही हम यहां बैठे हैं किन्तु परमधाम में अपने मूल तन में जागृत से हो गये हैं। हमने परमधाम में जो भी इच्छायें की थी, वे सभी पूर्ण हो गयी हैं। इस जागनी लीला के पूर्ण होने पर जब यह संसार लय हो जायेगा और हम सभी सुन्दरसाथ अपने मूल तनों में जागृत होंगे तो उस समय हमारी अन्तर्दृष्टि (परात्म की दृष्टि) खुल जायेगी तथा हमें ऐसा अनुभव होगा कि कालमाया में जिस अज्ञानता का हमने अनुभव किया था, वह अब हमारे अन्दर नाममात्र के लिये भी नहीं है।

द्रष्टव्य— उपरोक्त चौपाई की पहली पंक्ति में आत्मा की जागृत अवस्था का वर्णन है तथा दूसरी चौपाई में परात्म के जागृत होने की स्थिति का वर्णन है।

प्रकरण ३७

जब ए सुख अंग में आवहीं, तब छूट जाए विकार।

आयो आनन्द अखण्ड घर को, श्री अछरातीत भरतार॥६॥

जब परमधाम के सुखों का अनुभव ब्रह्मसृष्टियों को अपने हृदय में होने लगता है, तब माया के विकार स्वतः ही दूर हो जाते हैं तथा प्राणेश्वर अक्षरातीत के अखण्ड परमधाम के अनुपम आनन्द की वर्षा होने लगती हैं।

अब ए केते कहूं प्रकार, निजधाम लीला नित बड़ो विहार।

अछरातीत लीला किसोर, इत सैयां सुख लेवें अति जोर॥७६॥

परमधाम की लीला नित्य अनादि और अखण्ड है तथा अपार आनन्द से भरपूर है। मैं उसका कहां तक वर्णन करूं ? अक्षरातीत श्री राजजी की लीला किशोरावस्था की प्रेममयी लीला है जिसमें डूबकर सभी सखियां असीम आनन्द का अनुभव करती हैं।

जागनी में लीला धाम जाहेर, निसान हिरदे लिए चित धर।

तब उपज्यो आनंद सबों करार, ले नजरों लीला नित विहार॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में परमधाम की अष्ट प्रहर की लीला तथा २५ पक्षों का ज्ञान प्रकट हो गया है। जब सभी अपने हृदय में ज्ञान दृष्टि से युगल स्वरूप सहित २५ पक्षों की शोभा को बसा लेंगे तथा उनकी आत्मिक दृष्टि में अष्ट प्रहर की लीला भी दृष्टिगोचर होने लगेगी, तब सभी सुन्दरसाथ को अलौकिक आनन्द का अनुभव होगा।

द्रष्टव्य— करार शब्द अरबी भाषा का है। इसका आशय आनन्द से है।

इतहीं बैठे घर जागे धाम, पूरन मनोरथ हुए सब काम।

धनी महामत हँस ताली दे, साथ उठा हँसता सुख ले॥११८॥

इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर हमें ऐसा अनुभव होगा कि भले ही इस नश्वर तन से हम मायावी जगत में रह रहे हैं, किन्तु हमारी आत्मिक दृष्टि युगल स्वरूप तथा परमधाम के 25 पक्षों में विहार कर रही है। हमें यह भी अनुभव होगा कि हमारी जो भी लौकिक—अलौकिक इच्छायें थीं, सभी पूर्ण हो गयी हैं। श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि अब प्राणेश्वर अक्षरातीत इस खेल को समाप्त करने के लिये हंसते हुए ताली बजायेंगे अर्थात् संकेत रूप आदेश देंगे, तो समस्त सुन्दरसाथ अपने मूल तनों में हंसते हुए आनन्द पूर्वक जागृत हो जायेंगे।

भावार्थ— 'ताली बजाना' संकेत देने के भाव में प्रयुक्त होता है। इसे बाह्य रूप में नहीं लेना चाहिए।

खट्वातु

प्रकरण ८

तेजसूं तेज करूं रे मेलावो, जोतने जोत छे भेला ।

अंग सदीवे छे रे एकठां, परआतम ने मेला ॥३७॥

मैं आपके हृदय में विराजमान तारतम ज्ञान के तेज से अपने आत्म-बोध रूपी तेज को मिलाना (एक रूप करना) चाहती हूँ। मेरी आत्मिक ज्योति पल-पल आपकी ज्योति के साथ ही रहना चाहती है। वस्तुतः परमधाम में हम सभी अंगनाओं की परात्म तो आपके साथ ही रहकर अनादि काल से लीला करती रही है।

भावार्थ— अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर ही आत्मा अपने प्रियतम श्रीराज जी के हृदय में उमड़ने वाले तारतम ज्ञान के सागर (तेज) से स्वयं को यथार्थ रूप में जोड़ सकती है तथा अपने इस पंचभौतिक तन से परे होकर पल-पल उनकी सानिध्यता का अनुभव कर सकती है। 'हक नजीक सेहेरग से' का भाव ही आत्मिक ज्योति का परमात्म (परब्रह्म) ज्योति के साथ रहना है। इस तथ्य को तारतम वाणी में इस प्रकार दर्शाया गया है— “ जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम ।

सो परआतम संग लेय के, विलसिए संग खसम ॥

सागर ७/४१

प्रकरण ३

रे वाला मारे मंदिरिए आवी ने आरोग,

हांरे अम विरहणियो ना टालो रे विजोग ।

हां रे सुंदर सेजडीनो आवी लेओ भोग,

एता सकल तमारो संजोग ।

हो स्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूं ॥६॥

एक गोपी कहती हैं— प्रिय कान्ह! तुम्हें मेरे घर आकर भोजन करना होगा, तभी हम गोपियों का विरह दूर हो सकेगा। मेरे घर में सुन्दर सेज्या बिछी हुई है, उस पर विश्राम करने का सुख लीजिए, किन्तु यह तो तभी सम्भव है, जब आपसे हमारी भेंट हो सके, अर्थात् आप मथुरा से चलकर पुनः गोकुल आयें। आपको मैं निरन्तर पुकार रही हूँ।

भावार्थ— श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे धाम धनी! आप मेरे धाम हृदय में विराजमान हो जाइये तथा मेरे प्रेम को स्वीकार कीजिए। मेरा प्रेम ही तो आपका आहार है। जब आप मेरे धाम हृदय की शय्या (अर्स दिल की सेज्या) पर विराजमान होकर मुझे दर्शन (दीदार) देंगे तो मैं धन्य-धन्य हो जाऊँगी। मैं उस शुभ घड़ी की पल-पल बाट देख रही हूँ।

कलश हिन्दुस्तानी

प्रकरण ७

पांपण पल ना लेवही, दसो दिस नैन फिराऊं।

देह बिना दौड़ों अन्दर, पिया कित मिलसी कहां जाऊं॥८॥

आपके प्रेम भरे मधुर दर्शन (शरबत — ए — दीदार) की चाहत में पल भर के लिये भी मेरी आंखों की पलकें झपकती नहीं हैं। मैं दसों दिशाओं में आप को खोजती फिर रही हूँ। यद्यपि मेरा शरीर तो एक ही स्थान पर स्थिर है किन्तु सांकल्पिक रूप से मैं दसों दिशाओं में आपको ही ढूँढ रही हूँ। मेरे मन में केवल एक ही विचार है कि मेरे प्राणेश्वर! आप मुझे कहाँ मिलेंगे कि मैं आकर आपसे मिल लूँ।

भावार्थ— दस दिशायें इस प्रकार हैं— पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊपर, तथा नीचे। हृदय में प्रेम के प्रस्फुटित होने पर प्रेम की तरंगें मन के साथ संयुक्त होकर एक भावमय (संकल्पमय) शरीर की रचना करती हैं जो अपने प्रेमास्पद की खोज में सर्वत्र घूमता रहता है। चौ. ७—१० में प्रेम की मनोरम स्थिति का वर्णन किया गया है।

इस्क को ए लछन, जो नैनों पलक ना ले।

दौड़े फिरे न मिल सके, अन्दर नजर पिया में दे॥९॥

प्रेम का यही लक्षण है कि पल भर के लिये भी आंखों की पलकें झपकती नहीं हैं। जब चारों ओर भावमय (संकल्पमय) शरीर से दौड़ने पर भी प्रियतम के दर्शन नहीं होते हैं, तो वह अपनी अन्तर्दृष्टि को अपनी आत्मा में ही इस भावना के साथ केन्द्रित कर देती हैं कि मेरा प्रियतम मेरी आत्मा के धाम हृदय में बसता है।

भावार्थ— उपरोक्त कथन के आधार पर चितवनि के दो रूप स्पष्ट होते हैं। पहला स्वरूप वह है जिस में विरह के भावों के साथ ज्ञान दृष्टि से कालमाया एवं योगमाया को पार कर परमधाम में प्रवेश किया जाता है तथा नख से शिख तक युगल स्वरूप की शोभा में स्वयं को डुबोया जाता है। इसे ही संकल्पमय शरीर से दौड़ना कहा जाता है। इस स्थिति में विचरण करते-करते ज्ञान की अवस्था समाप्त हो जाती है तथा विरह की अवस्था गहराने लगती है।

यहाँ यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य है कि अपनी परात्म की भावना से कालमाया एवं योगमाया को पार कर हमने अब तक जो भी परमधाम में विचरण किया होता है, वह भावमय (संकल्पमय) ही होता है और वह ज्ञान एवं हमारे अटूट विश्वास पर आधारित होता है जिसे हमने तारतम्य वाणी और ब्रह्मात्माओं के चरणों में बैठकर प्राप्त किया होता है। किन्तु इस अवस्था में हमारे जीव का अन्तःकरण क्रियाशील होता है जिसके परिणाम स्वरूप शरीर एवं संसार से हमारी पूर्ण निवृत्ति नहीं हुई होती है। इस प्रकार की चितवनि से मानसिक आनन्द

प्राप्त होता है। विरह की परिपक्व अवस्था में सुरता शरीर, संसार तथा मन-बुद्धि के द्वन्द्वों से परे हो जाती है। इसके पश्चात् प्रेम की रस धारा बहने लगती है जिसमें आत्मा को यह विदित होने लगता है कि उसका प्राणेश्वर तो उसकी अन्तरात्मा में है। सागर की लहरों की तरह वह भी उसकी प्राणेश्वरी है। उससे न तो पल भर के लिये भी कभी अलग हुई थी और न कभी हो सकेगी।

इस अवस्था में आत्मा एवं परब्रह्म में ऐक्य भाव स्थापित हो जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि उसे अपनी आत्मा के धाम हृदय में सम्पूर्ण परमधाम सहित युगल स्वरूप के प्रत्यक्ष दर्शन होने लगते हैं। इसे ही अगली चौपाई के तीसरे चरण में 'अंदर तो न्यारा नहीं' तथा किरतन १३२/४ में 'तो अधखिन पिऊ न्यारा नहीं, मांहे रहे हिल मिल कहा' गया है। भ्रान्ति वश उपरोक्त कथन का आशय यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि इसमें अस्थि-मांस के इस स्थूल शरीर की छाती में चितवनि करने के लिये कहा जा रहा है। प्रारम्भिक अवस्था में विरह की अग्नि को प्रज्ज्वलित करने के लिये मेरी छाती दिल की कोमल, तिनसे तुम्हारे पाँऊ कोमल' इतही सेज बिछाए देऊँ, जुदे करो जिन दम' जैसे भावों का आश्रय लेकर अवश्य स्थूल शरीर के हृदय में भावना कर सकते हैं। इसके पश्चात् ज्ञानमयी चितवनि (कालमाया एवं योगमाया से होते हुए परमधाम में) का ही आधार लेना पड़ेगा। विरह की परिपक्व अवस्था में स्वतः ही आत्मा के धाम हृदय में प्रियतम का दर्शन होगा। उस अवस्था में इस स्थूल शरीर या संसार का जरा भी आभास नहीं रहेगा।

नजरोँ निमख न छूटहीं, तो नाहीं लागत पल।

अन्दर तो न्यारा नहीं, पर जाए न दाह बिना मिल।।१०।।

उस अवस्था में क्षण भर के लिये भी प्रियतम की छवि ओझल नहीं होती है। यही कारण है कि पलकें भी झपकने का नाम नहीं लेती हैं। यद्यपि प्रियतम मुझसे पल भर के लिये भी आन्तरिक रूप से अलग नहीं हैं किन्तु जब तक बाह्य रूप से मिलन (साक्षात्कार) नहीं होता है, तब तक प्रियतम से मिलन की अग्नि (बल इच्छा) शान्त नहीं होती।

भावार्थ—उपरोक्त चौपाई के कथन से यह संशय होता है कि यहां किस अवस्था का वर्णन है जिसमें आंखों की पलकें झपकती नहीं हैं,? चितवनि की अवस्था में तो आंखें बन्द रहती हैं। उस स्थिति में तो झपकने का प्रश्न ही नहीं है। इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि आंखों के झपकने का तात्पर्य है—यदि खुली हो तो बन्द न हों और यदि बन्द हों तो खुलें नहीं। रात्रि के अन्धेरे या गहन एकान्त में जहां कोई भी अन्य न हों, वहां खुली आंखों से भी विरह में तड़पा जा सकता है। उस समय आंखों के खुले रहने पर भी संसार का आभास नगण्य सा होता है। प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था में आंखें अध खुली हो सकती हैं परन्तु इसके पश्चात् वे बन्द तो हो सकती हैं, किन्तु खुलना नहीं चाहेंगी। चितवनि की गहन अवस्था या प्रेम की परिपक्वावस्था में आंखें पूर्णतया बन्द हो जाती हैं। इस अवस्था में उनके

आन्तरिक नेत्र खुल जाते हैं जिनसे प्रियतम का दर्शन होता रहता है। उसमें जो निरन्तरता बनी रहती है अर्थात् पलभर के लिये भी दर्शन में व्यवधान नहीं होता, उसे ही पलकों (आन्तरिक पलकों) का न झपकना कहते हैं।

प्रकरण २१

मोह बढ़्यो लेस माया को, निद्रा मूल विकार।

सुध होए सबों अंगों, कर देऊं तैसो विचार॥२१॥

हे साथ जी मायावी सुखों के प्रति आसक्ति होने से मोह रूपी नींद की वृद्धि होती है जो सभी विकारों का मूल है। मैं तारतम ज्ञान से आपके विचारों को धनी के प्रेम में लगा दूंगी जिससे आप चितवनी करके सभी अंगों से पवित्र हो जायेंगे।

जोलों न काढ़ूं विकार, तोलों क्यों करके जगाए।

जागे बिना इन रास के, किन निज सुख लिए न जाए॥२२॥

जब तक मैं आपके हृदय में स्थित मायाजन्य विकारों को नहीं निकाल देती, तब तक मैं आपकी आत्मा को कैसे जागृत कर पाऊंगी ? जब तक अपनी आत्मा को जागृत न किया जाय, तब तक कोई भी इस जागनी रास में परमधाम के सुखों का अनुभव नहीं कर सकता है।

भावार्थ — जब तक चितवनी करके युगल स्वरूप की शोभा को अपने धाम में अखण्ड रूप से बसाया नहीं जाता और अपने हृदय को निर्विकार नहीं बनाया जाता, तब तक स्वयं को जागृत मानना भूल है। मात्र एक अथवा छः चौपाईयों को याद करके तारतम वाणी का कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेना ही वास्तविक जागनी नहीं है, अपितु यह तो जागनी की प्राथमिक कक्षा है।

प्रकरण २३

अब जाग देखो सुख जागनी, ए सुख सोहागिन जोग।

तीन लीला चौथी घर की, इन चारों को यामें भोग॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी! अब आप जागृत होकर आत्म जागृति के सुखों का रसपान कीजिए। इस सुख को लेने में ब्रह्मसृष्टियां ही सक्षम हैं। यदि आप अपनी आत्मा को जागृत कर लेते हैं, तो इसी संसार में ब्रज, रास, श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला एवं परमधाम की लीला का प्रत्यक्ष सुख प्राप्त कर सकते हैं।

भावार्थ— श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में होने वाली जागनी लीला परमधाम के सुखों की है। इसे तारतम वाणी के इन कथनों से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है —

ए सुख सुपने के, दूजे जागते ज्यों होए।

तीन लीला पेहेली ए चौथी, फरक एता इन दोए॥ क० हि० २३/७५

अर्थात् ब्रज, रास एवं श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला का सुख स्वप्न के समान है तथा श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में होने वाली लीला जागृत अवस्था की है और परमधाम के सुखों की है। चितवनी के द्वारा सभी लीलाओं का सुख प्राप्त हो सकता है।

अब जगाऊं जुगत सों, उड़ाऊं सब विकार।

रंगे रास रमाए के, सुफल करूं अवतार॥३॥

हे साथ जी! अब मैं तारतम वाणी के ज्ञान एवं परमधाम का प्रेम (चितवनी) के द्वारा सब सुन्दरसाथ के मानसिक विकारों को दूर करूँगी तथा आपको युक्ति पूर्वक जगाऊँगी। मैं आपको जागनी रास के इस खेल में आनन्दित करके अपना यहाँ आना सार्थक करूँगी।

अब बिछोहा खिन एक साथ को, सो मैं सह्यो न जाए।

अब नेक वाओ इन माया की, जानों जिन आवे ताए॥१५॥

अब मैं यह सहन नहीं कर सकती कि माया के कारण पल भर के लिये भी सुन्दरसाथ का धनी से वियोग बना रहे। मैं यही चाहती हूँ कि अब सुन्दरसाथ को इस माया की जरा भी हवा न लगे अर्थात् सुन्दरसाथ नाम मात्र के लिये भी मायावी विकारों या बन्धनों में ना फसे।

भावार्थ — जागनी का तात्पर्य ही यह है कि हम चितवनी के द्वारा युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में इस प्रकार बसा लें कि हमें पल — पल उनकी सानिध्यता का अनुभव होता रहे और मायावी विकार हमें किसी भी प्रकार से अपने बन्धन में न बांध सकें।

असतसों उलटाए के, सतसों कराऊं संग।

परआतम सों बंध बांधूं, ज्यों होए न कबहुं भंग॥४३॥

अब श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे साथ जी! मैं आपकी अन्तर्दृष्टि (सुरता) को इस नश्वर जगत से हटाकर अखण्ड परमधाम में ले जाऊँगी। वहाँ विद्यमान आपकी परात्म से आपकी सुरता का ऐसा सम्बन्ध कर दूँगी कि वह कभी भी टूटेगा नहीं।

भावार्थ — जब आत्मा अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर प्रियतम की शोभा को आत्मसात् कर लेती है, तो उस समय दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता। इसे सागर ग्रन्थ के इन कथनों से समझा जा सकता है—

अन्तस्करन आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे ना कछु अन्तराए॥ सा० ११/४१

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम संग लेय के, विलसिए संग खसम॥ सा० ७/४१

सनन्ध

प्रकरण ११

तोहे तो सब सुध परी, कहूं अटके नहीं निरधार।

आगे होए सोहागनी, कराओ सबों दीदार।।३६।।

हे महामति ! तुझे अब इस ब्रह्माण्ड से लेकर परमधाम तक का सारा ज्ञान हो गया है। निश्चित रूप से तुम्हें इसमें कहीं भी अटकना नहीं पड़ेगा। तुम सभी ब्रह्मात्माओं का पथ—प्रदर्शक बनकर मेरी तथा परमधाम की शोभा का दर्शन कराओ।

प्रकरण—२०

क्यों रूहें भेद छिपी हजूरी, बंदगी हादी संग आसान।

ए सब इमाम खोलसी, करसी जाहेर माएने कुरान।।४१।।

ब्रह्मात्माओं की बन्दगी एकान्त में क्यों होती है और कैसे प्रियतम अक्षरातीत तक पहुंचती है? उनकी प्रेम लक्षणा भक्ति हादी (श्यामा जी) के साथ कैसे सरलता पूर्वक होती है? कुर्आन में वर्णित इस रहस्य को श्री जी स्पष्ट करेंगे।

भावार्थ — ब्रह्ममुनियों के द्वारा की जाने वाली बन्दगी आत्मिक धरातल पर होने के कारण संसार से छिपकर होती है। यह हकीकत और मारिफत की राह है जिसमें शरीर, मन और जीव भाव से परे होकर आत्मा अपनी परात्म की शोभा के भाव से परब्रह्म से प्रेम करती है, इसलिये यह स्वीकार होती है (पहुंचती) है। सभी आत्मायें परब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति श्यामा जी (रूहअल्लाह) की अंग रूपा है अतः स्वयं को उनके ही स्वरूप में मानकर (साथ में) ध्यान करने से लक्ष्य बहुत ही सरल हो जाता है।

प्रकरण—२१

प्यारा नाम खुदाए का, फेरे तसबी लगाए तान।

रात दिन लहे बंदगी, या दीन मुसलमान।।३०।।

एक सच्चा मुसलमान परब्रह्म के नाम को अति प्रिय मानकर एकाग्र मन से उसकी माला जपता है और दिन — रात उनकी बन्दगी में लगा रहता है।

दरदा ले द्वारे खड़ी, खसम की गलतान।

रूह लगी रसूलसों, या दीन मुसलमान।।३१।।

जिसकी आत्मा प्रियतम परब्रह्म के प्रेम में समर्पित हो जाती है, विरह की पीड़ा में अपने मूल घर को याद करती है और अपनी अन्तर्दृष्टि मुहम्मद स. अ. ब. से जोड़े रखती है, उसे ही मुसलमान कहलाने का अधिकार है।

भावार्थ:—‘द्वार पर खड़े रहना’ एक मुहविरा है, जिस का अर्थ होता है है परमधाम के ६

यान, चितवनी में डूबे रहना। उपरोक्त चौपाई में जो लक्षण बताये गये हैं, वे या तो परमधाम के ब्रह्ममुनि सुन्दरसाथ में घटित हो सकते हैं ये उच्च स्तर के सूफी फकीरों में। शरीर की राह पर चलने वाले मुसलमान इस कसौटी पर खरे सिद्ध नहीं हो सकते।

दिल पाक जोलों होए नहीं, कहा होए वजूद ऊपर से धोए।

धोए वजूद पाक दिल, कबहूँ ना हुआ कोए॥४०॥

जब तक परब्रह्म के प्रेम द्वारा हृदय पवित्र नहीं होता तब तक नमाज पढ़ने के लिये शरीर के अंगों को बार – बार धोने से कोई लाभ नहीं है। आज तक इस संसार में ऐसा कोई भी नहीं हुआ है, जिसने मात्र जल से शरीर धोकर अपने हृदय को पवित्र कर लिया हो।

भावार्थ – परब्रह्म की शोभा के ध्यान रूपी जल से स्नान करने पर ही हृदय पवित्र होता है। इस सम्बन्ध में तारतम वाणी का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है –

पाक न होइए इन पानिए, चाहिए अर्स का जल।

नहाइयें हक के जमाल में, तब होइए निरमल॥

पाक हुआ दिल जिनका, तिन वजूद जामा पाक सब।

हिरस हवा सब इंद्रियां, तिन नहीं नापाकी कब॥४१॥

परब्रह्म के प्रेम से जिनका हृदय पवित्र हो जाता है, उनका वस्त्रों सहित सम्पूर्ण शरीर भी पवित्र हो जाता है। उनकी सभी इन्द्रियों तथा लौकिक इच्छाओं में भी पवित्रता आ जाती है। उनमें कुछ भी अपवित्रता नहीं रह जाती।

भावार्थ – ‘अद्भिः गात्राणि शुद्ध्यन्ति’ मन. के कथन के अनुसार जल से शरीर के बाह्य अंगों की शुद्धि होती है। जल आदि आत्मिक पदार्थों के सेवन से मन – बुद्धि में कुछ देर के लिये शुद्धि आती है। परब्रह्म का प्रेममयी ध्यान ही वह साधन है। जिसमें हृदय सहित शरीर का रोम – रोम भी पवित्र हो जाता है।

प्रकरण—२३

जेता कोई दिल मजाजी, चढ़ सके न नूर मकान।

दिल हकीकी पोहोंचे नूर तजल्ला, ए दिल मोमिन अर्स सुभान॥२॥

जितने भी झूठे हृदय वाले (जीव) हैं, वे अक्षर धाम (बेहद) तक नहीं जा पाते। सच्चे हृदय वाले (ब्रह्ममुनि) ध्यान द्वारा परमधाम तक पहुँचते हैं। इनके ही हृदय को परब्रह्म का धाम कहा गया है।

भावार्थ – उपरोक्त प्रसंग में मात्र उन जीवों की बात की गयी है, जिनमें बेहद या परमधाम का कोई अंकूर नहीं है। यद्यपि, ब्रह्मसृष्टि या ईश्वरीय सृष्टि की सूरता जीवों के ऊपर ही बैठकर खेल को देख रही है किन्तु तारतम ज्ञान के प्रकाश में उनके जीव का हृदय अटूट विश्वास, समर्पण एवं प्रेम की प्रतिमूर्ति बन जाता है जिससे उस को आचरण कोरे जीवों के

हृदय से भिन्न हो जाता है।

होवे फारग दुनी के सोर सें, ए दिल हकीकी निसान।

करें हजूर बातून बंदगी, ए दिल मोमन अर्स सुभान॥४॥

ब्रह्मसृष्टियों के हृदय के सत्य (स्वच्छता से परिपूर्ण) होने की पहचान यह है कि वे संसार के प्रपंचों से अलग हो जाती है और ध्यान (चितवनी) के रूप में छिपी भक्ति (बन्दगी) करती है जो परब्रह्म को स्वीकार होती है। इनके हृदय को परब्रह्म का धाम कहा गया है।

भावार्थ — शरीयत (कर्मकाण्ड) तथा तरीकत (उपासना) के विषय में दूसरे लोगों को पता चल जाता है कि अमुक व्यक्ति ऐसा कर रहा है। इस प्रकार की भक्ति का परिणाम नासूत — मलकूत ला मकान (पृथ्वी लोक बैकुण्ठ तथा निराकार) से आगे नहीं जा पाता। इसके द्वारा परमधाम का साक्षात्कार नहीं हो सकता। इसलिये इन्हें जाहिरी बन्दगी कहते हैं। हकीकत — मारिफत की बन्दगी आत्मिक धरातल पर प्रेममयी ध्यान द्वारा होती है। इसमें बेहद तथा परमधमा का प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है, अतः इसे बातिनी बन्दगी कहते हैं। ऐसा करने वाले को कोई जान नहीं पाता, क्योंकि यह बन्दगी एकान्त में होती है।

कलमा निमाज रोजा दिल से, दे जगात आप कुरबान।

करे हज बका हमेसगी, ए दिल मोमिन अर्स सुभान॥४५॥

ब्रह्मसृष्टियों के लिये तारतम वाणी का चिन्तन ही से कलमा कहना है। इन्द्रियों को विषयों से दूर रखकर चितवनी में डूबना ही उनका रोजा और नमाज है। स्वयं को परब्रह्म के प्रति पूर्णतया समर्पित कर देना ही जकात है। इसी प्रकार चितवनी द्वारा परमधाम के 25 पक्षों एवं युगल स्वरूप का दीदार करना ही उनके लिये हज करना है।

भावार्थ— शरिअत की बन्दगी में जो कल्मा पढ़ना, रोजा, नमाज, हज और जकात की प्रक्रिया होती है, वह तरीकत में कुछ अलग होती है। सच्चे सूफी फकीर 5 बार नमाज पढ़ने की अपेक्षा रात में चिन्तन द्वारा बन्दगी करते हैं। जैसे शरीयत के अनुसार अपनी आय का 40 वां भाग दान में देना चाहिए किन्तु तरीकत के अनुसार 39 भाग दान में देकर 1/40 वें भाग से ही अपना गुजारा करना चाहिए ब्रह्मसृष्टियों के लिये हकीकत और मारिफत का मार्ग है जिसमें स्वयं को ही परब्रह्म के प्रति समर्पित किया जाता है। दुर्भाग्य वश, आप भी सुन्दर साथ शरीयत एवं तरीकत (पूजा, पाठ, मन्त्र जाप, परिक्रमा) को ही सर्वोपरि माने बैठा है। जिस हकीकत एवं मारिफत के मार्ग से परमधाम तथा युगल स्वरूप का साक्षात्कार होता है, वह वाणी चिन्तन, चितवनी, सर्वस्व समर्पण, विरह प्रेम आदि का मार्ग प्रचारित ही नहीं किया जाता।

प्रकरण—३५

ए सिफत न जिभ चई सगे, सोई जांणे गिडां जिन।

सुख कीं चुआं हिन भूंअ जा, सुख डिंन महे बका वतन॥२५॥

इस सुख को जिह्वा से व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसे तो मात्र वे ही जानते हैं जिन्होंने इसकी अनुभूति की है। इस संसार में प्रियतम परब्रह्म के जिन सुखों का अनुभव हो रहा है, वे परमधाम में जो अनन्त सुख देंगे, उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता।

भावार्थ — इस जागनी ब्रह्माण्ड में परमधाम के सुखों का बुद्धि द्वारा अनुभव ज्ञान से एवं प्रत्यक्ष अनुभव चितवनी द्वारा होता है किन्तु परमधाम में पूर्ण जागृति होने से यहां के अनुभूत सुखों की स्मृति ही विशेष आनन्ददायी होगी।

किरंतन

प्रकरण ७

हो मेरी वासना, तुम चलो अगम के पार ।

अगम पार अपार पार, तहां है तेरा करार ।

तूं देख निज दरबार अपनों, सुरत एही संभार ॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! तुम अगम कहे जाने वाले इस निराकार से परे चलो। निराकार मण्डल से परे बेहद है, जिसके परे परमधाम है। वहां पहुंचने पर ही तुम्हें सकून (वास्तविक शान्ति) मिलेगा। तुम अपने निजघर में मूल-मिलावे की शोभा में अपनी सुरता एकाग्र करो।

भावार्थ— वासना, सुरता, आत्मा, रूह इत्यादि समानार्थक शब्द हैं। निराकार को कोई पार नहीं कर पाता है, इसलिये इसे अगम कहते हैं। मूल मिलावे में विराजमान युगल स्वरूप तथा परमात्म की शोभा को देखे बिना परम शान्ति की आशा करना व्यर्थ है।

ए तूं देख नाटक निमख को, अब करे कहा विचार ।

पाउ पल में उलंघ ले, ब्रह्मांड सुन्य निराकार ॥७॥

हे मेरी आत्मा! पल भर में ही लीन हो जाने वाले इस संसार रूपी नाटक को तू सावधानी से देख। इस सम्बन्ध में अब तू क्या सोच रही है? अपने प्रियतम को पाने के लिये तुम एक पल के चौथाई हिस्से में ही इस ब्रह्माण्ड और निराकार को पार कर लो।

भावार्थ—निराकार से उत्पन्न होने वाला केवल एक ही ब्रह्माण्ड नहीं है, बल्कि अनन्तों ब्रह्माण्ड हैं। यहां एक ब्रह्माण्ड का कथन प्रकृति मण्डल को सीमित क्षेत्र में समझाने के लिये है।

तेरे बीच बाट घाट न तत्व कोई, तूं करे पाउं बिना पंथ ।

निरंजन के परे न्यारा, तहां है हमारा कंथ ॥८॥

निराकार से परे उस अनन्त परमधाम में प्रियतम विराजमान हैं। वहां तक पहुंचने के मार्ग में अब कोई भी बाधा नहीं है। तू तो बिना पैरों के ही अपनी मंजिल पूरी कर लेगी अर्थात् नवधा भक्ति और कर्मकाण्ड की राह छोड़कर इश्क-ईमान के पंखों से विहंगम मार्ग द्वारा पहुंच जायेगी।

अब पार सुख क्यों प्रकासिए, ए है अपनो विलास ।

महामत मनसा मिट गई, सब सुपन केरी आस ॥९॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम अपने प्रियतम के प्रेम और आनन्द का स्थान है । वहां के त्रिगुणातीत अनन्त सुख को शब्दों में कैसे कहा जाये ? वहां के सुख की अनुभूति होते ही माया की सारी इच्छायें समाप्त हो गयीं ।

प्रकरण ८

जब आत्म दृष्ट जुड़ी परआत्म, तब भयो आत्म निवेद ।

या विध लोक लखे नहीं कोई, कोई भागवन्ती जाने ए भेद ॥३॥

जब आत्मा ध्यान में अपने मूल तन परआत्म को देखती है तो उसे आत्म निवेदन कहा जाता है अर्थात् आत्मा का प्रियतम के प्रति प्रेम —निवेदन । इस बात को संसार के लोग नहीं समझ पाते । आत्मा और परआत्म के इस गुझ (गुह्य) भेद को केवल ब्रह्मसृष्टि ही वास्तविक रूप से जानती है ।

प्रकरण ९

लगी वाली और कछु न देखे, पिंड ब्रह्मांड वाको है री नाहीं ।

ओ खेलत प्रेमे पार पियासों, देखन को तन सागर माहीं ॥४॥

जिसको प्रियतम के प्रेम की लगन लग जाती है, उसे न तो शरीर ही दिखायी देता है और न संसार ही । भले ही उसका शरीर इस संसार में दिखायी देता है लेकिन उसकी सुरता हृद-बेहद से परे परमधाम में अपने प्रियतम से प्रेम-क्रीड़ा कर रही होती है ।

प्रकरण ४९

निरमल नजरों न आवहीं, ले बैठी संग चंडाल ।

उपजत ऐसी अंगथें, उतारुं उलटी खाल ॥५॥

मेरे हृदय में मोह अहं रूपी चण्डाल का प्रवेश था, इसलिये निर्मलता की कमी से मैं अपने प्रियतम का दर्शन नहीं कर सकी । अब मेरे मन में ऐसा विचार आता है कि इस प्रायश्चित् में मैं अपने शरीर की खाल को उल्टी तरफ से उतार दूं ।

भावार्थ— शरीर की खाल उतारने का कथन उस मानसिक व्यथा का परिचायक है कि मुझे धनी का दीदार क्यों नहीं हुआ ? इस कथन को क्रियात्मक रूप देना उचित नहीं है । मोह— अहं रूपी शत्रु का त्याग किये बिना धनी का दीदार सम्भव नहीं है ।

सब अंग काट चीरा करूं, मांहें भरों मिरच और लून ।

कई कोट बेर ऐसी करूं, तो भी न छूटे ए खून ॥६॥

मैं अपने सभी अंगों को काटकर उसमें चीरा लगा दूं तथा उसमें नमक और मिर्च भर दूं । यदि यह प्रक्रिया मैं करोड़ों बार करूं तो भी मुझे इस दोष से मुक्ति नहीं मिल सकती ।

द्रष्टव्य— इस प्रकार का कथन यह दर्शाता है कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में अपनी इन्द्रियों को निर्विकार रखने , धनी की पहचान एवं दीदार करने की क्या महत्ता है और इसकी उपलब्धि न होना कितना गुनाह है ?

प्रकरण ७४

ऐसे कई सुख परआतम के, अनुभव कराए अंग।
तो भी इस्क न आइया, नेहेचल धनी सों रंग॥३४॥

इस प्रकार धनी ने मेरी आत्मा के हृदय में परआतम के कई सुखों का अनुभव कराया फिर भी धनी से अखण्ड आनन्द लेने के लिये मेरे अन्दर इश्क नहीं आ सका।

भावार्थ— चितवनि में डूबने पर आत्मा के हृदय में युगल स्वरूप श्री राज श्यामा जी तथा सब सुन्दरसाथ या अपनी परआतम का स्वरूप नजर आता है, इसे ही आत्मा के धाम हृदय में परआतम के सुख का प्रकट होना कहते हैं।

प्रकरण ७६

हो मेरी सत आतमा, तुम आओ घर सत खसम।
नजर छोड़ो री झूठ सुपन, आए देखो सत वतन॥२॥

श्री महामति श्री कहते हैं कि (सुन्दरसाथ) परमधाम की अखण्ड स्वरूप वाली हे मेरी आत्माओं तुम ध्यान (चितवनि) द्वारा अपने प्रियतम के अखण्ड घर परमधाम में आओ। इस स्वप्नमयी झूठे संसार से अपनी दृष्टि हटाकर अखण्ड परमधाम में आओ और यहां की अलौकिक शोभा को देखो।

तुम निरखो सत सरूप, सत स्यामाजी रूप अनूप।
साजो री सत सिनगार, विलसो संग सत भरतार॥३॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप ध्यान द्वारा अपने अखण्ड स्वरूपों तथा श्री श्यामा जी की अनुपम एवं अखण्ड शोभा को देखिए। स्वयं परआतम का श्रृंगार सजकर अपने प्रियतम श्री राज जी के साथ परमधाम के आनन्द में डूब जाइए।

भावार्थ— ' आत्मा ' परआतम का प्रतिबिम्ब है। अपने पंचभौतिक तन को पूर्णतया भुलाकर परआतम के श्रृंगार जैसा ही स्वंय का श्रृंगार सजाकर ध्यान में डूबना चाहिए। यही ' साजो री सत सिनगार ' का अभिप्राय है।

सत धनी सों करों हांस, पीछे करो प्रेम विलास।
सत बरनन कीजो एह, उपजे सत प्रेम सनेह॥४॥

ध्यान में अपने प्रियतम से मीठी-मीठी बातें कीजिए। तत्पश्चात् प्रेम के आनन्द में डूब जाइए। अन्य सुन्दरसाथ से परमधाम की अखण्ड शोभा तथा लीला का वर्णन कीजिए, जिससे उनके भी हृदय में धनी के प्रति अखण्ड प्रेम प्रकट हो जाय।

सत साथ देत देखाई, सत आनन्द अंग न माई।
सत साथ सों करो प्रीत, देखो सत घर की ए रीत॥५॥

चितवनि में डूब जाने पर धनी की कृपा से मूल मिलावे में विराजमान सुन्दरसाथ के अखण्ड तन दिखायी देते हैं। वहाँ का अखण्ड आनन्द इतना अधिक है कि वह हृदय में समाता नहीं है,

Over Flow होने के कारण । परमधाम में जिनके मूल तन हैं या जो धनी के प्रेम में डूबे रहने वाले सुन्दरसाथ है , उनके साथ गहन प्रीति रखनी चाहिए। प्रेम का मार्ग अपना ही अपने अखण्ड घर (परमधाम) की रीति (परम्परा) है।

सत रेहेस सत रंग, सत साथ को सुख अभंग।

तुम संग करो सत बातें, सत दिन और सत रातें॥६॥

परमधाम की प्रेममयी लीला और आनन्द हमेशा ही अखण्ड है। अखण्ड स्वरूप वाले सुन्दरसाथ का सुख भी अखण्ड है। वहां दिन तथा रात्रि भी मनचाही है। हे सुन्दरसाथ जी! आप परमधाम की इन आनन्दमयी बातों में डूबे रहिए।

सत चांद और सत सूर, हिसाब बिना सत नूर।

सत सोभा सत मन्दिर, सत सुख सेज्या अंदर॥७॥

परमधाम में अखण्ड चन्द्रमा और सूर्य की शोभा है। उनमें अनन्त नूर की अखण्ड शोभा आयी है। अखण्ड मन्दिरों की शोभा भी अखण्ड हैं। उसमें रंच मात्र भी हास नहीं होता। मन्दिरों के अन्दर की सेज्या का सुख भी शाश्वत है।

सत जिमी सत बन, खुसबोए सत पवन।

लेहेरी लेवे सत जल, सत आकास निरमल॥८॥

परमधाम की धरती तथा वनों की शोभा अखण्ड है। सुगन्धित पवन अबाध गति से बहता रहता है। सागरों, नहरों तथा यमुना जी का जल लहरों के रूप में अखण्ड रूप से शोभायमान है। शाश्वत आकाश हमेशा ही स्वच्छ दिखायी देता है।

भावार्थ— सत्य का अर्थ होता है— हमेशा अखण्ड रहने वाला। सत्य चेतन होता है। उसमें प्रेम और आनन्द का रस प्रवाहित होता रहता है। इस प्रकार परमधाम की प्रत्येक वस्तु सच्चिदानन्दमयी है।

सत पशु पंखी अलेखें, सत खेल राज साथ देखें।

सत खेलें बोलें बन माहीं, सत सुख हिसाब काहूं नाहीं॥९॥

परमधाम में अनन्त पशु— पक्षी है, जिनकी नूरी शोभा शाश्वत है। पशु पक्षियों के खेल को सखियां श्री राज जी के साथ देखा करती हैं। वनों में पशु— पक्षियों की क्रीड़ा और बोलने की लीला हमेशा चलती रहती है। इन लीलाओं में अखण्ड और अनन्त आनन्द छिपा हुआ है।

रुत रंग रस नए नए, अलेखे सदा सुख कहे।

सत जमुना त्रट किनारें, दोऊ तरफ बराबर हारें॥१०॥

परमधाम में ऋतुओं के आनन्द का रस नित्य— नूतन बना रहता है। वह सुख सर्वदा ही अनन्त रहता है। यमुना जी के किनारे दोनों ओर अति सुन्दर वृक्षों की हारें अखण्ड रूप से शोभा ले रही हैं।

सत डारी झलूबे ऊपर जल, खुसबोए हिंडोले सीतल।

सत सुख तलाब के त्रट, खोल देखो नैना पट॥११॥

यमुना जी के पाल पर आये हुए वृक्षों की डालियां जल के ऊपर झूलती रहती हैं। इन डालियों

में हिंडोले लगे हुए हैं, जिनमें झूलने पर सुगन्धित और शीतल हवा के झोंके आनन्दित करते हैं। हे सुन्दरसाथ जी! अपने आत्मिक नेत्रों से हौजकौसर तालाब के किनारे की अखण्ड शोभा को देखिए।

सत साईं सों करो विलास, तब टूट जाए झूठी आस।

ज्यों ज्यों लेओगे सत सुख, त्यों त्यों छूटे असत दुख॥१४॥

हे सुन्दरसाथ जी! जब आप ध्यान द्वारा अपने प्रियतम से आनन्द की लीला में मग्न रहेंगे, तब मायावी सुखों से शाश्वत सुख पाने की झूठी आशा समाप्त हो जायेगी। जैसे-जैसे आप चितवनि में डूबकर परमधाम के अखण्ड सुखों को प्राप्त करेंगे, वैसे- वैसे माया का यह दुःखमय संसार छूटता जायेगा।

ज्यों ज्यों उठें सत सुख के तरंग, त्यों त्यों उड़े सुपन को संग।

जब याद आवे सुख अपनों, तब छूटेगो झूठो सुपनो॥१५॥

जैसे- जैसे आपके हृदय में परमधाम के अखण्ड सुखों की लहरें आने लगेंगी, वैसे-वैसे सांसारिक सुखों से आसक्ति हटती जायेगी। जब ध्यान में परमधाम के सुखों की अनुभूति होने लगेगी, तब यह झूठा स्वप्नमयी जगत छूट जायेगा।

देखो मन्दिर मोहोल झरोखे, ज्यों छूट जाए दुख धोखे।

देखो झूठी फेर फेर मारे, सत सुख बिना कोई न उबारे॥१६॥

हे सुन्दरसाथ जी! अब आप चितवनि में बैठकर परमधाम के महलों, मन्दिरों तथा झरोखों की शोभा को देखिए। इससे छलमयी जगत् के दुःखों से आपका सम्बन्ध छूट जायेगा। इस बात पर विचार कीजिए कि यह झूठी माया बारम्बार आपको अपने जाल में फंसाती ही रहती है। परमधाम के अखण्ड सुखों की अनुभूति हुए बिना इस मायावी जगत से कोई भी पार नहीं हो सकता अर्थात् प्रेममयी चितवनि में डूब जाने के अतिरिक्त माया से उबारने वाला अन्य कोई भी साधन नहीं है।

छोड़ घर को सुख अलेखे, आतम काहे को दुखड़ा देखे।

आतम परआतम पेखे, सुख उपजे सत अलेखे॥१७॥

अपने परमधाम के अनन्त सुखों को छोड़कर आत्मा को क्या आवश्यकता है कि वह इस दुःखमयी जगत को देखे ? जब आत्मा चितवनि में अपने मूल तन परआतम को देख लेती है तो उसके हृदय में धाम का अनन्त सुख प्रकट हो जाता है।

जब अंतर आंखां खुलाई, तब तो बाहेर की मुंदाई।

जब अंतर में लीला समानी, तब अंग लोहू रह्या न पानी॥१८॥

जब आत्मिक नेत्र बन्द हो जाते हैं तो बाहर के नेत्र खुल जाते हैं। जब आत्मा के हृदय में परमधाम की लीला बस जाती है, तब शारीरिक अंगों में खून और पानी नहीं रहता।

भावार्थ- शरीर में खून और पानी के न रहने की बात आलंकारिक रूप में कही जाती है। मात्र हठयोग की वह जड़ समाधि, जिसमें प्राण दशम द्वार में आकर ठहर जाते हैं, और हृदय की धड़कन बन्द हो जाती है, उसमें ही कई दिनों तक बिना रक्त और पानी के रहा जा सकता है। शेष सभी अवस्थाओं में इनकी अनिवार्य आवश्यकता होती है। शरीर में रक्त या जल के न होने के कथन

का मूल अभिप्राय यह है कि हृदय में ब्रह्मलीला का आनन्द बस जाने पर विरह और प्रेम की अधिकता में शरीर या संसार की ओर कोई ध्यान ही नहीं रहता। उनके लिये शरीर जीवित रहते हुए भी मरे हुए के समान ही होता है।

जब देख्या हांस विलास, गल गया हाड मांस स्वांस।

जब अन्तर आया सुमरन, रहयो अंग न अंतस्करन॥२३॥

जब आत्मा ध्यान द्वारा परमधाम की उस लीला को देखती है, जिसमें अक्षरातीत अपनी ब्रह्मसृष्टियों के साथ अति मधुर हंसी भरी वार्ता (हांस— परिहास) में डूबे होते हैं तो पल— पल हृदय में उसी का स्मरण होता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसके शारीरिक अंगों तथा अन्तःकरण की क्रियाओं में बहुत ही न्यूनता हो जाती है। विरह — प्रेम की इस गहन अवस्था में शरीर की हड्डियां और मांस गल जाते हैं तथा श्वास प्रश्वास की गति भी बहुत कम रह जाती है।

भावार्थ— इस चौपाई के चौथे चरण में कहा गया है कि प्रेम की उस गहन अवस्था में शारीरिक अंगों और अन्तःकरण (हृदय) का अस्तित्व नहीं रहता। ऐसा भाव शब्दों के स्थूल (जाहिरी) अर्थ में ही होता है। सूक्ष्म अर्थ यह है कि विरह और प्रेम की गहन अवस्था में शरीर की प्रतीति (आभास) नहीं रह जाती। वह प्रियतम की प्रेरणा मात्र से जीवन— यापन के लिये अनचाहे रूप में ही कुछ क्रियायें कर पाती है। उसका चिन्तन, मनन विवेचन, खान— पान सभी कुछ धनी की इच्छा पर निर्भर करता है, अपने पर नहीं।

प्रकरण ७८

सुख अखण्ड अछरातीत को, इन समें पाइयत हैं इत।

कहा कहूं कुकरम तिनके, जो माहें रहे के खोवत॥६॥

यही वह सुनहरा समय है जब अक्षरातीत के अखण्ड सुख को पाया जा सकता है। जो सुन्दरसाथ के बीच में रहकर भी उस अखण्ड सुख को खो रहे हैं, उनके इस कुकर्म के विषय में मैं क्या कहूँ ?

भावार्थ — श्रीमुखवाणी का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् धनी के प्रेम में डूबकर चितवनि करनी चाहिए और अपने अखण्ड धन (ब्रह्मानन्द , प्रियतम के दीदार) को प्राप्त करना चाहिए। जो इस ओर अपने कदम नहीं बढ़ाते और व्यर्थ की चीजों में अपने अनमोल समय को गंवाते हैं, उनके इस कार्य के लिये इस चौपाई में बहुत ही कठोर शब्द ' कुकर्म ' का प्रयोग किया गया है।

प्रकरण ८०

मेरे मीठे बोले साथ जी, हुआ तुमारा काम।

प्रेमैं में मगन होइयो, खुल्या दरवाजा धाम।

सखी री धाम जईए॥१॥टेक॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! धाम धनी के द्वारा मेरे तन से कहलवायी हुई इस श्री मुख वाणी के मीठे वचनों से आपका काम हो गया अर्थात् आपको अपने प्रियतम अक्षरातीत के धाम, स्वरूप तथा लीला का ज्ञान हो गया है। अब आपके लिये परमधाम के दीदार

का मार्ग प्रशस्त (प्राप्त) हो गया है। इसलिये अब आप सभी अपने प्राणवल्लभ के प्रेम में मग्न हो जाइए और चितवनि (ध्यान) में डूब जाइए।

भावार्थ— दरवाजा खुल जाना एक मुहावरा है , जिसका तात्पर्य होता है— प्राप्त हो जाना। इस जागनी ब्रह्माण्ड में सुन्दरसाथ का प्रमुख कार्य था— स्वयं को, निजघर को तथा अपने प्रियतम को जानना , जो श्रीमुखवाणी के अवतरण से पूर्ण हो गया। इस ज्ञान की सार्थकता इसी में है कि धाम धनी की चितवनि की जाय।

दौड़ सको सो दौड़ियो, आए पोहोंच्या अवसर।

फुरमान में फुरमाइया, आया सो आखिर॥२॥

चितवनि की राह में अब जो जितना भी परिश्रम (दौड़) कर सकता है, उतना करे प्रियतम अक्षरातीत के दीदार का यही उचित समय है। कुरान में कहा गया है कि वक्त आखिरत को कियामत के समय में मोमिन (ब्रह्ममुनि) अपने अल्लाह तआला के दीदार के लिये हकीकत एवं मारिफत की बन्दगी करेंगे । वह समय आ पहुँचा है।

बरनन करते जिनको, धनी केहेते सोई धाम।

सेवा सुरत संभारियो, करना एही काम॥३॥

मेरे धाम हृदय में बैठकर अक्षरातीत धाम धनी जिस स्वलीला अद्वैत परमधाम का वर्णन करते रहे हैं, उसी परमधाम में अपनी सुरता लगाना (ध्यान करना) एवं सुन्दरसाथ की सेवा करना ही अपना मुख्य काम है।

बन विसेखे देखिए, माहें खेलन के कई ठाम।

पसु पंखी खेलें बोलें सुन्दर, सो मैं केते लेऊं नाम॥४॥

हे सुन्दरसाथ जी ! अब चितवनि द्वारा विशेष रूप से परमधाम के उन वनों (बड़ोवन, मधुवन तथा महावन) को देखिए, जिनमें खेलने के बहुत से शोभा वाले स्थान हैं। उनमें अनन्त प्रकार के सुन्दर— सुन्दर पशु — पक्षी खेला करते हैं और मीठी वाणी बोलते हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि मैं उनमें से कितनों के नाम बताऊँ ?

स्याम स्यामा जी सुन्दर, देखो करके उलास।

मन के मनोरथ पूरने, तुम रंग भर कीजो विलास॥५॥

हे साथ जी ! अब चितवनि के द्वारा मूल— मिलावे में विराजमान युगल स्वरूप श्रीराजश्यामाजी की अति सुन्दर शोभा को आनन्द पूर्वक देखिए। अपने मन की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये चितवनि से मिलने वाले दीदार के रस में डूब कर आनन्द में मग्न हो जाइए।

आनंद वतनी आइयो, लीजो उमंग कर।

हंसते खेलते चलिए , देखिए अपनों घर॥७॥

इस प्रेममयी चितवनि में डूब जाने से परमधाम के आनन्द का रस मिलने लगा है , जिसे अपने हृदय में बहुत उत्साह पूर्वक ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार प्रियतम की शोभा एवं लीला के

नियमित ध्यान में आनन्द पूर्वक डूबे रहकर अपने निजघर को देखना चाहिए।

भावार्थ— हंसते खेलते हुए चलने का तात्पर्य है चितवनि में अपने भौतिक शरीर एवं ब्रह्माण्ड को भूलकर स्वयं को परात्म का स्वरूप मानते हुए प्रियतम के प्रेम में खो जाना।

सुख अखंड जो धाम को, सो तो अपनों अलेखें।

निपट आयो निकट, जो आंखां खोल के देखे॥८॥

अपने परमधाम के अखण्ड सुख तो अनन्त है। यद्यपि उन्हें मन, वाणी के द्वारा व्यक्त तो नहीं किया जा सकता, किन्तु यदि हम अपने आत्मिक नेत्रों से देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि वह अनन्त सुख भी चितवनि के द्वारा हृदय धाम में बहुत ही सुगमता से प्राप्त है।

भावार्थ— पंचभौतिक शरीर के नेत्रों से मात्र बाह्य जगत् को ही देखा जा सकता है। अखंड परमधाम की अनन्त सुखों की अनुभूति करने के लिये आत्मिक दृष्टि का होना अनिवार्य है।

अंग अनुभवी असल के, सुखकारी सनेह।

अरस परस सबमें भया, कछु प्रेमें पलटी देह॥९॥

जब आत्मा के हृदय में परमधाम की शोभा एवं लीला का अनुभव होने लगता है तो आनन्द देने वाले उस अलौकिक प्रेम से सभी अरस— परस हो जाते हैं अर्थात् चितवनि में डूबा हुआ प्रत्येक सुन्दरसाथ प्रेम से ओत प्रोत हो जाता है। इस प्रेम की थोड़ी भी अनुभूति पंच भूतात्मक तन से मोह छुड़ा देती है।

भावार्थ— इस चौपाई में आत्मा और परमात्म के अरस परस होने का प्रसंग नहीं है, बल्कि यहां यह बताया गया है कि परमधाम के उस दिव्य प्रेम की अनुभूति उन्हीं को हो पाती है जो प्रेम और आनन्द के सागर युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में बसाते हैं। ऐसे सुन्दरसाथ में इस नश्वर शरीर के प्रति कोई भी आसक्ति नहीं रह जाती। इसे ही देह (शरीर) का पलट जाना कहते हैं।

मंगल गाइए दुलहे के, आयो समें स्यामा वर स्याम।

नैनों भर भर निरखिए, विलसिए रंग रस काम॥१०॥

इस प्रेम रस में डूब जाने पर अब प्रियतम के दीदार की मधुर घड़ी आ गयी है, इसलिये मिलन का मंगल गीत गाये जाने की आवश्यकता है। अब आत्म— चक्षुओं से अपने प्रियतम को जी भरकर देखिए और स्वयं को उनके दिव्य (अलौकिक) प्रेम एवं आनन्द के रस में डूबो दीजिए।

भावार्थ— चितवनि की गहन अवस्था में कुछ भी गाना या जपना सम्भव नहीं है। इस चौपाई में मंगल गीत गाये जाने का भाव यह है कि आत्मा जब प्रियतम के दीदार के सन्निकट (बहुत ही नजदीकी स्थिति) पहुँच जाती है, जो उसके हृदय में एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है, जिसे मंगल गीत गाना कहते हैं। इस चौपाई में वर्णित ' काम ' शब्द का प्रयोग उस दिव्य प्रेम के लिये किया गया है जो पूर्णतया निर्विकार एवं अलौकिक है। वासना जन्य लौकिक काम के लिये अध्यात्म में कोई भी स्थान नहीं है।

धाम के मोहोलों सामग्री, माहें सुखकारी कई बिध।

अंदर आंखें खोलिए, आई है निज निध॥११॥

परमधाम के महलों में सुख देने वाली अनेकों प्रकार की सामग्री है। हे सुन्दरसाथ जी ! आप अपने आत्मिक नेत्रों से उस शोभा को देखिए। यही हमारी अखण्ड सम्पत्ति हैं , जो चितवनि से ही प्राप्त होती है।

विलास विसेखें उपज्या, अंदर कियो विचार।

अनुभव अंगे आइया, याद आए आधार॥१२॥

अन्तर्मुखी होकर अपने हृदय में परमधाम का चिन्तन करने से विशेष प्रकार का आनन्द प्रकट हुआ। चितवनि में डूब जाने से जीवन के आधार युगल स्वरूप की छवि दिल में बस गयी, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव मेरे हृदय धाम में हुआ।

दरदी विरहा के भीगल, जानों दूर थें आए विदेसी।

घर उठ बैठे पल में, रामत देखाई ऐसी॥१३॥

विरह के दर्द में डूबी हुई ब्रह्मसृष्टि चितवनि में जब परमधाम पहुंचती है तो उसे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वह अब तक विदेश (कालमाया के ब्रह्माण्ड) में रह रही थी और अब अपने निजघर में प्रियतम के पास पहुंच गयी है। धनी ने हमें ऐसा खेल दिखाया है, जिसमें चितवनि के माध्यम से एक पल में ही हमारी ऐसी स्थिति हो जाती है , जिसमें हमें ऐसा लगता है कि अब हम परमधाम में ही जागृत हो गये हैं।

भावार्थ – यद्यपि परमात्म में भी एक पल में ही सबकी जागनी हो जायेगी , किन्तु इस चौपाई में चितवनि के द्वारा ही जागृत होने का प्रसंग चल रहा है।

उठ के नहाइए जमुना जी, कीजे सकल सिनगार।

साथ सनमंधी मिल के, खेलिए संग भरतार॥१४॥

हे सुन्दरसाथ जी ! अब आप चितवनि से परमधाम पहुंचिए और यमुना जी में स्नान करके जल-रौंस की दयोहरियों में अंगना भाव का शृंगार कीजिए। परमधाम से आए हुए सभी सुन्दरसाथ वहां आत्मिक दृष्टि से एक स्वरूप होकर प्रियतम के साथ लीला विहार का आनन्द लें।

भावार्थ – इस चौपाई में उठने का तात्पर्य परमधाम के मूल तनों में उठने से नहीं है , बल्कि इस संसार की मोहमयी निशा को छोड़कर परमधाम में सुरता द्वारा पहुँचने से है। कीर्तन का यह प्रकरण चितवनि द्वारा जागृत करने के सम्बन्ध में है, इसलिये यहां आत्मा के जागृत होने का प्रसंग है , परमात्म के जागृत होने का नहीं । मूल स्वरूप के आदेश से मूल तनों में सबकी जागनी एक साथ ही होनी है, इसलिये इस चौपाई में पांचवें और छठे दिन की जागनी लीला के सन्दर्भ में कहा गया है।

महामत कहे मलपतियां, आओ निज वतन।

विलास करो विध विध के, जागो अपने तन॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! अब आप मुस्कराते हुए चितवनि द्वारा परमधाम पहुंचिए और अपने मूल तनों की शोभा को धारण करके अनेक प्रकार से आनन्दमयी लीलाएं कीजिए।

भावार्थ— इस चौपाई में प्रयुक्त ' जागो अपने तन ' का भाव यह कदापि नहीं मानना चाहिए

कि यहां अपने मूल तनों में जागने की बात कही गयी है। यह वाणी पांचवें दिन की लीला में उतरी है। छठें दिन की लीला में आत्माओं को क्रमशः जागृत होना है और श्री जी के चरणों में छत्तीस हजार का मेला होना है। यदि एक— एक आत्मा चितवनि के द्वारा या शरीर छोड़कर अपने मूल तन में पहुंचती जायेगी तो ' पौढ़े भेले जागसी भेले ' का कथन झूठा हो जायेगा, जो कदापि सम्भव नहीं है। ' जागो अपने तन ' का मूल भाव यह है कि आत्मा अपना वही स्वरूप समझे, जो उसके परमात्म का है, क्योंकि आत्मा परमात्म का प्रतिबिम्ब है। आत्मा के शृंगार को परमात्म के शृंगार में सजाकर प्रियतम को धाम हृदय में बसाना चाहिए।

प्रकरण ८२

ना जप तप ना ध्यान कछू, ना जोगारंभ कष्ट।

सो देखाई बृज रास में, एही वतन चाल ब्रह्मसृष्ट।।१६।।

अब मुझे जप, तप या ध्यान कुछ भी नहीं करना पड़ता है और न योगाभ्यास का भी कष्ट उठाना पड़ता है। ब्रज और रास में भी हमने यही राह अपनायी थी। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों की राह प्रेम वाली राह है।

भावार्थ— सर्वस्व समर्पण (प्रणिधान), विरह तथा प्रेम की मंजिल सर्वोपरि होती है। तारतम्य ज्ञान के बिना जप, तप, ध्यान तथा योगाभ्यास से अक्षरातीत से मिलन नहीं हो पाता है। अक्षरातीत के धाम, स्वरूप तथा लीला का बोध हो जाने पर अनन्य प्रेम के द्वारा उसका साक्षात्कार किया जा सकता है किन्तु, शुष्क हृदय वाला होकर शरीर की परिधि से बाहर निकले बिना केवल जप, तप, ध्यान तथा योगाभ्यास के द्वारा उस अक्षरातीत को नहीं पाया जा सकता। इस चौपाई में यही बात विशेष रूप से बतायी गयी है। विरह और प्रेम में डूबकर उठते— बैठते सोते— जागते, बिना माला के हृदय से युगल स्वरूप का नाम लेने, (जप) मन एवं इन्द्रियों को विषयों में न जाने देने (तप) तथा परमधाम और युगल स्वरूप की शोभा के ध्यान में डूब जाने में (ध्यान) में कोई भी दोष नहीं है।

हुकम सरत इत आए मिली, जो फुरमाई थी फुरमान।

महामत साथ को ले चले, कर लीला निदान।।२४।।

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! धाम धनी ने जो कुरआन में कहला भेजा था कि मैं कियामत के समय में प्रकट होकर अर्शे—ए—अजीम की लीला को जाहिर करूंगा, अब वह समय आ गया है। श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी ने परमधाम की शोभा एवं लीला को जाहिर किया तथा सब सुन्दरसाथ को उस लीला के ध्यान में डुबोया।

भावार्थ — मूल स्वरूप श्री राज जी ने परमधाम में अपने दिल में जो भी कुछ ले लिया, उसे इस संसार में हुक्म कहते हैं। धनी ने मुहम्मद साहिब से इस संसार में आकर जो कुछ भी करने का वायदा किया, उसे शर्त कहते हैं। इस प्रकार इस चौपाई में हुक्म और शर्त का तात्पर्य है— श्री राज जी के द्वारा संसार में आकर परमधाम को जाहिर करने की इच्छा करना और मुहम्मद साहिब से वायदा करना।

प्रकरण ८३

झूठी जिमी में बैठाए के, देखाए सुख अपार।
कौन देवे सुख दूजा ऐसे, बिना इन भरतार।।७।।

इस झूठे संसार में भी धनी ने हमें अपनी मेहर से परमधाम के अनन्त सुखों का रसास्वादन कराया है। बिना प्राणवल्लभ अक्षरातीत के ऐसा दूसरा कौन है जो हमें उन सुखों का यहां अनुभव कराये ?

भावार्थ – परमधाम के सुखों का तात्पर्य है— युगल स्वरूप एवं पच्चीस पक्षों की शोभा तथा अष्ट प्रहर की लीला के दीदार एवं आनन्द की अनुभूति का होना।

प्रकरण ८७

आग परो तिन कायरों, जो धाम की राह न लेत ।
सरफा करे जो सिर का, और सुकुचे जीव देत।।९।।

जो परमधाम की राह पर नहीं चलते और सिर को झुकाने में कंजूसी करते हैं अर्थात् मैं खुदी को पूर्ण रूप से छोड़ना नहीं चाहते , (धनी के प्रेम में जीव को न्योछावर करने में संकोच करते हैं) वे कायर हैं और ऐसे व्यक्तियों को अग्नि में कूद पड़ना चाहिए ।

भावार्थ – आग में कूद पड़ना या जल मरना एक मुहावरा है , जो बहुत फटकार की भाषा में ही प्रयोग किया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि सचमुच में ही इसमें जल मरने की बात कही गयी है । इस कथन का आशय यह है कि जो धाम की राह पर नहीं चल रहे हैं उनके लिये बहुत अधिक धिक्कार है। परमधाम के पच्चीस पक्ष ,तथा युगल स्वरूप की शोभा शृंगार का ज्ञान प्राप्त करना और उसका ध्यान करना ही परमधाम की राह अपनाना है। मैं खुदी के त्याग से ही प्रेम की रसधारा बहती है और धनी का दीदार होता है।

प्रकरण ८८

सैयां हम धाम चले ।।टेक।।
जो आओ सो आइयो , पीछे रहे ना एक खिन।
हम पीठ दई संसार को , जाए सुरत लगी वतन।।९।।

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! अब मेरी सुरता ध्यान (चितवनि) द्वारा परमधाम की ओर चल रही है। जिसको भी मेरी राह पर चलना है , वह मेरा अनुकरण करे। अब मैं चितवनि के इस कार्य में एक पल की भी देरी नहीं कर सकता। हमने अपना ध्यान संसार से हटा लिया है और अब मेरी आत्मा अपने निजघर का दीदार कर रही है।

सुध महरत ले कूच किया , साइत देखी अति सारी।
अब दौड़ सको सो दौड़ियो ,न रहे दौड़ पकड़ी हमारी।।२।।

मैंने सही समय और बहुत अच्छा अवसर देखकर ही इस संसार से अपनी सुरता को परमधाम की ओर मोड़ा है। अब आप मेरी चितवनि की राह पर तेजी से दौड़ (अनुकरण कर) सकते

हैं तो दौड़िए । अब मेरी दौड़ को कोई भी पकड़ नहीं सकता है अर्थात् मेरी चितवनि की राह में कोई भी बाधाएँ नहीं खड़ा कर सकता है ।

कोई दिन राह देखी साथ की , पीछे नजर फिराए ।

पोहोंचे दिन आए आखिर , अब हम रह्यो न जाए ॥३॥

कुछ दिन तक तो मैंने इस बात की प्रतीक्षा की कि सुन्दरसाथ परमधाम की चितवनि में स्वयं को लगा दे । इसके पश्चात् मैंने परमधाम की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर दिया । अब आखिरत का समय आ गया है , अर्थात् तारतम ज्ञान का प्रकाश फैलने के पश्चात् संसार के लिये अन्तिम समय है । ऐसी स्थिति में परमधाम तथा युगल स्वरूप के विरह— प्रेम के अतिरिक्त मुझे इस संसार में जरा भी रहना अच्छा नहीं लगता है ।

हम संग चलो सो ढील जिन करो, छोड़ो आस संसार ।

सुरत हमारी कछू ना रही , हम छोड़ी आस आकार ॥४॥

हमारे साथ जो भी सुन्दरसाथ परमधाम की राह पर चलना चाहते हैं , उन्हें चितवनि में जरा भी ढिलाई नहीं करनी चाहिए । अनावश्यक सम्पूर्ण सांसारिक इच्छाओं का परित्याग कर दीजिए । इस संसार में तो मेरा जरा भी ध्यान नहीं रह गया है । मैंने तो अपने शरीर की भी चिन्ता छोड़ दी है ।

नेक बसे हम बृज में , नेक बसे रास माहें ।

अब तो धाम आइया , तब तो आंखे खुल जाए ॥५॥

ब्रज में हम थोड़े समय (११ वर्ष ५२ दिन) तक रहे । उसके पश्चात् रास में थोड़े समय (एक रात्रि) तक हमने लीला की । इस जागनी ब्रह्माण्ड में तो श्री मुख वाणी के ज्ञान से परमधाम का ज्ञान हो चुका है , जो ब्रज और रास में नहीं था । इस समय अपनी आत्म— जागृति के लिये सबको सावधान होकर जाना चाहिए अर्थात् युगल स्वरूप और पच्चीस पक्षों के ध्यान में डूब जाना चाहिए ।

साथ चले जो ना चलिया , ताए लगसी आग दोजख ।

तलफ तलफ जीव जाएसी , जिन जानों यामें सक ॥६॥

कुछ सुन्दरसाथ तो मेरे साथ चल रहे हैं अर्थात् मेरी तरह युगल स्वरूप एवं परमधाम के ध्यान में मग्न हैं । किन्तु , जो इस राह को नहीं अपनायेगा चितवनि नहीं करेगा, उसे प्रायश्चित (दोजक) की अग्नि में जलना पड़ेगा । उसे मायावी— दुःखों में तड़प— तड़प कर अपना शरीर छोड़ना पड़ेगा । इस बात में जरा भी कोई संशय न करे ।

भावार्थ— इस चौपाई से उन सुन्दरसाथ को सबक सीखना चाहिए जो या तो चितवनि का विरोध करते हैं या न करने के तरह— तरह के बहाने गढ़ा करते हैं ।

पीछे अटकाव न राखो रंचक , जो आओ संग हम ।

तुम जानोगे वह नेक है , पर जरा होसी जुलम ॥७॥

यदि आप मेरे साथ आते हैं तो माया का कोई भी आकर्षण अपने मन में न रखना । आपको बाह्य रूप से तो यही लगता है कि यह माया बहुत ही अच्छी है, किन्तु इसके प्रति जरा सा भी आकर्षण आत्मिक सुख के लिये घातक होता है ।

जो न आवे सो जुदा होइयो, ना तो होसी बड़ी जलन।

हम तो चले धाम को , तुम रहियो माहें करन॥८॥

जो मेरे साथ परमधाम की चितवनि की राह पर नहीं चल सकता, वह मुझसे अलग हो जाय। सुन्दरसाथ की जमात में रहकर भी जो ध्यान की मेरी राह नहीं अपनाता है, वह एक प्रकार से दोरंगी चाल चल रहा होता है। ऐसे व्यक्ति को बहुत अधिक पश्चाताप की अग्नि में जलना पड़ेगा। मैं तो अब मात्र परमधाम की ही चितवनि में तल्लीन हूँ। तुम अपनी झूठी माया में मस्त रहो।

भावार्थ – इस चौपाई में चितवनि करने के लिये कितना कठोर आदेश है कि जो चितवनि नहीं कर सकता, वह मुझसे अलग हो जाय। जो सुन्दरसाथ धाम चलने के प्रकरणों को देह त्याग के प्रसंग में मानते हैं, उन्हें इस विषय पर गहनता से विचार करना चाहिए कि ‘**जिन जुबां मैं दुख कहूँ, सो जुबां करूँ सत दूक।**’ (क० हि०) का उद्घोष करने वाले श्री महामति जी सुन्दरसाथ को तन छोड़ने के लिये इस प्रकार दबाव से (जबरन) क्यों प्रेरित करेंगे ?

हम छोड़े सुख सुपन के , आए नजरोँ सुख अखंड।

विरहा उपज्या धाम का , पीछे हो गई आग ब्रह्मांड॥९॥

मैंने संसार के झूठे सुखों को छोड़ दिया है। मुझे परमधाम के अखण्ड सुखों का अनुभव भी हो रहा है। अब मुझे परमधाम का विरह सता रहा है। इस विरह के कारण ही यह सम्पूर्ण संसार मेरे लिये अग्नि की लपटों के समान कष्टदायी प्रतीत हो रहा है।

भावार्थ – छठें दिन की लीला में सब सुन्दरसाथ को परमधाम की चितवनि की ओर ले जाने के उद्देश्य से ही महामति जी की ओर से ऐसी बात कही जा रही है कि मुझे परमधाम के सुखों का अनुभव हो रहा है तथा मुझे धाम का विरह सता रहा है। उनके धाम हृदय में तो युगल स्वरूप विराजमान थे ही, फिर विरह, दर्शन और आनन्द की बात मात्र लीला रूप में दूसरों को सिखापन देने के लिये है।

मैं आग देऊँ तिन सुख को, जो आड़ी करे जाते धाम।

मैं पिंड न देखूँ ब्रह्मांड , मेरे हिरदे बसे स्यामा स्याम॥१०॥

परमधाम की चितवनि की राह में माया के जो भी सुख बाधा डालेंगे, उन्हें मैं जड़ – मूल से नष्ट कर दूंगी। अब तो मेरे धाम हृदय में युगल स्वरूप श्री राज श्यामा जी बस चुके हैं। अब न तो मुझे शरीर दिखायी देता है और न संसार।

कई किताबें करी साथ कारने ,सो भी गाई जगावन।

ए सुन के जो न दौड़िया , जिमी ताबा होसी तिन॥११॥

सुन्दरसाथ को जागृत करने के लिये धनी ने मेरे तन से अनेक ग्रन्थों का अवतरण कराया। इस ब्रह्मवाणी की आवाज को सुनकर जो धनी के प्रेम में दौड़ नहीं लगायेगा, उसके लिये यह धरती तपाये हुए तवे के रंग के समान हो जायेगी अर्थात् उसे प्रायश्चित के दुःख से गुजरना पड़ेगा।

कई लोभें लिए लज्जा लिए , कई लिए अहंकार ।

यों छलें पीछे कई पटके , जो केहेते हम सिरदार ॥१२॥

सुन्दरसाथ की जमात में बहुत से सुन्दरसाथ ऐसे भी हैं , जिनका यह दावा है कि वे सबमें सरदार (ब्रह्मसृष्टि) हैं , किन्तु मायावी सुखों का लोभ उनसे छूटता नहीं । किसी से ज्ञान ग्रहण करने सेवा करने और चितवनि करने में उन्हें लज्जा लगती है । अपने कुल, रूप और विद्या के अहंकार में मग्न रहते हैं । इस प्रकार माया ने उन्हें अज्ञानता के अन्धकार में पटक (फंसा) रखा है ।

विखे स्वाद जिन लग्यो , सो लिए इंद्रियों घेर ।

जो एक साइत साथ आगे चल्या, पीछे पड़े माहें करन अंधेर ॥१३॥

विषयों का स्वाद जिनको लग जाता है , वे इन्द्रियों के अधीन हो जाते हैं । विषयों में फंसकर यदि कोई व्यक्ति एक पल के लिये धनी के प्रेम की राह पर आगे चलता भी है तो बाद में माया के गहन अन्धकार में डूब जाता है ।

गुन अवगुन सबके माफ किए, जो रहो या चलो हम संग ।

हम पीछे फेर ना देखहीं , पिउसों करें रस रंग ॥१४॥

सबके गुण और अवगुणों को मैंने क्षमा कर दिया है । अब जिसकी इच्छा माया में फंसे रहने की हो , वह फंसा रहे तथा जो मेरे साथ परमधाम की राह अपनाना चाहे , वह मेरे साथ चले अर्थात् चितवनि में डूब जाये । हमें तो अब वापस माया की ओर जरा भी नहीं देखना है । अब तो हम ध्यान में डूबकर अपने प्रियतम से आनन्द का रसपान करते रहते हैं ।

भावार्थ— अवगुणों को क्षमा करने की बात तो चला करती है , किन्तु इस चौपाई में गुणों को भी क्षमा करने की बात क्यों की गयी है , यह गहन रहस्य की बात है ? विद्वता मनुष्य का श्रेष्ठ गुण है , किन्तु यदि उसके कारण अहम् भावना में वृद्धि होती है , तो ऐसी विद्वता अहम् रूपी विकार का कारण है । इसी प्रकार कोई सेवा भावना पूरी निष्ठा से तो करता है , किन्तु प्रेम के सच्चे रस से दूर होने के कारण वह दूसरों पर जबरन अपने विचारों को थोपने का प्रयास करता है । इस प्रकार सेवा भावना गुण होते हुए भी अवगुण (आलस्य, लापरवाही) का कारण बन जाती है ।

साथ होवे जो धाम को , सो भूले नहीं अवसर ।

सनमंधी जब उठ चले, तब पीछे रहे क्यों कर ॥१५॥

जो सुन्दरसाथ परमधाम से आए हैं , वे इस सुनहरे अवसर को नहीं भूलेंगे ! जब उनके अन्य साथी धनी के प्रेम में डूबने लगें तो भला इस कार्य में वे पीछे क्यों रहेंगे ?

महामत कहें मेहेबूब का , सांचा स्वाद आया जिन ।

परीछा तिनकी प्रगट , छेद निकसैं बान वचन ॥१६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जिन सुन्दरसाथ को अपने प्रियतम के प्रेम का सच्चा स्वाद मिल चुका है , उनके लिये यह परीक्षा की घड़ी है कि वे संसार को छोड़कर स्वयं को धनी के प्रेम में कितना डूबा पाते हैं । उनके लिये ये वचन वाण की तरह छेदकर निकल जायेंगे अर्थात् उनके ऊपर इन वचनों का अटूट प्रभाव होगा ।

प्रकरण ८६

चलो चलो रे साथ , आपन जईए धाम ।

मूल वतन धनिएं बताया , जित ब्रह्मसृष्ट स्यामा जी स्याम ॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! अब हमें ध्यान द्वारा अपने परमधाम में पहुंचना है। धाम धनी ने हमें उस मूल घर की पहचान करा दी है जहाँ मूलमिलावें में ब्रह्मसृष्टियां तथा श्री राज श्यामा जी विराजमान हैं।

मोहोल मंदिर अपने देखिए, देखिए खेलन के सब ठौर ।

जित है लीला स्याम स्यामा जी, साथ जी बिना नहीं कोई और ॥२॥

अब चितवनि (ध्यान) में अपने परमधाम के महलों , मन्दिरों तथा खेलने के सभी स्थानों की शोभा को देखिए। सम्पूर्ण परमधाम में युगल स्वरूप श्री राज श्यामाजी तथा सुन्दरसाथ की ही लीला है। उस स्वलीला अद्वैत वाहिदत में इनके सिवाय अन्य किसी का भी अस्तित्व नहीं है।

भावार्थ — यहां शंका हो सकती है कि जब परमधाम में युगल स्वरूप तथा सखियों के सिवाय अन्य कोई नहीं है तो खूब खुशालियों तथा पशु-पक्षियों का वर्णन क्यों किया गया है ? इसका समाधान यह है कि खूब खुशालियां तथा पशु पक्षी भी इन्हीं के स्वरूप हैं , इसलिये इस चौपाई के कथन से कोई विरोधाभास नहीं है।

रेत सेत जमुना जी तलाब , कई ठौर बन करे विलास ।

इस्क के सारे अंग भीगल , रहेस रंग विनोद कई हांस ॥३॥

जमुना जी के किनारे श्वेत मोतियों के समान चमकती हुई रेती की शोभा है। इसी प्रकार हौज कौसर तालाब तथा वन में बहुत से अति सुन्दर स्थान हैं , जहां प्रेम की लीला होती रहती है। सभी के अंग इश्क के रस में भीगे हुए हैं तथा सभी आपस में प्रेम आनन्द तथा हास्य- विनोद की लीलायें करते रहते हैं।

पसु पंखी माहें सुन्दर सोभित, करत कलोल मुख मीठी बान ।

अनेक विध के खेल जो खेलत,सो केते कहूं मुख इन जुबान ॥४॥

परमधाम में पशु- पक्षियों की बहुत ही सुन्दर शोभा है। वे अपने मुख से अति मीठी वाणी बोलते हुए तरह- तरह की क्रीड़ाएं करते हैं। वे अनेकों प्रकार के ऐसे- ऐसे खेल खेलते हैं , जिनका वर्णन मैं इस मुख और वाणी से कैसे करूं ?

ऐही सुरत अब लीजो साथ जी, भुलाए देओ सब पिंड ब्रह्मांड ।

जागे पीछे दुख काहे को देखें , लीजे अपना सुख अखंड ॥५॥

हे साथ जी ! अब धनी के प्रेम में अपने शरीर और संसार को बिल्कुल ही भुला दीजिए। जागृत होने के पश्चात् जान बूझकर मायावी दुः खों को देखते रहने से क्या लाभ है ? आप अपने परमधाम के अखण्ड सुखों में रसमग्न हो जाइए।

धनी भेज्या फुरमान बुलावने , कह्या आइयो सरत इन दिन।

खेल में लाहा लेय के आपन , चलिए इत होए धन धन॥७॥

धाम धनी ने हमें परमधाम में वापस बुलाने के लिये कुरआन भेजा है। उन्होंने कुरआन में कहा है कि जब जागनी लीला का समय आ जाए, उस समय संसार छोड़कर परमधाम के ध्यान में डूब जाना चाहिए। इसलिये हे सुन्दरसाथ जी! इस माया के खेल में आप सभी धनी के प्रेम में डूबने का लाभ लीजिए और यहाँ धन्य— धन्य कहलाकर परमधाम चलिए।

भावार्थ — कुरआन के तीसवें पारे में लिखा है कि—

दसवीं ईसा ग्यारहीं इमाम , बारहीं सदी फजर तमाम।

ए लिख्या बीच सिपारे आम , तीसमां सिपारा जाको नाम॥

पुनः लिखा है कि —

कायम सदी तेरहीं , उथींदा निरवाण।

महामति जोए इमाम जी , जाहेर कराऊं फुरमान।

किन्तु, चौदहवीं के बाद का वर्णन नहीं है। वर्तमान में चौदहवीं सदी की गणना जन्म से की जाती है, किन्तु होना चाहिए था हिजरी सन के प्रारम्भ से मक्के से मदीने की यात्रा हिजरी कहलाती है। यहीं से हिजरी सन् शुरू होता है। उस समय से की गयी गणना ही यथार्थ है। कुरआन में वर्णित दसवीं से चौदहवीं सदी तक का समय अति महत्वपूर्ण है, जिसमें मोमिनों (ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम के ध्यान में डूबने के लिये अक्षरातीत की सिखापन है।

चौदे लोक में झूठ विस्तरयो , तामें एक सांचे किए तुम।

हंसते खेलते नाचते चलिए , आनंद में बुलाइयां खसम॥८॥

चौदह लोकों के सभी प्राणी झूठे हैं अर्थात् महाप्रलय में लय हो जाने हैं। इसके विपरीत धनी ने तुम्हें अखण्ड (सत्य) कहलाने की शोभा दी है। हे साथ जी ! धनी हमें परमधाम में बुला रहे हैं। इसलिये आनन्द में मग्न होकर हंसते, खेलते और नाचते हुए परमधाम चलिए।

भावार्थ— इस चौपाई में हंसते, खेलते और नाचते हुए परमधाम चलने का प्रसंग है। इस प्रसंग को बाह्य अर्थों में नहीं लेना चाहिए। परमधाम तथा युगल स्वरूप के ध्यान से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे ही ' हंसते खेलते और नाचते हुए ' चलना कहा गया है। चितवनि से प्राप्त होने वाला प्रथम श्रेणी का वह आनन्द जिसमें न तो शरीर की सुध रहे और न संसार की, नाचना कहा जायेगा। मध्यम श्रेणी का आनन्द, खेलते हुए चलने वाला कहा गया है तथा तृतीय श्रेणी का आनन्द, हंसते हुए चलने वाला कहा गया है।

अब छल में कैसे कर रहिए , छोड़ देओ सब झूठ हराम।

सुरत धनी सो बांध के चलिए , ले विरहा रस प्रेम काम॥९॥

ऐसी अवस्था में अब माया के इस झूठे छल वाले संसार में भला कैसे रहा जा सकता है ? यह सारा संसार झूठा है और नष्ट हो जाने वाला है। इसमें फंसे रहना पाप है। इस झूठे संसार को छोड़ दीजिए और धनी के विरह— रस तथा प्रेम में डूबकर अपनी सुरता से उनमें खोये रहिए।

जो जो खिन इत होत है ,लीजो लाभ साथ धनी पेहेचान।

ए समया तुमें बहुरि न आवे, केहेती हों नेहेचे बात निदान॥१०॥

मैं एक विशेष बात निश्चय करके कहती हूँ कि इस जागनी लीला में जो एक-एक पल बीता जा रहा है , उसमें धाम धनी तथा सुन्दरसाथ के स्वरूप की पहचान करके सेवा का लाभ लेना चाहिए। इस प्रकार का अनमोल समय आपको दुबारा प्राप्त होने वाला नहीं है।

अब जो साइत इत होत है, सो पिउ बिना लगत अगिन।

ए हम सह्यो न जावहीं ,जो साथ में कहे कोई कटुक वचन॥१३॥

प्रियतम के दीदार बिना एक-एक पल जो बीता जा रहा है , अग्नि के समान कष्टकारी प्रतीत हो रहा है। यदि सुन्दरसाथ में कोई व्यक्ति किसी के प्रति कटु शब्दों को प्रयोग करता है तो वह मुझे सह्य नहीं है।

भावार्थ – कटु शब्दों के अस्त्र-शस्त्रों के घाव से अधिक तीखे होते हैं। इस चौपाई से तो यह पूर्णतया स्पष्ट है कि जो सुन्दरसाथ किसी को भी कटु शब्दों से सम्बोधित करते हैं वे स्वप्न में भी श्रीजी की कृपा के पात्र नहीं बन सकते।

इत खिनका है जो लटका , जीत चलो भावें हार।

महामत हेत कर कहें साथ को, बिध बिध की करत पुकार॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! मैं आपसे बहुत प्यार करके तरह-तरह से समझाकर यह बात कह रहा हूँ कि यह संसार क्षण भंगुर (क्षण में नाश होने वाला) है अर्थात् पल-पल परिवर्तन शील है। इसमें धनी से प्रेम करके या तो माया से विजयी होकर परमधाम चलिए या माया में डूबकर हारते हुए परमधाम चलिए, यह सब आपके हाथ में है।

प्रकरण ६०

साथ जी सोभा देखिए , करे कुरबानी आतम।

वार डारों नख सिख लों, ऊपर धाम धनी खसम॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! अपने प्राणवल्लभ धाम धनी अक्षरातीत श्री राज जी के ऊपर अपने नख से शिख तक तन-मन को न्योछावर कीजिए और अपनी आत्मा को उनके प्रेम में डुबाकर प्रियतम की नूरी शोभा का दीदार कीजिए।

प्रकरण ६२

अब हम धाम चलत हैं , तुम हूजो सबे हुसियार।

एक खिन की बिलम न कीजिए , जाए घरों करें करार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! अब मैं परमधाम की चितवनि में लग रहा हूँ। आप सभी सावचेत हो जाइए। अब तो चितवनि (ध्यान) करने में एक क्षण की भी देरी करना उचित नहीं है। आप भी मेरे साथ ध्यान में लग जाइए , जिससे परमधाम की अनुभूति करके सबके

हृदय में आनन्द की वर्षा हो सके।

साथ देखो ए अवसर , वासना करो पेहेचान।

आए पोहोंचे बृज में , याद करो निसान ॥२॥

सुन्दरसाथ जी ! इस सुनहरे अवसर का लाभ उठाइए। अब चितवनि द्वारा अपनी आत्मा के स्वरूप की पहचान कीजिए। अब ध्यान द्वारा उन पूर्व की लीलाओं को याद कीजिए। सबसे पहले हम ब्रज में आये थे।

धनिएं देखाया नजरों , सुरतां दैयां फिराए।

अब पैठे हम रास में , उछरंग हिरदे चढ़ आए ॥३॥

धनी ने अपनी मेहर की दृष्टि से हमारी सुरता को कालमाया से परे योगमाया के अखण्ड ब्रज में भेजा जिसे हमने अपनी आत्मिक दृष्टि से देखा। इसके पश्चात् हम रास के ब्रह्माण्ड में गये , जहां की अखण्ड प्रेममयी लीला को देखकर हमारे हृदय में आनन्द भर गया।

भावार्थ— इस चौपाई में ध्यान में डूबने पर होने वाली उन अनुभूतियों का वर्णन है कि किस प्रकार हमारी सुरता (आत्मिक दृष्टि) कालमाया के ब्रह्माण्ड से परे अखण्ड ब्रज और रास में पहुँचती है। परमधाम में परमात्म की लीला है , किन्तु परमधाम से बाहर हृद और बेहद में आत्मा की ही लीला सम्भव है। आत्मा को परमात्म (परात्म) का प्रतिबिम्ब कहते हैं। ' सिफत ऐसी कही मोमिन की , जाके अक्स का दिल अर्स ' का कथन यही सिद्ध करता है। ध्यान में आत्मिक दृष्टि द्वारा ही परमधाम , युगल स्वरूप तथा अपने मूल तन को देखा जाता है। आत्मा , सुरता और वासना सभी एकार्थवाची है। यह गहन रहस्य का विषय है कि परमधाम में विराजमान परमात्म की नजर ही आत्मा या सुरता के रूप में कही जायेगी। ' यामें सुरत आई स्यामा जी की सार ' प्रकटवाणी का कथन यही सिद्ध करता है। ध्यान में आत्मा की दृष्टि ही परमधाम पहुँचती है।

जाग्रत बुध हिरदे आई , अब रहे ना सकें एक खिन।

सुरत टूटी नासूत से , पोहोंची सुरत वतन ॥४॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में हमारे हृदय में जागृत बुद्धि का प्रवेश है , जिससे हमें निजघर और धनी के स्वरूप की पहचान हो गयी है। अब विरह की अग्नि में एक क्षण के लिये भी इस संसार में नहीं रहा जाता। अब मेरी सुरता इस पृथ्वी लोक से परे परमधाम के ध्यान में लग गयी है।

चिन्हार भई सब साथ में , आई धाम खुसबोए ।

प्रेम उपज्या मूल का , सुपन रहेना क्यों होए ॥५॥

अब जागृत बुद्धि के ज्ञान का प्रकाश फैलने से सुन्दरसाथ को धनी एवं निजघर की सारी पहचान हो गयी है। चितवनि में लग जाने से परमधाम की भी सुगन्धि मिलने लगी है अर्थात् अनुभूति होने लगी है। अब हृदय में परमधाम का प्रेम पैदा हो गया है। ऐसी स्थिति में भला इस स्वप्नमयी संसार में कैसे रहा जा सकता है।

देख तैयारी साथ की , ओ समया रह्या न हाथ।

अवसर नया उदे हुआ , उमंगियो सब साथ ॥७॥

सुन्दरसाथ परमधाम के गहन ध्यान में डूबने के लिये इस प्रकार तैयार है कि उनके लिये समय बहुत तेजी से बीतता हुआ प्रतीत हो रहा है (उनके हाथ में नहीं है) अब सब सुन्दरसाथ बहुत अधिक उमंग में है , क्योंकि परमधाम की वाणी के अवतरित हो जाने के पश्चात् केवल चितवनि के ही आनन्द में डूबे रहने का नया ही अवसर प्राप्त हुआ है।

भावार्थ— इस चौपाई में श्री लालदास जी और गोवर्धनदास जी के विवाद का कोई प्रसंग नहीं है। विक्रम संवत् १७४८ में ' मारिफत सागर ' की वाणी के अवतरण के पश्चात् श्री महामति जी दिन— रात ध्यान में डूबे रहने लगे तथा सुन्दरसाथ भी उसी राह का अनुसरण करने लगा इसी को नया अवसर या सुन्दरसाथ की तैयारी कहा गया है। ' समय हाथ में न रहना ' एक मुहावरा है , जिसका अभिप्राय यह है कि सुन्दरसाथ चितवनि की ऐसी गहन अवस्था में पहुँचने लगे कि समय कितनी तेजी से बीतता जा रहा है , इसका पता ही नहीं चलता था।

क्यों रहे सुरतें पकड़ी , एक दूजे के आगे होए।

दौड़ा दौड़ ऐसी हुई , पीछे रहे न कोए ॥८॥

भला अब परमधाम की आत्मायें इस संसार को क्यों पकड़े रहेगी ? सभी ध्यान में एक दूसरे से आगे निकल जाना चाहती हैं। धनी के प्रेम में सर्वस्व न्योछावर करने की ऐसी होड़ (दौड़) पैदा हो गयी है कि कोई भी सुन्दरसाथ किसी से पीछे नहीं रहना चाहता ।

कई हुती देस परदेस में , ए बातें सुनियां तिन ।

तिनकी सुरतें इत बांधियां , तित रहे न सके एक खिन ॥९॥

तारतम ज्ञान का प्रकाश पाने वाले सभी सुन्दरसाथ श्री पन्ना जी नहीं आ सके थे। कुछ कारणों वश उन्हें अपने देश— प्रदेश में ही रह जाना पड़ा था। परमधाम की ब्रह्मवाणी के अवतरण तथा सुन्दरसाथ के चितवनि में डूब जाने की बात जब उन तक पहुँची तो उन्होंने भी श्री जी के चरणों में अपना ध्यान केन्द्रित कर लिया। वे अपने घरों में एक क्षण के लिये भी माया में नहीं रह सके अर्थात् दिन— रात वे भी ध्यान में डूब गये।

परदेसैं साथ पसरयो हुतो , तित सबे पड़यो सोर।

यों ठौर ठौर रंग फैलिया , हुआ महंमदी दौर ॥१०॥

बहुत से सुन्दरसाथ पन्ना जी से दूर के प्रदेशों में निवास करते थे। पन्ना जी के सुन्दरसाथ के चितवनि में डूब जाने की खबर उन तक भी जा पहुँची । इस प्रकार चारों ओर परमधाम और युगल स्वरूप की चितवनि का रंग फैल गया। सभी सुन्दरसाथ श्री जी को अक्षरातीत का स्वरूप मानकर उनके बताये हुए मार्ग पर चलने लगे।

पीछला साथ आए मिलसी , पर अगले करें उतावल।

केताक साथ विचार नीका , सो जानें चलें सब मिल ॥११॥

ब्रह्मवाणी से धनी के स्वरूप की पहचान करने वाले सुन्दरसाथ तो भविष्य में ध्यान में लग ही जायेंगे, किन्तु जिनको प्रियतम अक्षरातीत की पहचान हो चुकी है, वे इस बात के लिये उतावले हो रहे हैं कि कब हम युगल स्वरूप तथा परमधाम की चितवनि में डूब जायें? कुछ सुन्दरसाथ के

विचार बहुत अच्छे हैं। वे सोचते हैं कि हम सब मिलकर परमधाम के ध्यान में लग जायें।

इन बिध सोर हुआ साथ में , ठौर ठौर पड़ी पुकार।

एक आए एक आवत हैं , एक होत हैं तैयार ॥१२॥

इस प्रकार जगह— जगह सुन्दरसाथ में परमधाम की चितवनि की आवाज जोर— शोर से सुनायी पड़ने लगी। धाम धनी के चरणों में कुछ सुन्दरसाथ आ चुके हैं , कुछ आ रहे हैं तथा कुछ आने के लिये तैयार हो रहे हैं।

ऐसा समया इत हुआ , आए पोहोंचे इन मजल।

कोई कोई लाभ जो लेवहीं , जिन जाग देखाया चल ॥१३॥

जागनी का यह ऐसा दौर है , जिसमें सुन्दरसाथ उस मन्जिल पर पहुँच चुका है जहां युगल स्वरूप की शोभा को दिल में बसाने के सिवाय अन्य कोई भी चाहत नहीं होती। जिन— जिन सुन्दरसाथ ने चितवनि द्वारा अपने दिल में धनी को बसाया और अपनी आत्मा को जागृत किया, वे ही इस अनमोल समय का लाभ ले सके।

सुध बुध आई साथ में , सुरता फिरी सबन।

कोई आगे पीछे अव्वल , सबे हुए चेतन ॥१४॥

धनी की मेहर से सुन्दरसाथ में जागृति आई। सबकी सुरता माया से हटकर युगल स्वरूप की शोभा में लग गयी। इस कार्य में कोई तो बहुत ही आगे हो गया तो कोई पीछे रह गया। कोई शुरू से ही चितवनि में लगा हुआ था। इस प्रकार अपनी आत्म जागृति के सम्बन्ध में सभी पूरी तरह से सावचेत हो गये।

कोई कोई पीछे रहे गई , तिनकी सुरत रही हम माहें।

ढील करी ज्यों स्वांतसियों , आए अंग पोहोंचे नाहें ॥१५॥

जिस प्रकार ब्रज में बांसुरी की आवाज सुनने पर भी स्वांतसी सखियां तुरन्त ही अपने घरों को नहीं छोड़ सकी थी , उसी प्रकार मेरी वाणी रूपी बांसुरी की आवाज सुनकर भी कुछ सुन्दरसाथ अपने घरों में ही रह गये। उनके हृदय में ब्रह्मवाणी का प्रकाश तो पहुँचा , किन्तु वे अपना घर द्वार छोड़कर मेरे पास पन्ना जी तक नहीं पहुँच सके , किन्तु उनकी सुरता मुझसे जुड़ी रही।

कहे महामत परीछा तिन की , जो पेहेले हुए निरमल।

छूटे विकार सब अंग के , आए पोहोंचे इस्क अव्वल ॥१६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि ब्रह्मवाणी के प्रकाश में स्वयं को जागरूक कर लेने वाले सुन्दरसाथ के लिये यह परीक्षा की घड़ी है। जो सुन्दरसाथ युगल स्वरूप को तथा परमधाम को अपने दिल में ध्यान द्वारा बसाने की राह पर चले , उन्हें सबसे पहले इश्क (अनन्य प्रेम) की प्राप्ति हुई। उनके हृदय के सभी विकार दूर हो गये तथा वे सबसे पहले निर्मल हो गये।

प्रकरण ६३

अब हम चले धाम को , साथ अपना ले।

लिख्या कौल फुरमान में , आए पोहोंच्या ए ॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि कुरआन में लिखे हुए वचनों के पूर्ण होने का समय आ गया है। अब मैं परमधाम के सुन्दरसाथ के साथ चितवनि में मग्न हो रहा हूँ।

भावार्थ— कुरआन के पार: ७ व इज़ा समिअू सूर: ६ आयत ३६ में कहा गया है कि मुर्दों को खुदा कियामत के दिन उठाएगा और फिर वापस अर्शे अजीम ले जायेगा अर्थात् रूहों (ब्रह्ममुनियों) को एक जमां की नमाज पढ़ाकर वापस ले जायेगा।

‘ अर्स बका पर सिजदा , करावसी इमाम’ श्री जी के द्वारा सबको शरियत और तरीकत से हटाकर परमधाम की चितवनि में लगाया गया , जिससे हकीकत और मारिफत की राह मिली। अपनी आत्मा को जागृत करने के लिये प्रेममयी चितवनि के अतिरिक्त अन्य कोई हकीकत और मारिफत की राह नहीं है। इस सम्पूर्ण प्रकरण में परमधाम की शोभा और लीला का वर्णन करके सबको चितवनि करने के लिये प्रेरित किया गया है।

सखी हम तो हमारे घर चले , तुम हूजो हुसियार।

सुरता आगे चल गई , हम पीठ दर्ई संसार ॥२॥

हे सुन्दरसाथ जी ! हम तो अपने परमधाम के ध्यान में तल्लीन हो गये हैं। आप भी सावचेत (सावधान) हो जाना अर्थात् इस छलनी माया के जाल में न फंसना। हमने संसार से नाता तोड़ दिया है और अपनी सुरता को परमधाम में लगा दिया है।

भावार्थ— पीठ देना एक मुहावरा है , जिसका भाव होता है— सम्बन्ध तोड़ लेना या बिल्कुल ही भुला देना। योग दर्शन का कथन है —‘ चित्तवृत्ति निरोध : योग : ’। अर्थात् चित की वृत्तियों का निरोध ही योग है। इसका अभिप्राय यह है कि अपनी चित्त— वृत्तियों को माया में भटकने (फंसने) से रोक देने पर योग की स्थिति प्राप्त होती है। इसी को बोल चाल की भाषा में ‘ चितवनि ’ कहते हैं। जिसका तात्पर्य होता है—संसार से अपना ध्यान हटाकर प्रियतम में लग जाना।

हममें पीछे कोई ना रहे , और रहो सो रहो ।

गुन अवगुन सबके माफ़ किये , जिन जो भावे सो कहो ॥३॥

मुझे आशा है कि हममें से कोई भी सुन्दरसाथ अब चितवनि में पीछे नहीं रहेगा। यदि आलस्य और प्रमाद के कारण कोई इसमें भी पीछे रहता है तो वह रहे। इससे अधिक मैं और क्या कहूँ ? मैंने अब सभी के गुणों और अवगुणों को क्षमा कर दिया है। अब जिसको जो भी अच्छा लगे , वह कहा करे। मुझे उस पर कोई भी आपत्ति नहीं।

भावार्थ— गुण और अवगुण की विशेष व्याख्या ८८/१४ में हो चुकी है। इस चौपाई का मुख्य भाव यही है जिसको श्री जी पर थोड़ी सी भी श्रद्धा होगी , वह परमधाम की चितवनि अवश्य ही करेगा। इससे आगे की चौपाइयां इसी बात को प्रमाणित करती हैं।

अब हम रह्यो न जावहीं , मूल मिलावे बिन ।

हिरदे चढ़ चढ़ आवहीं , संसार लगत अगिन ॥४॥

मूल मिलावे के दीदार बिना इस संसार में मुझसे नहीं रहा जा रहा है। मेरी आत्मा के हृदय में मूल मिलावे की शोभा बार- बार आ रही है। अब मुझे संसार अग्नि के समान कष्टकारी लग रहा है।

भावार्थ— महामति जी के तन से तो सम्पूर्ण परिक्रमा , सागर तथा शृंगार ग्रन्थ का अवतरण हुआ है। उनके द्वारा मूल मिलावे के दर्शन की व्याकुलता का जो वर्णन है , वह सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये है। जिस प्रकार किसी मकान में आग लग जाने पर उसे छोड़ना ही पड़ता है , उसी प्रकार इस चौपाई में संसार को अग्नि के समान ' त्याज्य ' बताया गया है। ' संसार लगत अगिन ' का यही भाव है।

सोई बस्तर सोई भूखन , सोई सेज्या सिनगार ।

सोई मेवा मिठाइयां , अलेखें अपार ॥५॥

मेरी आत्मा परमधाम के नूरी वस्त्रों— आभूषणों , सेज्या (शैय्या) तथा शृंगार को देख रही है। शब्दों में वर्णन न हो सकने वाली अनन्त प्रकार की मिठाइयों तथा मेवों का भी अनुभव हो रहा है।

भावार्थ— स्वलीला अद्वैत परमधाम में मेवा , मिठाइयों तथा वस्त्र आभूषणों का वर्णन लौकिक रूप में नहीं समझना चाहिए। यह सभी मात्र लीला रूप में है और परब्रह्म के ही नूरी स्वरूप हैं। आगे की चौपाईयों में वर्णित शोभा में भी यही भाव होगा।

सोई धनी सोई वतन , सोई मेरो सुन्दरसाथ ।

सोई विलास अब देखिए , दोरी खँची उनके हाथ ॥६॥

हे सुन्दरसाथ जी ! अब अपने परमधाम की उस शोभा और आनन्द को देखिये । उस मूल मिलावे में हमारे धनी कैसे विराजमान हैं तथा उनको घेरकर किस प्रकार मेरे सुन्दरसाथ बैठे हुए हैं ? मेरी सुरता की रस्सी तो धनी के ही हाथों में हैं। उसे खींचकर वे परमधाम ले जा रहे हैं।

सोई चौक गलियां मंदिर , सोई थंभ दिवालें द्वार ।

सोई कमाड़ सोई सीढ़ियां , झलकारों झलकार ॥७॥

मेरी आत्मा की नजरों के सामने झलकार करते हुए वही चौक , गलियां , मन्दिर , थम्भ , दीवालें और दरवाजे दिखायी पड़ रहे हैं। झिलमिलाते हुए कपाटों तथा सीढ़ियों की शोभा अति मनोहारी है।

बोए नेक आवे इन घर की , तो अंग निकसे आहे ।

सो तबहीं ततखिन में , पिउ जी पे पोहोंचाए ॥८॥

ऐसे परमधाम की यदि थोड़ी भी सुगन्धि आ जाय अर्थात् थोड़ा भी अनुभव हो जाय तो हृदय से निकलने वाली विरह की एक ही आह में आत्मा शरीर को छोड़कर अपने प्रियतम के पास पहुँच जायेगी।

भावार्थ— यदि परमधाम की थोड़ी सी अनुभूति से विरह में शरीर के छूट जाने की सम्भावना होती है तो यह प्रश्न खड़ा होता है कि श्री लालदास जी तथा युगलदास जी परमधाम का इतना विस्तार पूर्वक वर्णन कैसे कर दिया ? यदि , यह कहा जाय कि धनी के हुक्म से वैसा वर्णन करवाना था , इसलिये शरीर को सुरक्षित रखा गया तो यह भी शंका पैदा होती है कि अनेक परमहंसों ने परमधाम का दीदार तो किया , किन्तु उसे लेखनी में बद्ध नहीं किया। दीदार पाने के बाद भी वे कई वर्षों तक जागनी कार्य करते रहे। तो क्या श्रीमुखवाणी की इस चौपाई का इन घटनाओं से विरोध है ?

वस्तुतः इस चौपाई का मुख्य भाव यही है कि अनन्त शोभा वाले परमधाम की जरा सी भी झलक मिल जाने पर आत्मा में विरह की ऐसी अग्नि पैदा हो जाती है कि उसको सारा संसार अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी प्रतीत होने लगता है। इस चौपाई में विरह की अभिव्यक्ति है। ' ए दोऊ तन तले कदम के , आतम परआतम। ' शरीर का छूटना या न छूटना धनी की कृपा पर निर्भर है। इसका दीदार से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। यदि परमधाम और युगल स्वरूप के दीदार से शरीर छूटने की सम्भावना हो सकती है तो परिक्रमा , सागर और श्रृंगार ग्रन्थ की उपयोगिता क्या है ? पुनः कीर्तन (किरंतन) ग्रन्थ के इन प्रकरणों में चितवनि के लिये बार बार क्यों प्रेरित किया जा रहा है ?

याद करो जो मांगिया , धनिएं खेल देखाया कर हेत।

महामत कहें मेहेबूब के , सुख में हो सावचेत ॥२०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! आप उस प्रसंग को याद कीजिए , जिसमें आपने परमधाम में धनी से माया का खेल मांगा था। धनी ने हमारी इच्छा पूरी करने के लिये बहुत लाड़—प्यार से यह खेल दिखाया है। अब आप इस बात के लिये सावधान हो जाइए कि इस माया में बैठे—बैठे प्रियतम के अखण्ड सुखों का अनुभव करना है।

प्रकरण १०६

निस दिन ग्रहिए प्रेम सों , जुगल सरूप के चरन।

निरमल होना याही सों , और धाम बरनन ॥२॥

दिन रात युगल स्वरूप श्री राज श्यामाजी के चरणों तथा परमधाम के पच्चीस पक्षों के प्रेम पूर्वक ध्यान से ही निर्मल हुआ जा सकता है। इसका कोई भी विकल्प नहीं है।

भावार्थ — चरणों के ध्यान का तात्पर्य सम्पूर्ण नख से शिख तक के श्रृंगार से है। इस चौपाई से चितवनि की महत्ता स्पष्ट होती है।

इन विध नरक जो छोड़िए, और उपाय कोई नाहें।

भजन बिना सब नरक है , पच पच मारिए माहें ॥३॥

इस प्रकार चितवनि (ध्यान) से ही माया के दुःखरूपी नरक से छुटकारा मिल सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं है। चितवनि ही वास्तविक भजन है, जिसके बिना यह सारा संसार नरक के समान कष्टकारी है। इसी नरक रूपी संसार में बार — बार जन्म लेकर

मरना पड़ता है।

भावार्थ – इस चौपाई में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि चितवनि के अतिरिक्त निर्मल होने तथा प्रियतम के दीदार का अन्य कोई मार्ग ही नहीं है, वास्तविक भजन या प्रेमलक्षणा भक्ति भी चितवनि ही है।

धनी बिना अंग निरमल चाहे , सो देखो चित ल्याए।

क्यों निरमल अंग होवहीं , जो इन विध रच्यो बनाए॥४॥

हे सुन्दरसाथ जी ! यदि आप अपने दिल में इस बात का विचार करके देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि धाम धनी को अपने दिल में बसाये बिना कभी भी किसी का भी दिल निर्मल नहीं हो सकता। इस शरीर की रचना ही इस प्रकार से हुई है कि बिना ध्यान के किसी का भी हृदय पवित्र नहीं हो सकता।

भावार्थ – यद्यपि हृदय को निर्मल करने के लिये शुद्ध आहार, सत्संग, स्वाध्याय, तप आदि की भी महत्ता है, लेकिन गौण रूप में। यह स्पष्ट है कि ध्याता (ध्यान करने वाले) में ध्येय (जिसका ध्यान किया जाय) के गुण आने लगते हैं। निर्विकार ब्रह्म का ध्यान करने पर हृदय निर्विकार होगा ही। इस प्रकार यह सिद्ध है कि निर्मल होने के लिये चितवनि से श्रेष्ठ अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

आतम धनी पेहेचानिए , निरमल एही उपाए।

महामत कहे समझ धनी के , ग्रहिए सो प्रेम पाए॥५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! निर्मल होने का एकमात्र मार्ग है – आत्मा के प्रियतम उस सच्चिदानन्द अक्षरातीत की पहचान करना तथा प्रेम पूर्वक उनके चरण कमलों को अपने हृदय में बसा लेना।

प्रकरण ११२

सरूप सुन्दर सनकूल सकोमल, रूह देख नैना खोल नूर जमाल।

फेर फेर मेहेबूब आवत हिरदे , किया किनने तेरा कौल फैल ए हाल॥६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! तू अपने नेत्रों को खोलकर अपने प्रियतम का दीदार कर, जिनका स्वरूप अति सुन्दर, प्रफुल्लित और कोमल है। तू इस बात का भी विचार कर कि तेरी कथनी, करनी और रहनी किसने ऐसी कर दी है कि बार-बार तेरे हृदय में प्रियतम की छबि अंकित हो रही है (बस रही है?)

जामा जड़ाव जुड़या अंग जुगतें , चार हारों करी अंमर झलकार।

जगमगे पाग ए जोत जवेर ज्यों , मीठे मुख नैनों पर जाऊं बलिहार॥७॥

श्री राज जी ने जो जामा पहन रखा है, वह उनके अंगों से इस प्रकार सटा हुआ है कि वह अंगों जैसा ही प्रतीत हो रहा है। हृदय कमल पर चार हारों की शोभा आयी है, जिनकी झलकार आकाश में फैल रही है। सिर के ऊपर जगमगाती हुई पाग से निकलने वाली ज्योति जवैरों की ज्योति के समान शोभा दे रही है। मैं अपने प्रियतम के अति माधुर्य रस से भरपूर मुख और नेत्रों की शोभा पर बलिहारी जाती

हैं।

भावार्थ—जामा एक प्रकार का राजसी वस्त्र होता है , जिसमें नीचे का हिस्सा चुन्नटों से युक्त और घेरदार होता है। सागर ग्रन्थ में जहां एक जगह पांच हारों का वर्णन है तो दूसरी जगह छः हारों का, किन्तु इस कीर्तन ग्रन्थ में चार हारों का वर्णन है। पाग में इतने जवाहारात जड़े हुए हैं कि पाग की ज्योति और जवैरों की ज्योति में कोई भी अन्तर प्रतीत नहीं होता।

लाल अधुर हंसत मुख हरवटी, नासिका तिलक निलवट भौंहें केस।

श्रवन भूखन मुख दंत मीठी रसना, ए देख दरसन आवे जोस आवेस।।३।।

श्री राज जी के होंठ लालिमा से भरपूर हैं। उनके मुखारविन्द तथा ठुड्ढी (हरवटी) पर हमेशा मुस्कान खेलती रहती है। नासिका , माथे पर तिलक , काली भौंहों तथा घुंघराले बालों की बहुत ही सुन्दर शोभा है। कानों में आभूषण (कर्णफूल) लटक रहे हैं। अति सुन्दर मुखारविन्द में अनार के दानों की तरह दांतों की शोभा है। रसना (जिह्वा) माधुर्यता के रस से परिपूर्ण है। आत्म— चक्षुओं से इस अलौकिक शोभा के देखने से बारम्बार दर्शन करने का जोश आता है एवं प्रियतम का आवेश आता है।

भावार्थ— श्री राज जी की मनोहारिणी शोभा को देखने पर ऐसी तीव्र उमंग उठती है कि मुझे पल— पल धनी का दीदार होता ही रहे और यह शोभा एक पल के लिये भी मुझसे अलग न होने पाये। इसे ही ' जोश ' शब्द से सम्बोधित किया गया है। जिसके हृदय में धनी की शोभा बस जाती है , उसे ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् धाम धनी मेरे हृदय में विराजमान हैं। इसे ही आवेश का आना कहते हैं। कभी— कभी यह लीला क्रियात्मक रूप में भी दृष्टिगोचर होती है। जब श्री महामति जी को आवेश आता था तो वाणी के अवतरण के साथ— साथ युगल स्वरूप का दर्शन भी होता था। धारा भाई के साथ भी कुछ दिनों तक ऐसी लीला हुई। उन्होंने स्पष्ट कहा है— ' तहां आवे मोको आवेश। बीतक।

बाहें चूड़ी बाजू बंध सोहे फुमक, पोहोंची कांड़ों कड़ी हस्त कमल मुंदरी।

नख का नूर चीर चढ़या आसमान में, ज्यों हक चलवन करें सब अंगुरी।।४।।

श्री राज जी की जामें की बांहों में चुन्नटें शोभायमान हैं। दोनों बाजुओं में बाजूबन्द शोभा दे रहे हैं, जिनमें फुमक लटक रहे हैं। दोनों कलाईयों में पहुँची हैं , जिनमें कड़ा और कड़ी की शोभा है। दोनों हस्त कमल की आठ— आठ अंगुलियों में मुंदरियों की शोभा है। जब धाम धनी अपनी अंगुलियों को हिलाते हैं तो उनके नखों का नूर आकाश में फैल जाता है।

भावार्थ— पहुँची एक आभूषण है जो कलाईयों में पहनी जाती है। उससे सम्बन्धित कड़ा और कड़ी है। कड़े का तात्पर्य कंगन से है। इसी प्रकार कड़ी की भी शोभा है।

खुलासा

प्रकरण ९

बसरी मलकी और हकी, लिखी महंमद तीन सूरत।

होसी हक दीदार सबन को, करसी महंमद सिफायत।।७८।।

कुरआन में मुहम्मद स. अ. व. आ. व. की तीन सूरते बतायी गयी हैं— बशरी, मल्की और हकी। यह भी लिखा है कि कियामत के समय सबको परब्रह्म के दर्शन होंगे। हकी सूरत (श्री प्राणनाथ जी) के

द्वारा सभी को परमधाम का अलौकिक ज्ञान मिलेगा ।

भावार्थ- मुहम्मद का अर्थ है- ऐसा व्यक्तित्व जिसकी महिमा की उपमा न दी जा सके। परब्रह्म ने इस संसार में तीन स्वरूप धारण किये जिन्हें 'मुहम्मद' कहकर सम्बोधित किया जाता है। वे इस प्रकार का है- १. अरब में अवतरित होने वाले पैगम्बर मुहम्मद स. अ. व. (मुस्तुफ़ा) २. सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (मुहम्मद ईसा) तथा ३. श्री प्राणनाथ जी (मुहम्मद महदी) के स्वरूप में अल्लाह तआला की सभी शक्तियां (निधियां) विद्यमान होंगी। उनका दर्शन परब्रह्म के दर्शन के समान माना जायेगा। पारः सोलहवां काल अलम (१६) सूरः पर्यम १६ काफ़ हा या औन् साद् पृष्ठ संख्या २/६/१ में कहा गया है कि कियामत के समय तुम अल्लाह का दीदार करोगे कुरआन सि. सू. आ. में तीनों सूरतों का इस प्रकार वर्णन है- “मजकूर है कि रसूल-ए-अकरम स.अ.व. की तीन सूरतें हैं। एक बसरी जैसा कि अल्लाह ने कहा कि ऐ मुहम्मद! सिवाय इसके नहीं कि मैं भी हूँ बशर तुम्हारी तरह, तुसरी मल्की जैसा कि खुद ह. ने फरमाया कि बेशक मैं नहीं हूँ तुममें से किसी के और मैं रहता हूँ अपने रब के पास, और तीसरी हकी जैसा कि फरमाया मेरे पास अल्लाह के वास्ते एक वक्त्त है। तफ़सीर-ए-हुसैनी भाग (२)।

मोमिन गुसल हौज कौसर, माहें ईसा मेंहेदी महंमद।

पकड़ें एक वाहेदत को, और करें सब रद।।८०।।

श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में तीनों सूरतें (बसरी, मल्की तथा हकी) विराजमान होंगी। उनके द्वारा दिये हुए तारतम ज्ञान के प्रकाश में ब्रह्ममुनि ध्यान (चितवनी) द्वारा हौजकौसर के अलौकिक जल में स्नान करेंगे । वे स्वलीला अद्वैत परमधाम की एकत्व (एकदिली) से ओत-प्रोत लीला एवं शोभा में डूबकर सारे संसार से अपना सम्बन्ध तोड़ लेंगे ।

भावार्थ- अलिफ, लाम और मीम को हरुफे मुक्तेआत कहा जाता है। वस्तुतः ये तीनों सूरते हैं । इनके सम्बन्ध में तारतम वाणी का कथन है-

अल्लफ कह्या महंमद को, रुह अल्ला ईसा लाम ।

मीम मेंहेदी पाक से, ए तीनों एक कहे अल्ला कलाम।।

बसरी सूरत में अक्षर ब्रह्म की आत्मा (सत्) थी । मल्की सूरत में श्यामाजी की आत्मा (आनन्द) थी तथा तीसरी हकी सूरत में महामति जी की आत्मा में चिद्घन स्वरूप परब्रह्म का आवेश था । इस प्रकार श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में सत् + चिद् + आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द परब्रह्म का स्वरूप लीला कर रहा है ।

महंमद बतावें हक सूरत, तिनका अर्स दिल मोमिन।

सो अर्स दिल दुनी छोड़ के, पूजे हवा उजाड़ जो सुंन।।८३।।

मुहम्मद स. अ. व. ने कुरआन में परब्रह्म के किशोर स्वरूप (अमरद सूरत) का वर्णन किया है तथा यह भी कहा है कि वह अक्षरातीत (अल्लाह तआला) ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय में रहते हैं। इसे पढ़कर भी संसार के जीव (शरीयती मुसलमान) श्री महामति जी (मुहम्मद महदी) के धाम हृदय में विराजमान परब्रह्म की पहचान नहीं कर पा रहे हैं तथा जड़रूप वीरान शून्य- निराकार को ही परमात्मा का स्वरूप

मानकर बन्दगी (भक्ति) करते हैं ।

भावार्थ- कुरआन के मन्कूला रिवायत में कहा गया है कि- कल्ब-ए-मोमिन अर्शुल्लाह यानि कल्ब-ए-मोमिन अर्श-ए-मनस्त अर्थात् मोमिन का दिल ही अल्लाह का स्थान है।

सि. २ सूर: बक्र (२) आयत १३६ “ व अिजा सअलक अिबादि अन्नी फ अन्नी करीबुनं अजीबू दडवतददाअि अिजा दआनि फल यस्जीबूली वल यूअमिन् बी लल्लाल्लहुम यरशुदूना। (मेरे बंदे जब आपसे पूछे तो कहो कि मैं तो आपके पास करीब यानि दिल में हूँ।)

उपरोक्त चौपाई में यह संकेत किया गया है कि शरीयत की राह पर चलने वाले मुसलमान श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में आये हुए अल्लाह तआला की पहचान नहीं कर पाये तथा शून्य निराकार को ही अपना खुदा मानते रहे ।

प्रकरण ३

हम बंदे रुहें इन दरगाह, कह्या अर्स दिल मोमिन।

यारों बुलावें महंमद, करो सिज्दा हजूर अर्स तन।।७४।।

प्रत्युत्तर में सुन्दरसाथ की ओर से कहा जा रहा है- प्रियतम के प्रेम में डूबी हम आत्मायें परमधाम की रहने वाली हैं किन्तु हमारा हृदय (दिल) ही हमारे प्राणेश्वर का धाम हैं । हमारे प्रियतम प्राणनाथ तारतम वाणी के प्रकाश में हमें बुला रहे हैं । अतः श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान अपने प्राणवत्लभ अक्षरातीत को प्रत्यक्ष मानकर प्रणाम कीजिए।

भावार्थ- उपरोक्त प्रकरण की ७२ वीं चौपाई में कहा गया है कि जिस प्रकार परात्म के तनों में फरामोशी और गुनाह लगा है उसी प्रकार आत्मा के तनों में भी फरामोशी (नींद) और गुनाह लगा है क्योंकि वह परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा है । ठीक यही स्थिति स्वरूप के निर्धारण में भी है । जिस तरह परात्म के हृदय धाम में अक्षरातीत का स्वरूप विराजमान है, उसी प्रकार आत्मा के भी धाम हृदय में प्रियतम विराजमान हैं । **इन गुन्हेगारों के दिल को, अपना अर्स कर बैठे मेहेरबान।’ खु. ३/७० तथा ‘कह्या अर्स दिल मोमिन’ खु. ३/७४ का कथन यही सिद्ध करता है ।**

जब श्री महामति जी के धाम हृदय में प्रियतम अक्षरातीत विराजमान होकर श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में लीला कर रहे हैं तो उस स्वरूप को प्रणाम (सिज्दा) करने या मूल मिलावे में विराजमान मूल स्वरूप को प्रणाम करने में कोई भी अन्तर नहीं है । यदि यह कहा जाय कि - ‘अर्स बका पर सिज्दा, करावसी इमाम’ खु. २/३७ के कथनानुसार मात्र परमधाम के ही स्वरूप पर सिज्दा करना चाहिए, तो यह उचित नहीं है क्योंकि ‘तुमहीं उतर आए अर्स से, इत तुमहीं कियो मिलाप’ श्रृं २३/३१ के कथनानुसार मूल स्वरूप श्री राजजी ही इस संसार में अपने आवेश स्वरूप से श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में लीला कर रहे हैं । ऐसी स्थिति में दोनों स्वरूपों में कोई भेद नहीं माना जा सकता । यद्यपि श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप द्वारा सब सुन्दरसाथ को मूल स्वरूप का ही ध्यान कराया गया किन्तु यदि कोई श्री प्राणनाथ जी को आवेश स्वरूप मानकर उनका ध्यान करता है तो भी उसकी सूरता मूल स्वरूप में अवश्य केन्द्रित होगी। इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री प्राणनाथ जी की पहचान करना एक बहुत बड़ी उपलब्धि है जबकि उनके स्वरूप की

अवहेलना करना एक अक्षम्य अपराध है। खु. ३/७४ के चौथे चरण में 'अर्स तन' शब्द आया है। इसका भाव यह भी है कि जिस प्रकार धनी के दिल में विराजमान होने पर उसे अर्स दिल कहते हैं उसी प्रकार तन में विराजमान होने पर अर्स तन कहा गया है।

परमधाम में परात्म के सभी तनों में परामोशी है अतः उन तनों से प्रणाम करना सम्भव नहीं है। चाहें हम परमधाम में प्रणाम करें या इस संसार में, हमें अपनी परात्म की भावना से आत्मा का श्रृंगार करके ही प्रणाम करना चाहिए। खिल्वत के पहले प्रकरण में ही यह बात दर्शायी गयी है कि श्री राजजी के सम्मुख बैठे रहने पर भी मूल तनों से न तो देखा जा सकता है, न बोला जा सकता है और न सुना ही जा सकता है। इसी चरण में कथित 'हजूर' शब्द से यही आशय निकलता है कि इसी संसार में प्रत्यक्ष विराजमान श्री प्राणनाथ जी को प्रणाम करें।

यदि यह संशय करे कि हमने इन आंखों से श्री प्राणनाथ जी को देखा तो नहीं है, पुनः प्रणाम कैसे करें तो इसका समाधान यह है कि गुम्मत जी मन्दिर की सेवा (तख्त) पर यदि हम युगल स्वरूप का भाव लेकर प्रणाम करे तो वह प्रणाम अवश्य स्वीकार होगा, क्योंकि युगल स्वरूप श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान है तथा मूल मिलावे में भी विराजमान है। उसी युगल स्वरूप की छवि को अपने धाम हृदय में बसाने का प्रयास करना चाहिए।

श्री प्राणनाथ जी के नाम पर बनाये गये काल्पनिक चित्रों को कभी भी प्रणाम नहीं करना चाहिए क्योंकि ये जामनगर राज्य के दो राजाओं के चित्र हैं जो श्री देवचन्द्र जी और श्री प्राणनाथ जी के रूप में प्रचारित किये जाते हैं। सार तत्व यही है कि हम श्री प्राणनाथ जी को मात्र युगल स्वरूप के रूप में ही देखें और उन्हीं का ध्यान करें।

प्रकरण ४

सरीयत खूबी नासूत में, याको ए पांचों पाक करता।

ए जाहेर पांच बिने से, ऊंचे चढ़ न सकत॥३८॥

शरीयत के पांचों नियमों का पालन करने वाला इस मृत्युलोक से आगे नहीं जा सकता। इनसे केवल शरीर तथा आंशिक रूप से मन की शुद्धि होती है। स्पष्ट है कि कर्मकाण्ड के इन पांचों नियमों का पालन अखण्ड धाम में नहीं पहुंचा सकता है।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई तथा इसी प्रकरण की २६ वीं चौपाई के कथनों में कोई विरोध नहीं है। २६ वीं चौपाई में यह दर्शाया गया है कि यदि कोई शुद्ध हृदय से कोई भी बुरा कर्म (हिंसा, मांसाहार, परस्त्री गमन, चोरी, मिथ्या भाषण, शराब इत्यादि) किये बिना तरीकत (दिल की बन्दगी) का आधार लेकर सूफियों की तहर पांचों नियमों का पालन करता है तो उसे सातवीं बहिश्त प्राप्त हो जायेगी। किन्तु यदि वह 'दिन को रोजा रखत है, रात हनत हैं गाय' कबीर जी के इस कथन को चरितार्थ करे, पांच बार भले ही नमाज पढ़े किन्तु जिहाद की ओट में भोले-भाले गैर मुस्लिमों का कत्ल करे, दुराचार करके हज करने का नाटक करे तो उसे इस मृत्यु लोक (नासूत) से ऊपर उठने का अवसर नहीं मिलेगा।

छोड़ सरा ले तरीकत, पीठ देवे नासूत।

फैल करे तरीकत के, सो पोहोंचे मलकूत॥३६॥

यदि कोई मुसलमान इन्द्रियों से होने वाली बन्दगी को छोड़कर हृदय से होने वाली बन्दगी का मार्ग अपनाता है तो वह इस मृत्युलोक को छोड़कर मलकूत अर्थात् बैकुण्ठ को प्राप्त करता है ।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई में यह दर्शाया गया है कि नमाज पढ़ने में वजू (अपने अंगों को धोना) तथा उठने बैठने का जो बाह्य कर्मकाण्ड होता है उसे छोड़कर यदि कोई सूफियाना अंदाज में अल्लाह की बन्दगी करता है तो वह मलकूत को प्राप्त होता है ।

कलमा निमाज दोऊ दिल से, और दिलसों रोजे रमजान।

दे जगात हिस्सा उन्तालीसमा, हज करे रसूल मकान॥४०॥

परब्रह्म पर अटूट निष्ठा रखकर जो ध्यान द्वारा दिल से प्रणाम करता है, अपने हृदय से माया की सारी तृष्णाओं को समाप्त कर देता है तथा अपनी आय का उन्तालीसवां हिस्सा परोपकार के लिए दान कर देता है वह मुहम्मद स. अ. व. की बहिश्त (रास से ऊपर) को प्राप्त होता है ।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में कथित “रसूल मकान” से आशय अक्षरधाम से नहीं लिया जा सकता क्योंकि मुहम्मद स. अ. व में अक्षर की आत्मा थी इसलिए एक मात्र वो ही अक्षरधाम जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में सन्ध ३६/६२ का यह कथन देखने योग्य है-

रसूल आया हुकमें, नाम धराया गैन ।

हुकम बजाए पीछा फिरया, तब सोई ऐन का ऐन ॥

स्पष्ट है कि मुहम्मद स. अ. व का जीव रास से ऊपर (सबलिक के अन्तर्गत) तीसरी बहिश्त में जायेगा । खुलासा ४/४० की इस चौपाई में “रसूल मकान” से तात्पर्य इसी तीसरी बहिश्त से है। किसी भी जीवसृष्टि के लिए अक्षरधाम में जाना सम्भव नहीं । सत्स्वरूप की पहली दो बहिश्तें ब्रह्मसृष्टि के जीवों तथा ईश्वरीसृष्टि के लिए है । उसमें भी तारतम्य वाणी के प्रकाश में प्रेममयी चितवनी किये बिना किसी भी जीव का प्रवेश सम्भव नहीं है ।

कलमा निमाज रोजा हकीकी, करे दिलसों रुह पेहेचान।

हुआ बंदा बूझ जगात में, दिल दीदार नूर सुभान॥४७॥

हकीकत का कलमा कहने (संसार को पीठ देने), नमाज पढ़ने (परब्रह्म के अखण्ड स्वरूप को ध्यान में रखकर सिजदा बजाने), रोजे रखने (विषय विकारों से पूर्णतया मुक्त हो जाने) तथा अपने आत्मिक स्वरूप की पहचान करके सच्चे दिल से सेवा करने वाले को अपने दिल में ही परब्रह्म के नूरी स्वरूप का दीदार हो जाता है ।

भावार्थ- ‘मोमिन उजू जब करें, पीठ देवें दोऊ जहान को’ श्रृं. २५/४७ यह मोमिनों का उजू करना है । ‘जब हक बिना कछू ना देखे, तब बूझ हुई कलमें’ श्रृं. २५/५२ मोमिनों की शरीयत के सम्बन्ध में श्रृं. २५/५३, ५८ का कथन है -

ए मोमिनों की सरीयत, छोड़ें ना हक को दम ।

अर्स वतन अपना जान के, छोड़ें ना हक कदम ॥

इतहीं रोजा इत बन्दगी, इतहीं जकात ज्यारत ।

साथ हकी सूरत के, मोमिनों सब न्यामत ॥

हकीकत के सम्बन्ध में तारतम वाणी का कथन है-

जो तूं ले हकीकत हक की, तो मौत का पी सरबत ।

मुए पीछे हो मुकाबिल, तो कर मजकूर खिलवत ॥ श्रृं. २५/६५

तारतम वाणी की उपरोक्त कसौटी पर खरा सिद्ध होने वाली सृष्टि ही बेहद मण्डल की अधिकारी बन सकती है ।

प्रकरण ५

ए जो हुई पैदा कुंन से, सबों सिर फरज सरीयत।

पोहोंचे मलकूत हवा लग, जो लेवे राह तरीकत॥४॥

कुन्न कहने से पैदा हुई जीव सृष्टि के ऊपर शरीयत (कर्मकाण्ड) के नियमों का पालन करना आवश्यक माना गया है । यदि जीव सृष्टि तरीकत (उपासना) का मार्ग अपनाती है तो वह बैकुण्ठ या निराकार तक जाती है ।

जो होवे नूर मकान का, कायम जिनों वतन।

सो क्यों पकड़े वजूद को, पोहोंचे न हकीकत बिन॥७॥

ईश्वरीय सृष्टि, जो अखण्ड अक्षर धाम (बेहद मण्डल) की रहने वाली है, वह शरीर तथा इन्द्रियों से भक्ति नहीं करती, अपितु आत्म-चैतन्य के द्वारा उपासना करती है । यह सृष्टि जब तक हकीकत (ज्ञान) के मार्ग का अनुसरण नहीं करती तब तक अपने मूल घर को प्राप्त नहीं होती है ।

जो होवे अर्स अजीम की, सो ले हकीकत मारफत।

इनको इस्क मुतलक, जिन रुह हक निसबत॥८॥

जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होती है वह हकीकत तथा मारिफत (ज्ञान एवं विज्ञान) का मार्ग अपनाती है । इनका अक्षरातीत परब्रह्म से अखण्ड सम्बन्ध होता है तथा ये निश्चित रूप से प्रियतम के प्रति अनन्य प्रेम का मार्ग अपनाती हैं ।

भावार्थ- ज्ञान से तात्पर्य शाब्दिक ज्ञान से नहीं, बल्कि आत्म चैतन्य द्वारा प्रेममयी ध्यान में उपलब्ध । अनुभूत (साक्षात्कार के) ज्ञान से है । इसी प्रकार विज्ञान से आशय है-साक्षात्कार के पश्चात् उसमें ओत-प्रोत होकर उसी का स्वरूप बन जाना ।

पैगंमरों भिस्त तीसरी, जिनों दिए हक पैगाम।

चौथी भिस्त जो होएसी, पावे खलक जो आम॥१५॥

संसार में परब्रह्म का संदेश देने वाले पैगम्बरों की आखिर की तीसरी अर्थात् अव्याकृत में सातवीं

बहिस्त होगी । इसके अतिरिक्त अव्याकृत में इसके नीचे आखिर की चौथी अर्थात् आठवीं बहिस्त जिसमें शेष सारी जीव सृष्टि अखण्ड मुक्ति को प्राप्त होगी ।

जिन किन राह हक की, लई सांच से सरीयत।

भिस्त होसी तिनों तीसरी, सच्चे ना जलें कयामत॥१६॥

जो जीव तारतम ज्ञान का प्रकाश पाकर श्री राजजी की पहचान कर लेंगे और सच्चे हृदय से कर्मकाण्ड (शरीयत) का मार्ग अपनायेंगे अर्थात् सेवा पूजा, परिक्रमा, पाठ करेंगे वे अव्याकृत में आखिर की तीसरी अर्थात् सातवीं बहिस्त (मुक्ति का स्थान) को प्राप्त करेंगे। सच्चे हृदय से कर्मकाण्ड का पालन करने के कारण इन्हें न्याय के दिन दोजक (प्रायश्चित) की अग्नि में नहीं जलना पड़ेगा ।

सो मोमिन क्यों कर कहिए, जिन लई ना हकीकत।

छोड़ दुनी को ले ना सक्या, हक बका मारफत॥२६॥

उस सुन्दरसाथ को परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कैसे कहा जा सकता है जिसने तारतम वाणी के प्रकाश में हकीकत (सत्य का मार्ग) का अनुशरण नहीं किया होता है। ऐसा सुन्दरसाथ संसार को पीठ देकर अक्षरातीत तथा अखण्ड परमधाम की पूर्ण पहचान नहीं कर पाता।

भावार्थ- इस चौपाई को पढ़कर उन सुन्दरसाथ को आत्ममंथन करना चाहिए, जो हठपूर्वक शरीयत की महिमा दर्शाते हैं और उसे बलपूर्वक दूसरे पर थोपने का प्रयास करते हैं और हकीकत एवं मारिफत की हंसी उड़ाना अपना गौरव समझते हैं।

प्रकरण ६

ए जो सुकन हक के मैं कहे, तामें जरा न रही सक।

ए सुन के विरहा न आवत, सो ना इन घर माफक॥२६॥

अपने प्राणेश श्री राजजी के प्रति मैंने ये जो कुछ बातें कही है उनमें नाम मात्र के लिए भी संशय नहीं है । यह सुनकर भी जिसके हृदय में विरह उत्पन्न नहीं होता, वह परमधाम के योग्य नहीं माना जा सकता ।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई हमें आत्म मंथन के लिए विवश कर रही कि हम विरह, प्रेम एवं चितवनी के क्षेत्र में कहां खड़े है । ब्रज में वेद ऋचायें तथा प्रतिबिम्ब की सखियां श्री कृष्ण जी के विरह में सौ वर्ष तक तड़प-तड़पकर अपना शरीर छोड़ देती हैं, किन्तु परमधाम के ब्रह्ममुनि कहलाकर भी हमारे पास एक घण्टा चितवनी के लिए समय नहीं होता ।

यों चाहिए रुहन को, सुनते बिछोहा पिउ।

करते याद जो हक को, तबहीं निकस जाए जिउ॥२७॥

ब्रह्मसृष्टियों को चाहिए कि जब उन्हें प्रियतम के वियोग की बात सुनने को मिले और जैसे ही वे अपने प्राणवल्लभ की प्रेमभरी याद में खो जाए, उसी क्षण उनका जीव इस शरीर का परित्याग कर दे।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई अतिशयोक्ति अलंकार की भाषा में कही गई है । विरह की पीड़ा की

अभिव्यक्ति ऐसे ही शब्दों में की जाती है। किन्तु इसका वास्तविक आशय यह है कि जब हम युगल स्वरूप की प्रेममयी चितवनी में बैठे तो कुछ ही पलों में अपने शरीर और जीव भाव से ऊपर उठ जाए तथा अपनी आत्मा में परात्म का श्रृंगार सजकर मूल मिलावे में पहुंच जायें। यदि शरीर का परित्याग करना ही प्रेम है तो प्रेम का सुख कौन लेगा और आगे का जागनी कार्य कौन करेगा? वस्तुतः जो शरीर और संसार के मोह से रहित हो जाता है, उसे मरा हुआ ही समझना चाहिए। इस सम्बन्ध में तारतम वाणी का यह कथन देखने योग्य है-

एक हक बिना कछु न रखें, दुनी करी मुरदारा।

अर्स किया दिल मोमिन, पोहोंचे नूर के पारा।। किरन्तन ११८/१७

अगली अठाईसवीं चौपाई भी इसी सन्दर्भ में है।

प्रकरण १०

नफा ईमान का अब है, पीछे दुनियां मिलसी सब।

तोबा दरवाजे बन्द होएसी, कहा करसी ईमान तबा।३५।।

प्रियतम अक्षरातीत पर विश्वास करने का लाभ अभी (पांचवें, छठे दिन की लीला में) है। बाद में (योगमाया में होने वाली सातवें दिन की लीला में) सारा विश्व ही परब्रह्म के चरणों में आ जायेगा। तब प्रायश्चित्त का दरवाजा बंद हो जायेगा अर्थात् प्रायश्चित्त का अवसर नहीं मिलेगा। उस स्थिति में परब्रह्म पर विश्वास करने का क्या फल मिलेगा?

भावार्थ- जागनी लीला में अपनी अज्ञानता को हटाकर परब्रह्म के चरणों में समर्पित होना पश्चाताप है किन्तु योगमाया में न्याय की लीला में पश्चाताप की अग्नि में जलना होगा जिसे दोजख की अग्नि में जलना कहा गया है। योगमाया में दोजख की अग्नि में जलने वाले आठवीं बहिश्त को प्राप्त करेंगे किन्तु जागनी लीला में अपनी भूलों को सुधारकर परब्रह्म पर विश्वास लाने वाले सातवीं बहिश्त को प्राप्त होंगे, किन्तु यदि यही जीव ब्रह्मसृष्टियों की तरह अंगना भाव लेकर प्रेममयी चितवनी का मार्ग अपनाते हैं और अपने हृदय में श्री राजजी की छवि बसा लेते हैं तो इन्हें सत्स्वरूप की पहली बहिश्त पाने का अधिकार प्राप्त हो सकता है। इस सम्बन्ध में स्वयं धाम धनी कहते हैं-

जो किन जीवे संग किया, ताको कसं न मेलो भंग।

सो रंगे भेलूं वासना, वासना सत को अंग।। क.हि.२३/६४

उपरोक्त कथन को पढ़कर हमें यह दृढ़ संकल्प लेना होगा कि सम्पूर्ण विश्व में तारतम वाणी एवं चितवनी का प्रचार करना हमारे जीवन की प्राथमिकता होनी चाहिए।

इतहीं बैठे देखें रुहें, कोई आया नहीं गया।

तुम जानो घर दूर है, सेहेरग से नजीक कह्या।।४४।।

परमधाम में बैठे-बैठे ब्रह्मसृष्टियाँ माया का खेल देख रही हैं। अपने मूल नूरमयी तन (परात्म) से न तो कोई इस खेल में आया है और न कोई गया है। तुम समझते हो कि तुम्हारा परमधाम निराकार, बेहद से भी परे है, किन्तु वह तो तुम्हारी प्राणनली से भी निकट है।

भावार्थ- परात्म की सूरता ही आत्मा है जो इस संसार में पंचभौतिक तन धारण किये हुए जीव के ऊपर बैठकर मायावी खेल को देख रही है। सामान्यतः जीव के ही तन को आत्मा का तन कहकर सम्बोधित किया जाता है, किन्तु वास्तविकता यह है कि आत्मा का तन परात्म का प्रतिबिम्बित रूप है, जिसका चित्र संसार के किसी भी कैमरे से नहीं लिया जा सकता। उसे मात्र चितवनि में ही धनी की कृपा से अनुभव किया जा सकता है।

परात्म का तन मूल मिलावे में धनी के सम्मुख बैठा है। उसका परमधाम से बाहर कहीं भी आना जाना असम्भव है। जिस प्रकार परात्म के हृदय में युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम विद्यमान है, उसी प्रकार आत्मा के भी धाम हृदय में सम्पूर्ण परमधाम सहित युगल स्वरूप की छवि विराजमान होती है, जिसे चितवनि के द्वारा शरीर और संसार से परे होकर आत्म-दृष्टि से देखा जा सकता है।

इस चौपाई को पढ़कर हमें बाहर भटकने की अपेक्षा आत्मा के धाम हृदय में अपने प्राणेश्वर को देखने का दृढ़ संकल्प करना चाहिए।

नहीं कायम चौदे तबक में, सो इत देखाए दिया।

सेहेरग से नजीक, अर्स बका में लिया॥४५॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी परमधाम नहीं है, किन्तु उस परमधाम को आत्मा के धाम हृदय में ही प्राण की शाहरग नली से भी निकट दिखा दिया। जिसके परिणाम स्वरूप मेरी आत्मा को ऐसा लगा कि मैं अखण्ड परमधाम में ही हूँ।

भावार्थ- चितवनी का मार्ग प्रेममयी और भावात्मक है। इसलिये युगल स्वरूप व परमधाम की शोभा का ध्यान करते समय परमधाम का लक्ष्य लेकर स्वयं को आत्मा के धाम हृदय में केंद्रित करना चाहिए, दोनों भौहों के बीच या मस्तक (दसवें द्वार) में नहीं।

साहेदी खुदाए की, रह अल्ला दई जब।

खुले अन्दर पट अर्स के, पाई सूरत खुदाए की तब॥४६॥

जब श्यामा जी ने परब्रह्म के अति सुंदर किशोर स्वरूप की मुझे साक्षी दी तो मेरे धाम हृदय में अखण्ड परमधाम के दरवाजे खुल गये और मैंने अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की अति सुंदर छवि को देखा।

भावार्थ- हमारी आत्मा जीव के हृदय पर बैठकर जीव भाव में खो गई है और संसार के दुःखभरे खेल को देखकर दुःख का अनुभव कर रही है। जब प्रेममयी चितवनी में उसकी दृष्टि शरीर, संसार और जीव भाव से परे हो जाती है तो उसकी आत्मिक दृष्टि खुल जाती है और उसे अपनी आत्मा के धाम हृदय में ही युगल स्वरूप के दर्शन हो जाते हैं।

अव्वल बीच और अब लों, ऐसा हुआ न दुनी में कोए।

कायम ठौर हक सूरत, इत देखावे सोए॥४७॥

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर मध्य और आज दिन तक इस सृष्टि में श्री प्राणनाथ जी के अतिरिक्त

ऐसा कोई भी नहीं हुआ है जो इस नश्वर जगत में बैठे-बैठे अखण्ड परमधाम तथा अक्षरातीत के अति किशोर स्वरूप का दर्शन करा सके।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाई को पढ़कर मुख से यह बरबस (अनायास) ही निकल पड़ता है-

तारीफ महंमद मेंहेदी की, ऐसी सुनी न कोई क्याहैं।

कई हुए कई होएसी, पर किन ब्रह्मांडों नाहैं।। सनंथ ३०/४३

अर्थात् श्री प्राणनाथ जी की महिमा के बराबर अब तक कोई भी स्वरूप नहीं हुआ है, न है और न कभी होगा। शेष चार दिनों की लीला (ब्रज, रास, अरब और नौतनपुरी) में निसंदेह ही श्री राज जी ने ही लीला की है, किन्तु श्री प्राणनाथ जी के इस स्वरूप को जो शोभा मिली है, वह आज दिन तक न किसी को मिली है और न मिलेगी। किन्तु, तथाकथित स्वयंभू विद्वानों द्वारा संत, कवि, आचार्य कहने में किसी प्रकार की झिझक का अनुभव न करना और न थकना अत्यंत दुःखद है।

ए सुध पाए पीछे, हुआ बेवरा बुजरक।

ज्यों जाहेर माहें दुनियां, त्यों बातून माहें हक।।५४।।

इनकी पहचान होने के पश्चात् मेरे हृदय में और अधिक महान ज्ञान का अवतरण हुआ। अब तो मेरी बाह्य दृष्टि में इन आँखों से संसार दिख रहा है, किन्तु मेरी आत्मिक (आंतरिक) दृष्टि से मेरी आत्मा के धाम हृदय में साक्षात् श्री राज जी दिखाई पड़ रहे हैं।

बंदगी सरीयत की, और हकीकत बंदगी।

नासूत दुनियां अर्स मोमिन, है तफावत एती।।५५।।

शरिअत (नियम/कर्मकाण्ड) की भक्ति और हकीकत (सत्यता अर्थात् प्रेम लक्षणा भक्ति) में उतना ही अंतर है जितना पृथ्वीलोक के जीवों और परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों में होता है।

भावार्थ- शरिअत (नियम/कर्मकाण्ड) की भक्ति शरीर और इंद्रियों से होती है। तरीकत (इन्द्रियनिग्रह) हृदय से होती है। हकीकत की बंदगी आत्मा द्वारा प्रेम भाव से होती है किन्तु मारिफत की बंदगी आत्मा के उस गहन प्रेम में की जाती है जिसमें आत्मा स्वयं को भूल जाती है।

इस्क बंदगी अल्लाह की, सो होत है हजूर।

फरज बंदगी जाहेरी, सो लिखी हक से दूर।।५६।।

परब्रह्म की प्रेममयी भक्ति उनका प्रत्यक्ष दर्शन कराती है, किन्तु कर्मकाण्ड आधारित थोपी गयी फर्ज बन्दगी परब्रह्म से दूर करने वाली है।

भावार्थ- फर्ज का अर्थ होता है कर्तव्य। वह भक्ति जो केवल नियम का पालन करने के लिये औपचारिकतावश शरीर, इन्द्रियां तथा मन से की जाती है, फर्ज बन्दगी कहलाती है।

प्रकरण १६

ऐसा जोस बल महंमद का, जबरईल जानवर।

नासूत मलकूत ला परे, पोहोंचे अपने घर।।४८।।

मुहम्मद स. अ. व. का जानवर (जोश रूप पक्षी) कहे जाने वाले जिब्रील में इतनी शक्ति है कि वह मुहम्मद स. अ. व. को अपने साथ लेकर इस पृथ्वी लोक से वैकुण्ठ, निराकार को पार कर अपने घर सत्स्वरूप तक पहुंचा देता है ।

भावार्थ- जिस प्रकार पक्षी आकाश में निर्द्वन्द्व होकर उड़ा करता है, उसी प्रकार जिब्रील भी बिना किसी बाधा के कालमाया से योगमाया तक सरलतापूर्वक जाता है। इसलिये उसे उपमालंकार के रूप में पक्षी कहा जाता है ।

उपरोक्त तीनों चौपाईयों के कथन से ऐसा आशय नहीं लेना चाहिए कि जिब्रील रंगमहल तक या परमधाम में चला गया । जिब्रील परब्रह्म के सत् अंग अक्षर ब्रह्म का फरिश्ता है, वह स्वलीला अद्वैत परमधाम के एकत्व (वहदत) में प्रवेश नहीं कर सकता है। उसे अक्षरातीत का जोश या अक्षर ब्रह्म का आवेश भी कहते हैं । इस सन्दर्भ में श्री नवरंग स्वामी द्वारा रचित ग्रन्थ का यह कथन देखने योग्य है-

“जबराईल फरिस्ता जेह, अक्षर का इस्क आवेस रूप तेह।” रोसननामा १४/३५

यह सर्वमान्य तथ्य है कि इस जागनी लीला में श्री महामति जी का धाम हृदय ही परमधाम की भूमिका निभा रहा है, जिसमें युगल स्वरूप श्री राज श्यामा जी सहित अक्षर ब्रह्म, जिब्रील एवं इस्माफील सभी विद्यमान हैं। तारतम्य वाणी एवं बड़ी वृत्त में जिब्रील के ४ मुख्य कार्य बताये गये हैं-

१. ब्रह्मात्माओं की परिक्रमा करना (सम्मान करना)।
२. उनकी वकीली करना (उनकी भावनाओं को परब्रह्म तक पहुँचाना)।
३. उन्हें माया से दूर रखकर उनके हृदय को निर्मल बनाये रखना।
४. उनकी सूरता को कालमाया से परे ले जाना।

चाहे अरब में स्वयं अक्षरब्रह्म की आत्मा ही क्यों न हो, वह मेयरज में जिब्रील के माध्यम से ही इस निराकार मण्डल से पार जा सकी। अन्य सभी ब्रह्मसृष्टियों तथा ईश्वरीय सृष्टि के साथ भी यही स्थिति माननी पड़ेगी। जिब्रील के साथ ही किसी भी ब्रह्मात्मा की आत्मिक दृष्टि सत्स्वरूप तक जाती है। उसके पश्चात् परब्रह्म की कृपा से उसे अनन्य प्रेम (इश्क) प्राप्त होता है जो उसे मूल-मिलावे तक ले जाता है।

जागनी लीला में प्रत्येक ब्रह्मात्मा को श्री जी के चरणों में लाना (जागृत होने के लिये अथवा तन त्याग के पश्चात्) जिब्रील का ही उत्तरदायित्व है। उपरोक्त चौपाई का प्रसंग बातिनी (सूक्ष्म) रूप से श्री महामति जी के धाम हृदय के लिये भी घटित होगा।

प्रत्येक सुन्दरसाथ की आत्मा चितवनी में जिब्रील के माध्यम से ही कालमाया को पार कर सत्स्वरूप तक पहुँचती है। आगे परमधाम में धनी का प्रेम ही ले जायेगा। इस जागनी लीला के समाप्त होने के पश्चात् अर्थात् प्रलय के पश्चात् सभी ब्रह्मात्मायें जिब्रील के साथ ही कालमाया को पार करेंगी और सत्स्वरूप तक पहुँचेंगी। आगे धाम धनी उन्हें अपने साथ परमधाम ले जायेंगे। उपरोक्त चौपाई का यही आशय है।

यही स्थिति इस्माफील (जागृत बुद्धि के फरिश्ते) की भी है । दोनों का मूल घर सत्स्वरूप है । आगे की चौपाईयों में यही बात दर्शायी गयी है।

खेल देख उमत फिरी, भिस्त दे सबन।

इतहीं बैठे पोहोंचहीं, अपने कायम वतन॥५२॥

इस मायावी खेल को देखकर परमधाम की ब्रह्मसृष्टियां संसार के सभी जीवों को अखण्ड मुक्ति देंगी और अपने मूल घर परमधाम चली जायेंगी। अपनी परात्म में जागृत होने पर उन्हें यह बोध होगा कि हमने तो यहीं से बैठे-बैठे ही माया का खेल देखा था।

इस चौपाई की दूसरी पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी होगा कि जैसे मूल मिलावे में हमारे तन विद्यमान हैं और हम अपनी सूरता के द्वारा इस संसार में आकर खेल को देख रहे हैं, उसी प्रकार हमारे ये स्वाप्निक तन यहीं पड़े रहेंगे और आत्मायें इन नश्वर तनों को छोड़कर अपने अखण्ड धाम में पहुंच जायेंगी। न तो वहां का तन यहां आया है और न यहां का तन वहां जायेगा।

भावार्थ- तारतम वाणी से सभी सुन्दरसाथ को यह बात ज्ञात है कि हमारे मूल तन वहीं है, हम मात्र अपनी सूरता से आये हैं किन्तु परात्म में जागृत होने पर यह ज्ञान अनुभव जन्य होगा। इस प्रकार का अनुभव उन्हें भी होगा, जिन्होंने चितवनि में युगलस्वरूप के साथ अपनी परात्म को भी देख लिया है।

प्रकरण १७

अर्स ना चौदे तबक में, सो लिए इलम ईसा के।

नजीक देखाया सेहेरग से, बीच अर्स बैठाए ले॥४०॥

जो परमधाम चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी नहीं है, उसे श्यामा जी के तारतम ज्ञान ने प्राणनली से भी निकट दर्शा दिया है, जिससे यह बोध होता है कि हम तो परमधाम में ही बैठे हैं।

भावार्थ- शाहरग (प्राणनली) इस पंचभौतिक तन में ही होती है, परात्म के तन में नहीं। मूल सम्बन्ध की पहचान होने पर आत्मा को अपने धाम हृदय में ही सम्पूर्ण परमधाम एवं युगल स्वरूप के दर्शन होने लगते हैं और उसे इस मायावी जगत में भी ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हम परमधाम में ही बैठे हैं। इस तथ्य को तारतम वाणी के इन कथनों से जाना जा सकता है-

अर्स दिल मोमिन तो कह्या, जो हक सों रुह निसबत।

ना तो अर्स दिल आदमी का, क्यों कह्या जाए ख्वाब में इत।।

रुह तन की असल अर्स में, अर्स ख्वाब नहीं तफावत।।

तो कह्या सेहेरग से नजीक, हक अर्स दुनी बीच इत।। सिनगार २६/१२,१३

प्रकरण १८

ए खेल तो जरा है नहीं, सब है अर्स खसम।

बैठे इतहीं जागिए, उठो अर्स में तुम।।७॥

यह मायावी खेल तो कुछ है ही नहीं, मात्र स्वप्नवत् है। एकमात्र प्रियतम और उनका परमधाम ही शाश्वत् है। हे साथ जी! आप तारतम वाणी के प्रकाश में चितवनी द्वारा अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप की छवि को बसाइये जिससे कि आप यहां बैठे-बैठे ही जागृत हो सके तथा इस खेल के समाप्त होने के पश्चात् अपने मूल तन परात्म में भी जागृत हो सकें।

अर्स बाग हौज जोए के, करो याद हक के सुख।

ज्यों पेड़ झूठे खाब का, उड़ जाए सब दुख॥८॥

आप परमधाम के बागों, हौजकौसर तथा यमुना जी की शोभा एवं प्रियतम श्री राज जी के साथ होने वाली लीला के सुखों को याद कीजिए, जिससे यह स्वप्नमयी संसार आपके मन से निकल जाय तथा आपके सभी लौकिक दुःख भी समाप्त हो जाय।

असल आराम हिरदे मिने, अर्स को अखंड।

तब ए झूठे खाब को, रहे न पिंड ब्रह्मांड॥९॥

जब आपके हृदय में परमधाम के अखण्ड एवं वास्तविक सुखों का अनुभव होने लगेगा तब आपको अपने इस स्वायत्तिक तन तथा ब्रह्माण्ड की कोई भी स्मृति नहीं रहेगी।

भावार्थ- चितवनी की गहन अवस्था में ही शरीर तथा संसार की स्मृति नहीं रहती है। इसे ही पिण्ड-ब्रह्माण्ड का न रहना कहते हैं। चितवनी से उठने या प्रियतम की भावलीनता से ऊपर होने (अलग होने) पर स्मृति तो रहती है किन्तु आसक्ति नहीं रहती है।

खिलवत

प्रकरण ९

ऐसे कायम सुख के जो धनी, किन विध दई भुलाए।

इन दुख में देखावत ए सुख, हिरदे तुम ही चढ़ाए॥१०॥

हे धाम धनी ! आप परमधाम के अखण्ड सुखों के स्वामी हैं, फिर भी यह कितने आश्चर्य की बात है कि हमने इस माया में आपको भुला दिया है। आप अपनी मेहर (कृपा) से इस दुःखमयी संसार में भी हमें परमधाम के अखण्ड सुखों की अनुभूति कराते हैं और हमारी आत्मा के हृदय धाम में अखण्ड करते हैं।

ऐसे सुख अलेखे अखंड, भुलाए दिए माहें खिन।

सुख देखत उनथें अधिक, पर आवे अग्याएं अंतस्करन॥११॥

परमधाम के सुख शब्दातीत और अखण्ड हैं । इस माया में आकर हमने एक क्षण में ही उनको भुला दिया। जागृत हो जाने के बाद तो हमारे हृदय में परमधाम के सुखों से भी अधिक सुखों की अनुभूति हो रही है, किन्तु यह अनुभूति आपके हुक्म (आदेश) के बिना कदापि सम्भव नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय पैदा होता है कि इस नश्वर और दुःखमयी जगत में परमधाम से भी अधिक सुख की अनुभूति कैसे हो सकती है ?

जब तक हमारी आत्मा माया की फरामोशी (अन्धकार) में भटक रही होती है, तब तक हमें दुःख की ही अनुभूति होती है, किन्तु, यदि हमने विरह, प्रेम में डूबकर (ध्यान द्वारा) सुख के निधान युगलस्वरूप को ही अपने हृदय में बसा लिया तो हमारा हृदय भी धाम बन जाता है। ऐसी

स्थिति में हमें परमधाम के सुखों की अनुभूति इस संसार में ही होने लगती है। यहां हम धनी के दिल में डूबकर उनके सागरों के सुख की भी लज्जत ले सकते हैं, जो परमधाम में सम्भव नहीं है। इश्क, वहदत तथा निस्बत की मारिफत की पहचान यहां ही सम्भव है, परमधाम में नहीं। इस जागनी ब्रह्माण्ड में ही योगमाया की भी लीलाओं का अनुभव किया जा सकता है, जो परमधाम में नहीं हो सकेगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जागृत हो जाने पर परमधाम से भी अधिक सुख का अनुभव यहां किया जा सकता है, किन्तु यह सब धनी की इच्छा (हुक्म) पर ही निर्भर है।

प्रकरण ३

ए मैं है हक की, ए है हक का नूर।

खास गिरो जगाए के, पोहोंचत हक हजूर॥१५॥

शरीर और संसार से परे होकर मेरी आत्मा अपनी नूरी परआतम (परात्म) का शृंगार लेकर खड़ी है। वह स्वयं को उसी रूप में मान रही है। इस प्रकार की अपनी 'मैं' आपने ही दी है। हक की यह 'मैं' ही ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी सृष्टि को जागृत करके धनी के सम्मुख कर रही है।

भावार्थ— नूर शब्द के अनेकों अर्थ होते हैं जैसे— तारतम, अक्षर ब्रह्म, चेतन और तेजोमयी अखण्ड स्वरूप। परात्म धनी का ही नूर है। आत्मा जब संसार से परे होकर परात्म को देखने लगे तथा स्वयं को उसके प्रतिबिम्ब के रूप में अनुभव करे, तो उसे भी हक का नूर कहा जायेगा। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि—

अन्तस्करण आतम के , जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के , रहे न कछु अन्तराए। सागर २०/४४

इस अवस्था में भी आत्मा को हक के नूर की संज्ञा दी जाती है। इस स्थिति में आत्मा ब्रह्मसृष्टियों और ईश्वरी सृष्टियों को जागृत करके प्रियतम की पहचान कराती है तथा उनकी सुरता को मूल मिलावे में ले जाती है। इसे ही 'हक के हजूर होना' कहते हैं। यहां पर ही यह कथन सार्थक होता है— "अर्स बका पर सिजदा, करावसी इमाम।" सनन्ध

ए मैं इन विध की, सो मैं मरे क्योंकर।

पोहोंचे पोहोंचावे कदमों, जाग जगावे घर॥१६॥

इस प्रकार की हक की 'मैं' को भला कैसे हटाया जा सकता है ? इस प्रकार की 'मैं' ही परमधाम में धनी के चरणों में पहुँचती है तथा अन्य आत्माओं की सुरता को परमधाम में पहुँचाती है। वह स्वयं निजघर पहुँचकर जागृत होती है तथा दूसरों को भी जागृत करती है।

भावार्थ— जब आत्मा स्वयं को सांसारिक भावों से हटा लेती है तथा अपने को परात्म का प्रतिबिम्ब मानकर धनी को रिझाती है, तभी उसकी दृष्टि परमधाम में पहुँचती है। इस सम्बन्ध में श्री मुखवाणी का यह कथन देखने योग्य है—

जो मूल सरूप है अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम लेयके, विलसिए संग खसम॥ सागर ७/४१

किन्तु उसकी वास्तविक जागृति तभी होती है, जब वह अपने धाम हृदय में प्रियतम को बसा लेती है। शृंगार ग्रन्थ प्र. ४/१ में स्पष्ट कहा गया है कि 'जब हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह

जागी देखो सोए'।

श्रीमुखवाणी के इन कथनों से स्पष्ट है कि श्री इन्द्रावती जी या अन्य किसी भी आत्मा का जागृत होना हक की 'मैं' (परात्म के भावों में भावित होने) के बिना सम्भव नहीं है।

प्रकरण ४

जो मैं मांगूं जाग के, और जागे ही में पाऊं।

तो कारज सब सिद्ध होवहीं, जो फैलें नींद उड़ाऊं॥१९॥

यदि मैं धनी के द्वारा कहे हुए वचनों को आचरण में लाकर अपने अन्दर की नींद (माया) को समाप्त कर लूं और जागृत होकर धनी से मांगू तथा जागृत अवस्था में ही उसे पा लूं तो यह निश्चित रूप से कहा जायेगा कि मेरे सभी कार्यों का लक्ष्य पूर्ण हो गया।

भावार्थ— युगल स्वरूप की छवि को अपने धाम हृदय में बसा लेना ही आत्मिक रहनी है। ऐसा करने पर ही हृदय से माया हटती है एवं दिल में धनी विराजमान होते हैं। इस अवस्था में धनी से कुछ भी (परार्थ) मांगने पर अवश्य ही प्राप्त होता है और जीवन का यही प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए।

ए जो नींद उड़ाई कौल में, जो कदी फैल में उड़त।

तो निसबत इन की हक सों, आवत अर्स लज्जत॥२०॥

ज्ञान के कथन द्वारा जिस प्रकार माया की नींद उड़ायी गयी है, यदि आचरण के द्वारा उड़ा (समाप्त कर) दी जाती तो अपना सम्बन्ध अक्षरातीत से जुड़ जाता और परमधाम का स्वाद आने लगता (अनुभूति होने लगती)।

भावार्थ— श्री मुखवाणी के चिन्तन मनन द्वारा ज्ञान दृष्टि से यह मान लेना कि हमारे मूल तन परमधाम में विराजमान हैं, जिन पर माया के विकारों का कोई भी असर नहीं पड़ सकता है और हमारी आत्मा भी उसी परात्म की सुरता है जिस पर माया का कोई भी प्रभाव वस्तुतः नहीं पड़ेगा, इस प्रकार की स्थिति कथनी द्वारा माया की नींद को उड़ाना है। अपनी आत्मिक दृष्टि से अपने मूल तन एवं युगल स्वरूप का दीदार करके नींद उड़ाना आचरण (करनी) द्वारा नींद समाप्त करना है। चौपाई का यह कथन सुन्दरसाथ के लिये है, महामति जी के लिये नहीं।

एक पल जात पिउ दीदार बिना, बड़ा जो अचरज ए।

ए जो मैं है हक की, सो क्यों खड़ी बिछोहा ले॥२१॥

यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि प्रियतम के दीदार के बिना एक-एक पल कैसे बीता जा रहा है ? मेरे अन्दर धनी की 'मैं' आ गयी है तथा विरह की अवस्था भी है, किन्तु आश्चर्य है कि धनी के बिना इस संसार में मैं क्यों रह रही हूँ ?

भावार्थ— इस चौपाई में निजस्वरूप की पहचान (धनी की मैं) ज्ञान दृष्टि द्वारा कही गयी है। ज्ञान के द्वारा ही ईमान (अटूट विश्वास) और समर्पण का भाव आता है, जिससे विरह का रस प्रकट होता है। विरह-प्रेम में डूबने पर ही अपनी परात्म का साक्षात्कार होता है, जो अपने निजस्वरूप की वास्तविक पहचान हैं।

श्रवणों सब्द सुनाए के, दिल दीदे दीदार।

अनेक हक मेहेरबानगी, सो कहां लो कहूँ सुमार।।३४।।

हे धनी! आपने मेरे कानों में ब्रह्मवाणी के अमृतमयी शब्द उंडेल दिये और अपने दिल के नेत्रों से मैंने आपका दीदार भी कर लिया। आपने इसी प्रकार की इतनी मेहर बरसायी है, जिसकी कोई भी सीमा नहीं है। उसे मैं अपने शब्दों में कहाँ तक कह सकती हूँ।

भावार्थ— सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से श्री राजजी ने श्री मिहिरराज जी को ब्रह्मज्ञान रूपी अमृत का (कानों से) रसपान कराया, यहां यही बात दर्शायी गयी है। श्री इंद्रावती जी ने अपने प्राणवल्लभ का हृत्से के अन्दर दर्शन किया, जिसे दिल की आंखों से देखना कहा गया है। वस्तुतः दिल (हृदय) ही आत्मा का चक्षु है जिससे प्रियतम का दर्शन किया जाता है। यद्यपि जीव का दिल त्रिगुणात्मक होता है, उससे ब्रह्म का दर्शन कदापि सम्भव नहीं होता किन्तु, आत्मा का दिल जीव के दिल से पूर्णतया भिन्न होता है। जिन साधनों से आत्मा की क्रियाशीलता दृष्टिगोचर होती है, उन्हें ही अन्तःकरण या दिल (हृदय) कहते हैं। इस प्रकार आत्मा के दिल को परात्म के दिल का प्रतिबिम्ब कहा जाता है। इसी कारण सागर ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया है कि—
ताथे हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।

यह कथन स्पष्ट करता है कि आत्मा के दिल (नेत्रों) से ही धनी को देखना है और उस शोभा को आत्मा के दिल (नेत्रों) में बसाना है।

प्रकरण ५

ए खेल मोहोरे कथ कथ गए, सो जले खुदी बेखबर।

आप लेहेरें माहें अपनी, गोते खात फेर फेर।।१८।।

इस संसार के बड़े-बड़े वाचक ज्ञानी जीवन भर वेद-शास्त्रों के ज्ञान को लेकर-प्रवचन करते रहे। प्रेम से रहित होने के कारण वे अक्षरातीत से अनभिज्ञ रहे तथा अहंकार की अग्नि में जलते रहे। अपने हृदय में उमड़ने वाले अहंकार के सागर में वे डूबते-उतराते रहे तथा उसकी लहरों से वे अन्त तक जूझते रहे।

भावार्थ— धर्मग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त करके उसका प्रवचन करने मात्र से ही जीवन का लक्ष्य पूरा नहीं होता। सर्वोपरि लक्ष्य है, अपने हृदय-मन्दिर में प्रेम की शैय्या सजाकर प्रियतम को उस पर विराजमान करना। अहंकार की अग्नि में जलने वाले शुष्क हृदय वाले वाचक ज्ञानियों के लिये यह असम्भव है।

ए मैं इन गिरोह की, काढ़ें एक धनी धाम।

ए मरे पेड़ से हुकमें, ले साहेब के कलाम।।३२।।

इस संसार में ब्रह्मसृष्टियों की 'मैं' को एकमात्र धाम धनी ही निकालते हैं। जब ब्रह्ममुनि धनी की वाणी को अपने अन्दर आत्मसात् कर प्रेम की राह अपनाते हैं तो श्री राज जी के हुक्म से यह जड़ से ही समाप्त हो जाती है।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जब धनी की पहचान करके उन्हें अपने दिल में बसाया जाता है तो अहम् (मैं) का पर्दा जड़ मूल से समाप्त हो जाता है। मात्र ज्ञान के द्वारा तो अहम् थोड़े समय के लिये ही हट सकता है।

इलम खुदाई लदुन्नी, बकसीस असल रोसन।

जोस इस्क ले बंदगी, निसबत असल वतन॥३३॥

तारतम वाणी का ज्ञान अक्षरातीत परब्रह्म के द्वारा दिया गया है। इस ब्रह्मवाणी की कृपा से ही वास्तविक सत्य का प्रकाश होता है, जिससे इश्क और जोश लेकर धनी को रिझाने पर अपनी मूल निस्बत (परात्म) तथा परमधाम का दीदार होता है।

भावार्थ— अटल विश्वास (ईमान) तथा विरह के द्वारा धनी का जोश प्राप्त होता है, जिसके द्वारा सुरता कालमाया को पार करके योगमाया में सत्स्वरूप तक पहुंच जाती है। इसके आगे इश्क (अनन्य प्रेम) का मार्ग है, जिस पर चलकर आत्मा परमधाम के पच्चीस पक्षों एवं युगल स्वरूप की शोभा में विहार करती है। निस्बत के स्वरूप परात्म के तन हैं जो धनी के चरणों में बैठे हैं, किन्तु निस्बत की मारिफत के स्वरूप श्री राज जी है। इस चौपाई के चौथे चरण में कथित 'निस्बत की पहचान' का यही भाव है।

अब यों हक को याद कर, ले हुकम सिर चढ़ाए।

ए हक बिना मैं दुनीय की, सो सब मैं देऊं उड़ाए॥३४॥

हे मेरी आत्मा! अब तू अपने प्रियतम के आदेश को शिरोधार्य करके प्रेम की राह अपना और अपने धाम हृदय में उनको बसा। मेरे हृदय में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रह सकता है। अपने अन्दर छिपी हुई संसार की 'मैं' को मैं अब पूर्णतया उड़ा दूंगी।

ताथें मैं इन धनी की, करत हक का काम।

ए खेल खुसाली लेय के, जाग बैठे इत धाम॥३५॥

इस प्रकार श्री राज जी के द्वारा निर्देशित जागनी का कार्य तभी यथार्थ रूप में सम्पन्न होता है, जब हृदय में धनी की 'मैं' आ जाय। तभी इस खेल का आनन्द भी लिया जा सकता है और यहीं बैठे-बैठे परमधाम में जागृत होने जैसे आनन्द की अनुभूति की जा सकती है।

भावार्थ— इस चौपाई के चौथे चरण से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यहां परमधाम में जागृत होने की बात कही गई है 'इत' का अर्थ यहाँ (संसार में) और उत का अर्थ वहाँ (परमधाम) में होता है। इस संसार में मात्र आत्मा की जागनी होनी है। खेल में परात्म की जागनी की बात कहना वाणी के सिद्धान्तों की अवहेलना है। जब आत्मा जागृत हो जाती है तो वह परात्म की तरह ही परमधाम के आनन्द का रसपान करने लगती है। उसे यह लगता ही नहीं कि मैं झूठे संसार में हूँ। इस सम्बन्ध में सागर ग्रंथ का यह कथन देखने योग्य है—

अन्तस्करण आतम के, जब ए रहयो समाय।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराय॥

प्र. हि. की प्रकटवाणी में भी यह बात इस प्रकार व्यक्त की गयी है कि

इतहीं बेटे घर जागे धाम, पूरे मनोरथ हुए सब काम॥

प्रकरण ६

आस बंधाई हुकमें, हुकमें कराई उमेद।

आप इस्क की बुजरकी, कर मेहेर देखाए कई भेद॥६॥

इस खेल में आ जाने पर धनी के हुक्म से ही हमारे मन में यह आशा बनी रही कि हमें धनी अवश्य मिलेंगे तथा निज धाम के सुखों का भी अनुभव होगा। धनी ने अपने हुक्म द्वारा ब्रह्मवाणी देकर हमारी आत्मिक इच्छाओं को पूर्ण किया। अपनी मेहर से धनी ने इश्क की श्रेष्ठता और उसके कई भेदों (रहस्यों) का भी अनुभव कराया।

भावार्थ— ब्रज में प्रेम लक्ष्य विहीन था 'प्रेम हुतो लछ बिन' सखियों को यह मालूम ही नहीं था कि श्री कृष्ण जी से हमारा प्रेम क्यों है ? रास में सम्बन्ध का पता तो चल गया था किन्तु, घर का पता नहीं था। वहां के प्रेम में वहदत का अभाव था। परमधाम में वहदत के इश्क का विलास है। वहां सबका इश्क बराबर है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में वहदत और इश्क की लज्जत (स्वाद) ली जा सकती है, जागृत होने पर। यहां इश्क का अहसास विरह में या युगल स्वरूप की शोभा में डूबकर किया जाता है। परमधाम के विपरीत यहां पर किसी आत्मा में धनी के प्रति कम इश्क है तो किसी में उससे अधिक। हाँ ! अर्श दिल वाले सुन्दरसाथ में वहदत की लज्जत अवश्य है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही अभिप्राय है।

प्रकरण १३

जब याद तुमें मैं आऊंगा, तबहीं बैठोगे जाग।

गए आए कहूं नहीं, सब रूहें बैठी अंग लाग॥३७॥

जब तुमको (सखियों को) मेरी याद आयेगी, तो तुम तुरन्त ही जागृत हो जाओगी। सभी सखियां तो मूल मिलावे में एक दूसरे से गले लिपट कर बैठी हैं। उनके कहीं बाहर जाने या आने का प्रश्न ही नहीं है।

भावार्थ— सखियों के नूरी तन का खेल में आना तो किसी भी प्रकार से सम्भव ही नहीं है धनी के हुक्म से उनकी सुरता इस नश्वर जगत को देख रही है और धनी का प्रेम लेकर वह ही निजधाम जायेगी। इसे ही सखियों का आना-और जाना कहते हैं। श्रीमुखवाणी में इसे इस प्रकार कहा गया है—

महामति कहे अरवाहें अर्स से, जो कोई आई होए उतर।

सो इन स्वरूप के चरण लेय के, चलिए अपने घर॥ सागर ८/११८

प्रकरण १४

उमर खोवें नुकसान में, पर करें नाहीं सहूर।

याद न करें तिनको, जिनका एता बड़ा जहूर॥४२॥

वे अपनी सारी उम्र क्षणिक विषयों के सेवन में गंवा देते हैं, लेकिन अपने इस भटकाव के बारे में कभी भी आत्म-चिन्तन नहीं करते। वे संसार के झूठे कामों को तो करते रहते हैं, किन्तु जिस सच्चिदानन्द परब्रह्म की अनन्त महिमा है, उन्हें याद करने के लिये उनके पास समय ही नहीं होता।

ए इलम आए पीछे, नींद आवत क्यों कर।

जब सक जरा ना रही, रूहों क्यों न आवे याद घर॥८१॥

ऐसी अलौकिक ब्रह्मवाणी के अवतरित होने के पश्चात् भी ब्रह्मसृष्टियों को माया की नींद क्यों सता रही है ? यह आश्चर्य की बात है कि सारे संशय समाप्त हो जाने के पश्चात् भी सुन्दरसाथ को निजघर की याद क्यों नहीं आ रही ?

भावार्थ— ज्ञान के क्षेत्र में परिपक्व हो जाने के बाद भी यदि हमारा ध्यान परमधाम और युगल स्वरूप की शोभा में नहीं लगता तो जागृत होने की मंजिल दूर रह जायेगी। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

इन झूठी जिमी में बैठाए के, देखाई हक बका निसबत।

मेहेर करी रूहों पर, देने अर्स लज्जत॥८५॥

इस झूठे संसार में बैठाकर धाम धनी ने अपनी अखण्ड निस्वत की पहचान करायी है। धाम धनी ने परमधाम का स्वाद देने के लिये ही ब्रह्मसृष्टियों पर इस प्रकार की मेहर की है।

भावार्थ— धाम धनी ब्रह्मसृष्टियों को मात्र दुःख दिखाने की लीला कर रहे हैं। वे उन्हें स्वप्न में भी दुःख नहीं दे सकते। उनका तो स्पष्ट कथन है— **जिन जुबां मैं दुःख कहूँ सो जुबां करुँ सत टूक। कलश हि.११/३२** इस मायावी खेल में भी परमधाम का रसास्वादन कराना ही धनी को अभीष्ट है। इस सम्बन्ध में श्रृंगार प्र. १२/३० का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है—

सुख हक इस्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रुह सों करो विचार।

कौन जंगल गुमराह में हुते, कैसा पाया अर्स बाग।

नींद उड़ाओ विचार के, क्यों ना देखो उठ जाग॥८३॥

पहले आप जंगलों में भटका करते थे, अब परमधाम के नूरी बागों में भ्रमण करते हैं। हे सुन्दरसाथ जी! अपनी माया की नींद छोड़कर उठते क्यों नहीं ? अब जागृत होकर विचार कीजिए।

चरकीन जिमी में बैठ के, कैसी लेते थे वाए।

अब वाए झरोखे अर्स के, कैसी लेत हो अब आए॥८४॥

पहले आप गन्दी बस्तियों में दुर्गन्धित हवा से दुःखी थे। अब आप परमधाम के महलों के झरोखों से किस प्रकार शीतल, मन्द एवं सुगन्धित हवा के झोंके लेते हैं ? इसका विचार कीजिए।

कौन बदबोए में हुते, अब आई कौन खुसबोए।

सहूर अपने दिल में, तौल देखो ए दोए॥८५॥

अब आप अपने दिल में दोनों स्थितियों की तुलना करके चिन्तन कीजिए कि पहले आप किस गन्दगी भरी दुनियां में रहते थे और अब आपकी सुरता परमधाम की कैसी खुशबू का रसपान करती रहती हैं ?

ए कैसा था दुख वजूद, दुख में थे रात दिन।

अब पाया सुख अर्स ठौर में, और कैसे अर्स तुम तन॥६६॥

पहले आपका शरीर दुःखों का घर था। दिन—रात आप दुःखों की अग्नि में जलते रहते थे। अब आपकी सुरता अपने नूरमयी तन को देख रही है और परमधाम के अखण्ड आनन्द से बाहर नहीं निकल पा रही है।

भावार्थ— इस प्र० की चौ० ८७—१०२ तक का कथन उन सुन्दरसाथ के लिये एक सबक (सिखापन) है, जो तारतम लेने के बाद भी या तो अपने दुःखों का रोना रोते रहते हैं या श्री मुखवाणी के ज्ञान को कोसते हुए गीता, भागवत आदि ग्रन्थों की महत्ता प्रतिपादित करते हैं।

कैसे सुख पाए कायम तन के, किनसों हुआ मिलाप।

अब देखो साहेब अर्स का, पूछो रूह अपनी आप॥६७॥

हे सुन्दरसाथ जी! अपनी अन्तरात्मा से पूछिए कि अपनी परात्म के दीदार के पश्चात् आपको किस प्रकार के सुखों की अनुभूति हो रही है ? आपका मिलन किससे हुआ ? निश्चित रूप से आपने अपने प्रियतम का दीदार पाया है। अब जी भरकर धाम धनी के दीदार का आनन्द लीजिए।

भावार्थ— जब हमारी सुरता अपने मूल तन का दीदार करती है तो माया से उसका सम्बन्ध टूट जाता है। इसी को कहते हैं— ' परआतम को आतम देखसी, तब टलसी उलटो फेर जी। किरंतन ३०/४४

अपनी परात्म का दीदार करने वाला सुन्दरसाथ निश्चित रूप से ब्रह्मसृष्टि होता है। उसके धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हो जाते हैं और उसे परमधाम के सुखों का रसास्वादन होने लगता है। इस चौपाई में यही बात विशेष रूप से दर्शायी गयी है।

कैसी झूठी निसबत में, करते थे गुजरान।

अब निसबत भई अर्स की, लेत संग सुभान॥६८॥

आत्म—जागृति से पहले आप संसार के झूठे सम्बन्धियों में फंसे हुए थे और किसी तरह अपना समय गुजारा करते थे। अब आपका सम्बन्ध परमधाम और अक्षरातीत से हो गया है, जिनके आनन्द में आप पल—पल डूबे रहते हैं।

पेहेनावा फना मिने, और पेहेनावा अर्स का।

कछू पाई है तफावत, तुम देखो दिल अपना॥१००॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप अपने दिल में इस बात का विचार करके देखिए कि संसार के पहनावे में और परमधाम के नूरमयी वस्त्रों एवं आभूषणों के पहनावे में कुछ अन्तर है या नहीं ?

भावार्थ— इस चौपाई में उस प्रसंग का वर्णन है जब आत्मा ध्यान द्वारा परमधाम पहुँचती है तथा यमुना जी में स्नान करके द्योहरियों में परमधाम का श्रृंगार करती है। सागर ग्रन्थ ७/४१ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि—

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम लेय के, विलसिए संग खसम॥

अर्थात् अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर ही मूल-मिलावें में प्रवेश होगा। उस श्रृंगार में तथा ध्यान टूटने के पश्चात् संसार के श्रृंगार में क्या अन्तर है ? इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

देखो ताल नदी झूठी जिमी, और देखो अर्स हौज जोए।

करो याद सुख दयो रूह को, दिल देख तफावत दोए।।१०२।।

इस नश्वर संसार की गन्दगी से भरपूर ताल-तलैयाँ, नदियों एवं धरती को देखिए तथा परमधाम के हौजकौसर एवं यमुना जी की शोभा को देखिए। अपने दिल में इस बात का विचार कीजिए कि संसार में और परमधाम में कितना अन्तर है ? इस प्रकार ध्यान द्वारा परमधाम की शोभा में डूबकर (याद कर) अपनी आत्मा को शाश्वत् आनन्द दीजिए।

प्रकरण १६

हुकम हुआ इमाम को, खोल दे द्वार रुहन।

आवें सब मेयराज में, दिल देखें अर्स मोमिन।।३।।

मूल स्वरूप श्री राज जी का हकी सूरत के लिये आदेश हुआ कि ब्रह्मसृष्टियों के लिये परमधाम का दरवाजा खोल दो, जिससे सभी अपने दिल के नेत्रों से परमधाम और अपने मूल स्वरूप परात्म का दीदार वैसे ही कर सकें जैसे मुहम्मद साहिब ने शबे मेयराज में किया था।

भावार्थ— श्री महामति जी के धाम हृदय में अक्षरातीत (श्रीराज जी, श्री प्राणनाथ जी) विराजमान है। मूल स्वरूप अपने दिल में जो कुछ भी लेंगे, आवेश स्वरूप के अन्दर भी वही बात आयेगी, जिसे हुकम कहा गया है।

श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान आवेश स्वरूप को ही श्री प्राणनाथ जी या आखरुल इमाम कहते हैं। चूँकि, कुर्आन की भाषा में एक अल्लाहतआला के अतिरिक्त अन्य कोई भी परब्रह्म नहीं हो सकता, इसलिये इस संसार में जितने भी स्वरूप धारण किये जायेंगे, उन्हें परब्रह्म के हुकम के अधीन माना जायेगा। यही कारण है कि इस चौपाई के पहले चरण में कहा गया है कि इमाम को धाम धनी का हुकम हुआ। इस सम्बन्ध में श्रृंगार १६/६५ में कहा गया है—

जो तोहे कहे हक हुकम, सो तू देख महामत।

और कहो रुहन को, जो तेरे तन वाहेदत।।

इस चौपाई के चौथे चरण में कहा गया है कि दिल के नेत्रों से देखें। यहां यह प्रश्न होता है कि ध्यान अपने धाम हृदय में किया जाय या परमधाम में ?

यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि ध्यान हमेशा परमधाम का ही करना चाहिए। हृद-बेहृद से परे नूरमयी परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप का ध्यान करते-करते हमारी आत्मा का दिल और परात्म का दिल दोनों ही एकरस हो जाते हैं। उस समय परमधाम की सम्पूर्ण छबि आत्मा के धाम हृदय में ही दिखने लग जाती है। इसे सागर ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया है—

अन्तस्करण आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए।। सागर ११/४४

आत्मा का दिल ही आत्मा का चक्षु है, जिसमें धनी की शोभा को बसाया जाता है। जिस प्रकार हम अपने बाह्य चक्षुओं से संसार को देखते हैं किन्तु नेत्रों में देखने की शक्ति का

सम्बन्ध जीव से होता है, उसी प्रकार आत्मा के दिल में परमधाम की अनुभूति होती है और यही कहा जाता है कि दिल की आंखों से देखा जाता है, किन्तु वास्तविकता यह होती है कि आत्म-दृष्टि ही परमधाम का दर्शन करती है।

इलम मेरा लेय के, निसंक दुनी से तोड़।

सोई भला इस्क, जो मुझ पे आवे दौड़।।६२।।

जो आत्मा मेरा तारतम ज्ञान लेकर संसार की परवाह न करते हुए मुझे पाने के लिये दौड़ती हुई आयेगी, उसी का इश्क सच्चा माना जायेगा।

भावार्थ— अक्षरातीत को पाने के लिये दौड़ने का अर्थ है— दीदार करने के लिये प्रेम में डूबकर ध्यान (चितवनि) में लग जाना।

पट आड़ा बका वतन के, एही हुई फरामोस।

जो याद करो हक वतन, इस्क न आवे बिना होस।।७४।।

तुम्हारे और अखण्ड परमधाम के बीच में माया का परदा है। यदि तुम अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत तथा निजघर का ध्यान (चितवनि) करो तो तुम्हारे अन्दर इश्क आ जायेगा। इश्क आये बिना तुम होश में नहीं आ सकते अर्थात् जागृत नहीं हो सकते।

बेसक इलम सीख के, ऐसे खेल को पीठ दे।

देखो कौन आवे दौड़ती, आगूं इस्क मेरा ले।।८५।।

सभी आत्माओं के लिये यह परीक्षा की घड़ी है। देखना है कि वह कौन सी आत्मा है, जो मेरे संशय रहित तारतम ज्ञान को ग्रहण करके मायावी जगत् को पीठ दे देती है और मेरा इश्क लेकर दौड़ते हुए मेरे पास आती है अर्थात् अपने दिल में मेरी शोभा को बसा लेती है।

भावार्थ— सभी आत्माएं एक साथ ही परमधाम जायेंगी। इस चौपाई में दौड़ लगाने का तात्पर्य है— 'चितवनि' में डूबकर अपनी आत्मिक दृष्टि को परमधाम ले जाना और अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप को बसा लेना।

जब तुम भूले मुझ को, तब इस्क गया भुलाए।

अब नए सिर इस्क, देखो कौन लेय के धाए।।८६।।

जब तुमने मुझे भुला दिया तो तुमसे इश्क भी जुदा हो गया। अब मुझे यही देखना है कि तुममें से ऐसी कौन है, जो अब नए सिरे से मेरा इश्क लेकर मेरे प्रति दौड़ लगाती है ?

भावार्थ— इश्क और अक्षरातीत में चोली दामन का साथ है। अक्षरातीत को भुलाकर इश्क पाने की कल्पना बालू पेरकर तेल निकालने के समान है। ब्रह्मवाणी अक्षरातीत की पहचान कराती है तो इश्क अक्षरातीत के दीदार कराता है। ध्यान (चितवनि) की प्रक्रिया में अक्षरातीत की शोभा में ही स्वयं को डुबोया जाता है। इश्क पाने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

परिक्रमा

प्रकरण ३

इन ठौर सोभा जो अलेखे, चित सोई जाने जो देखे।

मध्य बन धाम के गिरदवाए, सोभा एक दूजी पे सिवाए॥४४॥

इस प्रकार हौज कौसर ताल की अपरम्पार शोभा है। इसे उसी का हृदय जान सकता है, जिसने चितवनि के द्वारा अपनी आत्मिक दृष्टि से देखा हो। परमधाम के मध्य में रंगमहल है, जिसके चारों ओर घेरकर अनेकों प्रकार के वन आये हैं। इनमें प्रत्येक की शोभा एक से बढ़कर एक है।

बरन्यो न जाए या मुख, चित्त में लिए होत है सुख।

बन में खेलें टोले टोले, मोर बांदर करत कलोले॥४७॥

इस अलौकिक शोभा का वर्णन इस मुख से हो पाना सम्भव ही नहीं है। चितवनि द्वारा इसे अपने हृदय मन्दिर में बसा लेने पर अद्वितीय सुख का अनुभव होता है। बन्दर और मोर जैसे पशु-पक्षी वन में झुण्ड बनाकर तरह-तरह के खेल करते हैं और प्रेममयी लीलाओं में मग्न रहते हैं।

ए मैं क्यों कर करूं बरनन, तुम लीजो कर चितवन।

नव भोम सबों के मंदिर, देखो वस्तां अपनी चित धर॥७०॥

हे साथ जी! मैं इस अलौकिक शोभा का वर्णन कैसे करूँ? आप चितवनि करके स्वयं ही देखिए। रंगमहल की सभी नवों भूमिकाओं के मन्दिरों में आपकी ही वस्तुएं रखी हुई हैं। उन्हें अपनी आत्मिक दृष्टि से देखिए और अपने हृदय मन्दिर में बसा लीजिए (अखण्ड कर लीजिए)।

भावार्थ—इस चौपाई में धाम धनी के द्वारा सुन्दरसाथ को चितवनि के द्वारा परमधाम को देखने का स्पष्ट निर्देश है।

केहेती हों करके हेत, सारे दिन की एह बिरत।

तुम लीजो दृढ़ कर चित्त, अपना जीवन है नित॥७६॥

हे साथ जी! परमधाम की यह सारे दिन की लीला है, जिसे मैं आपसे बहुत प्रेमपूर्वक कहती हूँ। इसे आप अपने हृदय में दृढ़तापूर्वक बसा लीजिए क्योंकि यही अपना अखण्ड (वास्तविक) जीवन है।

भावार्थ—संसार के झूठे क्रिया कलापों से जो हमारी आयु और ऊर्जा क्षीण हो रही है, उससे हमारी आत्मा को कुछ भी लाभ होने वाला नहीं है, किन्तु, यदि हम निजधाम की लीला में डूब जाते हैं, तो हम स्वयं को माया से अलग परमधाम में अनुभव करते हैं, जो हमारा वास्तविक जीवन है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही आशय है।

कई चाकले चित्रकारी, ता पर बैठे श्री युगल बिहारी।

दोऊ सरूप चित में लीजे, फेर फेर आतम को दीजे॥७७५॥

जिन दोनों चाकलों पर युगल स्वरूप विराजमान हैं, उन पर अनेक प्रकार की अति सुन्दर चित्रकारी की गयी है। हे साथ जी! युगल स्वरूप श्रीराजश्यामाजी की अनुपम छवि को अपने हृदय

में बारम्बार बसाइये और अपनी आत्मा को परमधाम के आनन्द में डुबोइये।

आतमसों न्यारे न कीजे, आतम बिन काहूँ न कहीजे।

फेर फेर कीजे दरसन, आतम से न्यारे न कीजे अधखिन।।१७६।।

हे साथ जी! आप अपनी आत्मिक दृष्टि से युगल स्वरूप की इस मनोहारिणी छवि का बारम्बार दर्शन कीजिए तथा आधे क्षण के लिये भी इसे अपनी आत्मा से अलग न कीजिए। ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य किसी से भी इस सुख को न कहिए।

भावार्थ— इस चौपाई में उन सुन्दरसाथ को इस बात का करारा उत्तर मिलता है, जो भ्रमवश यह मान बैठे हैं कि इस संसार में युगल स्वरूप का दर्शन ही नहीं हो सकता तथा चितवनि करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

पेहेले अंगुरी नख चरन, मस्तक लों कीजे बरनन।

सब अंग वस्तर भूखन, सोभा जाने आतम की लगन।।१७७।।

सबसे पहले युगल स्वरूप के चरण—कमलों की अंगुलियों तथा नखों से लेकर शीश—कमल तक की शोभा का वर्णन कीजिये, अर्थात् ज्ञानदृष्टि से अपने हृदय में बसाइये ताकि आत्मा में जो युगल स्वरूप के अंग—प्रत्यंग एवं वस्त्र—आभूषणों को देखने की लगन लगी है, वह पूर्ण हो जाय तथा आत्मा अपने धाम हृदय में इस अद्वितीय शोभा को बसा सके।

भावार्थ— इस चौपाई के दूसरे चरण में चितवनि की उस अवस्था का वर्णन है, जब ज्ञान चक्षुओं से युगल स्वरूप की शोभा को निहारते हैं। 'वर्णन' करने का यही अभिप्राय है। इस स्थिति में जीव विरह की अग्नि में जल रहा होता है, जिसे अगली चौपाई में प्रकट किया गया है—

यों सरूप दोऊ चित में लीजे, अंग वार डार के दीजे।

गलित गात सब भीजे, जीव भान भूँन टूक कीजे।।१७८।।

हे साथ जी! इस प्रकार आप अपने हृदय में युगल स्वरूप को बसाइये तथा अपने अंग—अंग को धनी के विरह में न्योछावर कर दीजिए। समर्पण की बलिवेदी पर अपने जीव को इस प्रकार टुकड़े—टुकड़े कर दीजिए कि आपका रोम—रोम प्रेम में डूब जाय।

भावार्थ— समर्पण की पराकाष्ठा पर पहुँचने पर ही 'मैं' (खुदी) का परित्याग सम्भव है। इस अवस्था को प्राप्त हुए बिना प्रेम का रसपान असम्भव है और बिना प्रेम के भला धनी का दीदार कैसे हो सकता है ?

रंग करो विनोद हांस, सांचा सुख ल्यो प्रेम विलास।

घरों सुख सदा खसम, लेत मेरी परआतम।।१७९।।

अब, आप प्रसन्नता भरी हंसी के साथ प्रियतम से आनन्द की लीला कीजिए और प्रेम के विलास का सच्चा सुख लीजिए। परमधाम में तो प्रियतम का सुख अनादि काल से ही मेरी परात्म लेती रही है।

भावार्थ— इस चौपाई में चितवनि की उस अवस्था को दर्शाया गया है, जब आत्मा अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर युगल स्वरूप के सम्मुख होती है तथा वैसे ही प्रेम और आनन्द की

अनुभूति करती है, जैसे परमधाम में करती रही है।

पर इत सुख पायो जो मेरी आत्म, सो तो कबहूँ न काहूँ जनम।

इत बैठे धनी साथ मिल, हाँसी करने को देखाया खेल॥१८०॥

मेरी आत्मा ने चितवनि की अवस्था में जिस आनन्द को इस संसार में पाया है, उसे आज दिन तक इस सृष्टि में कोई भी किसी जन्म में नहीं पा सका है। हमारे ऊपर हंसी करने के लिये ही धनी ने यह माया का खेल दिखाया है और नश्वर संसार में भी प्रियतम सुन्दरसाथ के धाम हृदय में ही बैठे हुए हैं।

भावार्थ— उपरोक्त दोनों (१७६-१८०) चौपाइयों से यह सिद्ध होता है कि इस नश्वर संसार में आत्मा की ही जागनी होनी है और मात्र आत्मा से ही युगल स्वरूप, एवं परमधाम को देखा जा सकता है, परात्म से नहीं। परात्म की लीला परमधाम में है। परमधाम में श्रीराजजी जहां अपने नूरी स्वरूप से मूलमिलावे में विराजमान हैं, वहीं इस संसार में आत्माओं के धाम हृदय में भी विराजमान हैं। 'इन गुन्हेगारों के दिल को, अर्स कर बैठे मेहरबान' खु. ३/७० का कथन यही तथ्य प्रकट करता है।

अब आप जगाए के धनी, हाँसी करसी मिनों मिने घनी।

अब केहेती हों साथ सबन, घर जागोगे इन वचन॥१८१॥

अब धाम धनी हमको जागृत करेंगे तथा हमारे ऊपर बहुत हंसी करेंगे। इसलिये अब मैं सब सुन्दरसाथ से यही बात कहती हूँ कि हे साथ जी! जब आप तारतम वाणी को आत्मसात् करके चितवनि द्वारा अपनी आत्मा को जागृत करेंगे तभी अपनी परात्म में भी जागृत हो सकेंगे।

भावार्थ— परात्म में जागृति खेल खत्म होने के बाद ही होगी किन्तु, खेल तभी खत्म होगा, जब सबकी आत्मा जागृत होगी। यद्यपि प्र. हि. के 'कातनी' के प्रकरण २६/१४ के अनुसार इस खेल में सबकी आत्मा जागृत नहीं हो पायेगी। कई तो अपनी आंखें मलती हुई ही उठेंगी। 'जो उठसी आंखां चोलती, सो केहेसी कहा वचन' धाम धनी के आदेश के अनुसार जब तक इस ब्रह्माण्ड और खेल का अस्तित्व है, तब तक एक मात्र ब्रह्मवाणी द्वारा चितवनि के माध्यम से अपनी आत्मा को ही जागृत कर सकेंगे। इसके बिना निजघर में परात्म की जागनी सम्भव नहीं है।

तासों महामत प्रेम ले तौलती, तिनसों धाम दरवाजा खोलती।

सैयां जानें धाम में पैठियां, ए तो घरही में जाग बैठियां॥१८२॥

इस प्रकार श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि मैंने प्रेम से ही धनी की पहचान की है और सब सुन्दरसाथ के लिए भी मैंने परमधाम का दरवाजा खोल दिया है। अब तो प्रेम के रस में डूबी हुई सखियों को ऐसा लगने लगा है कि वे इस संसार में ही नहीं हैं, बल्कि संसार को छोड़कर वे अपने परमधाम में पहुँच गयी हैं और जागृत होकर साक्षात् धनी के सामने बैठी हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में अध्यात्म जगत् की उस परम अवस्था का वर्णन है, जब आत्मा प्रेम में डूबकर शरीर के बोध से पूर्णतया रहित हो जाती है तथा इस संसार और बेहद से परे होकर परमधाम के मूल मिलावे में पहुँच जाती है और युगल स्वरूप को एकटक देखने लगती है। उस समय, उसे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह पूर्णतया जागृत है तथा धनी के सम्मुख है। संसार के

अस्तित्व का उसे जरा भी भान नहीं होता। सागर ग्रन्थ में इस अवस्था का बहुत ही मनोरम चित्रण किया गया है—

अन्तस्करण आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥ सा.११/४४

इस लक्ष्य को पाने लिये प्रेममयी चितवनि के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

प्रकरण ४

चौकस कर चित दीजिए, आतम को एह धन।

निमख एक ना छोड़िए, कर मन वाचा करमन॥६॥

परमधाम की यह लीला आत्मा का अखण्ड धन है। बहुत ही सावधान होकर इस लीला के प्रति अपना ध्यान क्रेन्दित कीजिए और एक क्षण के लिये भी मन, वाणी और कर्म से इसे न छोड़िये।

भावार्थ— लापरवाही से कभी भी आध्यात्मिक लक्ष्य को नहीं पाया जा सकता, इसलिये इस चौपाई के पहले चरण में आलस्य छोड़कर चितवनि में हमेशा लगे रहने का निर्देश दिया गया है। मन से लीला को न छोड़ने का भाव है—लीला का निरन्तर मनन करते रहना। कर्म से परित्याग न करने का तात्पर्य है—आत्मिक दृष्टि से लीला में डूबे रहना (देखते रहना)। इसी प्रकार वाणी से न छोड़ने का अर्थ है—वाणी से केवल परमधाम की शोभा और लीला के ही बारे में बातें करना।

एही अपनी जागनी, जो याद आवे निज सुख।

इस्क याही सों आवहीं, याही सों होइए सनमुख॥७॥

अपनी आत्मिक जागनी का स्वरूप ही यही है कि परमधाम के अपने अखण्ड सुखों का हमेशा चिन्तन बना रहे। इसी अवस्था में ही धनी का प्रेम हृदय में आता है और प्रियतम परब्रह्म का दीदार (दर्शन) होता है।

भावार्थ— जो जिसका चिन्तन करता है, वह वैसा ही हो जाता है। भोग का चिन्तन करने वाला भोगी तथा ब्रह्म का चिन्तन करने वाला ब्राह्मी गुणों को आत्मसात् कर लेता है। धनी का प्रेम प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि अनन्त प्रेम के स्वरूप प्रियतम अक्षरातीत का ही मात्र चिन्तन हो। उपरोक्त चौपाइयों में यही तथ्य दर्शाया गया है।

इस्क धनी को आवहीं, याही याद के माहें।

इस्क जोस सुख धनी बिना, और पैदा कहुं नाहें॥८॥

युगल स्वरूप की शोभा—श्रृंगार तथा परमधाम की लीला के चिन्तन से प्रियतम का इश्क आता है। श्रीराजजी के अतिरिक्त अन्य कहीं से भी प्रेम का जोश और अखण्ड आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाइयों में 'चिन्तन' का तात्पर्य शुष्क हृदय के बौद्धिक चिन्तन से नहीं है, बल्कि अपने चित्त से मायावी जगत के संस्कारों को निकालकर श्रद्धा और समर्पण के भावों से युक्त होकर अपने कोमल हृदय (चित्त) में प्रियतम तथा परमधाम की शोभा और लीला को आत्मसात् करने से है।

ताथें पल पल में ढिग होइए, सुख लीजे जोस इस्क।

त्यों त्यों देह दुख उड़सी, संग तज मुनाफक॥६॥

इसलिये हे साथ जी! आप चितवनि में इस प्रकार डूब जाइए कि आपको पल-पल प्रियतम की सान्निध्यता (निकटता) का अनुभव हो। इस प्रकार इस अवस्था में आप धनी के इश्क के जोश का सुख ले सकते हैं। जैसे-जैसे इस स्थिति की पूर्णता प्राप्त होती जाती है, वैसे-वैसे आत्मा इस झूठे मन का साथ छोड़कर शरीर के दुःखों से स्वयं को अलग मानती है।

भावार्थ— इस चौपाई के चौथे चरण में 'मुनाफक' शब्द का प्रयोग मन के लिये किया गया है। यह मन कभी तो श्री राज जी की ओर लग जाता है और कभी माया की तरफ। इसे मुनाफक कहे जाने का यही कारण है। मन के साथ जुड़े होने के कारण ही जीव को अपने शरीर के माध्यम से सुख या दुःख का अनुभव होता है। आत्मा जीव के ऊपर बैठकर इस मायावी लीला को देख रही है। चितवनि की गहन-उच्च अवस्था में वह स्वयं को इस पंचभौतिक शरीर, अन्तःकरण तथा जीव से परे परात्म स्वरूप के प्रतिबिम्बित रूप में पाती है। यहां यहीं तथ्य स्पष्ट होता है।

निमख निमख में निरखिए, पट न दीजे पल ल्याए।

छेटी खिन ना पर सके, तब इस्क जोस अंग आए॥१२॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मिक दृष्टि से युगल स्वरूप को पल-पल देखिए। एक पल के लिये भी अपने और धनी के बीच में किसी भी प्रकार का पर्दा न आने दीजिए। जब एक क्षण के लिये भी आपकी सुरता धनी से अलग नहीं होगी, तब आपके हृदय में श्रीराजजी के इश्क का जोश आ जायेगा।

भावार्थ— युगल स्वरूप की छवि को एकटक देखना ही ध्यान है। पल-भर के लिये भी अपनी आत्मिक दृष्टि को धनी से अलग न करने का कथन यह स्पष्ट करता है कि धनी का प्रेम पाने के लिये चितवनि अनिवार्य है।

इस्क पेहेले अनुभवी, निज सरूप निजधाम।

तिन खिन बेर ना होवहीं, धनी लेत असल आराम॥१३॥

जो इश्क (प्रेम) का पहले अनुभव कर लेता है, उसे अपनी परात्म तथा परमधाम का साक्षात्कार करने में क्षण भर की भी देर नहीं लगती है। उसे आनन्द देने के लिये श्रीराजजी की शोभा उसके धाम हृदय में अखण्ड हो जाती है और आराम (प्रेम का) करती है।

भावार्थ— आशिक (प्रेमी) के हृदय में ही माशूक (प्रेमास्पद) को वास्तविक आराम (सुख) मिलता है और इसे ही प्रेमी अपनी सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि मानता है। सागर ८/१ 'अर्स तुमारा मेरा दिल है, तुम आए करो आराम' का कथन यही संकेत कर रहा है। परि. ४/१३ चौपाई का अन्तिम चरण भी यही बात कह रहा है। प्रिया-प्रियतम अंग-अंगी हैं। सुख देना और सुख लेना इनकी स्वाभाविक लीला है। 'सुख देऊं सुख लेऊं, सुख में जगाऊं साथ' कलश हिन्दुस्तानी २३/६८ की वाणी भी यही प्रकट कर रही है। परि. ४/१३ में धनी का आराम लेना यही भाव दर्शा रहा है। 'धनी का आराम लेना या किसी आत्मा का आराम लेना' इन दोनों के कथनों में विरोधाभास नहीं है, क्योंकि दोनों प्रेमलीला में एक ही स्वरूप होते हैं।

बैठे मूल मेले मिने, धनी आगूं अंग लगाए।

अंग इस्क जो अनुभवी, तुम क्यों न देखो चित ल्याए॥१४॥

हे साथ जी! आप परमधाम के मूलमिलावे में श्रीराजजी के सामने एक दूसरे से सट-सटकर बैठे हुए हैं। आपके अंग-अंग में प्रियतम के प्रेम का अनुभव भरा है। आप चित्त लगाकर (हृदय से) अपने प्राणवल्लभ की शोभा को क्यों नहीं देखते हैं?

भावार्थ— एकमात्र परात्म के ही अंग-अंग में धनी के प्रेम का अनुभव है। उसकी प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा के अंग-अंग में प्रेम का अनुभव केवल चितवनि से ही आयेगा। जीव को विरह का ही अनुभव होता है, जो प्रेम की आधारशिला है।

ए वचन विलास जो पेड़ के, आए हिरदे आतम के अंग।

तब खिन बेर न लागहीं, असल चित्त एक रंग॥१५॥

परमधाम के मूलमिलावे की इन आनन्दमयी बातों का क्रियात्मक रूप अर्थात् शोभा एवं लीला जब आत्मा के हृदय अंग में बस जाय तो आत्मा के चित्त एवं परात्म के चित्त के एक रंग होने में पल भर की भी देर नहीं लगेगी।

भावार्थ— इस प्रकरण की अधिकतर चौपाइयों में परमधाम या मूलमिलावे की प्रेममयी चितवनि का निर्देश दिया गया है। इसे इस पन्द्रहवीं चौपाई के प्रथम चरण में व्यक्त किया गया है। परात्म का प्रतिबिम्ब होने से आत्मा का चित्त भी वैसा ही है, किन्तु उसमें संसार की लीला का प्रवेश हो गया होता है। चितवनि के द्वारा आत्मा के चित्त से संसार हट जाता है और उसमें परात्म की तरह ही सम्पूर्ण परमधाम की शोभा एवं लीला दृष्टिगोचर होने लगती है, जिसे एक रंग में रंग जाना कहते हैं। सागर ग्रन्थ ११/४४ में इसे इस प्रकार से व्यक्त किया गया है—

अन्तस्करन आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥

अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछु नाहें॥ सि०११/७६

फेर फेर सुरत साधिए, धनी चरित्र सुख चैन।

इस्क आए बेर कछू नहीं, खुल जाते निज नैन॥१६॥

हे साथ जी! परमधाम में धनी की होने वाली अष्ट पहर की लीलाओं के आनन्द में अपनी सुरता लगाइये (चितवनि कीजिए)। ऐसा करने पर आपके हृदय में प्रेम आने में जरा भी देर नहीं लगेगी और आपकी आत्मि दृष्टि भी खुल जायेगी।

फेर फेर सरूप जो निरखिए, फेर फेर भूखन सिनगार।

फेर फेर मिलावा मूल का, फेर फेर देखो मनुहार॥२०॥

अब आप अपनी आत्मिक दृष्टि से बार-बार श्रीराजश्यामाजी की अलौकिक शोभा को देखिए। उनके आभूषणों की अद्वितीय शोभा और श्रृंगार को भी देखिए। बारम्बार मूलमिलावे की उस अपरम्पार शोभा को देखिये जिसमें धाम धनी अपनी अंगनाओं को खुश करने के लिये सामने बैठे हैं, और वहीं पर बैठे-बैठे सबको माया का खेल दिखा रहे हैं।

अंदर धनी के देखिए, एक चित्त हेत रस रीत।

क्यों कहूं रंग हांस विनोद की, सुख सनेह प्रेम प्रीत।।२२।।

आप एकाग्र चित्त होकर मूलमिलावे में विराजमान धनी के लाड-प्यार की लीला के आनन्द को देखिए। मैं प्रियतम के हास्यपूर्ण विनोद, प्रेम-प्रीति और स्नेह के रस में ओत-प्रोत लीला के अनन्त रसमयी सुख का वर्णन कैसे करूँ?

भावार्थ— अपनत्व की प्रगाढ़ता में प्रेम का जो रस प्रवाहित होता है, उसे लाड-प्यार (हेत) कहते हैं। प्रेम रूपी फल का बीज प्रीति है। जिस प्रकार सागर का लहराता हुआ जल ही बाह्य रूप से दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार प्रेम के सागर की लहरों का क्रीड़ा रूप जल ही स्नेह है।

खिन खिन में सुख होएसी, धनी याद किए असल।

ए सुख आए इस्क, बेर ना लगे एक पल।।२३।।

इस प्रकार धाम धनी की शोभा को अपने हृदय में बसाते हुए याद करने पर पल-पल अखण्ड सुख प्राप्त होगा। धनी का सुख मिलने पर प्रेम आने में एक पल की भी देर नहीं लगेगी।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय होता है कि क्या इश्क से सुख प्राप्त होता है या सुख आने पर इश्क आता है। यह भी कहा जाता है कि 'दुख थें विरहा उपजे, विरहा प्रेम इस्क'। क्या इन तीनों में विरोधाभास है ?

ब्रह्मवाणी के कथनों में कहीं भी विरोधाभास नहीं होता। केवल उचित सामंजस्य की आवश्यकता होती है। लौकिक दुःखों को देखकर (भोगने पर) या ज्ञान द्वारा विवेक होने पर मन परब्रह्म की ओर लग जाता है और विरह आने लगता है। विरह में असह्य पीड़ा अवश्य होती है, किन्तु उसमें प्रेम की टीस होने से सुखद दर्द भी छिपा रहता है। विरह के लिये चितवनि एवं हृदय में निर्मलता तथा कोमलता का होना आवश्यक होता है।

विरह से इश्क (प्रेम) आने के बाद जो धनी का दीदार होता है और सुख प्राप्त होता है, वह मन-वाणी से परे और अथाह होता है। विरह का सुख असीम नहीं होता, क्योंकि उसमें दर्द भी छिपा रहता है।

इसी प्रकार धनी की शोभा को दिल में बसाने (ध्यान या चितवनि करने पर) भी सुख प्राप्त होता है, किन्तु इसकी सीमा है। जैसे-जैसे ध्यान गहरा होता जाता है, वैसे-वैसे सुख भी बढ़ता जाता है और प्रेम भी बढ़ता जाता है। जब प्रेम परिपक्व अवस्था में आ जाता है तथा प्रियतम का दर्शन होता है तो उस समय का सुख अनन्त हो जाता है। उसका किसी भी प्रकार से वर्णन कर पाना सम्भव नहीं होता।

चितवनि या विरह से पहले मन को माया का सुख मिल रहा होता है, जो क्षणिक और मन को अशान्त करने वाला होता है। प्रियतम के ध्यान या विरह से जो सुख प्राप्त होता है, उसमें स्थिरता होती है और वह मन को शान्ति देने वाला होता है, क्योंकि उस आनन्द का स्रोत अक्षरातीत या परमधाम की शोभा होती है। इस प्रकरण में दर्शन से पहले के इसी सुख का वर्णन किया गया है। वह प्राप्त होते रहने पर अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ता एवं विश्वास बना रहता है। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य यह है कि वास्तविक चितवनि (ध्यान) वही है, जिसमें विरह का पुट मिला होता है।

प्रकरण ५

ए स्वाद आतम तो आवहीं, जो पलक न दीजे भंग ।

अरस—परस एक होवहीं, परआतम आतम संग ॥३७॥

आत्मा को इस शोभा का वास्तविक अनुभव तभी हो सकता है, जब वह चितवनि में एक पल के लिये भी अपनी दृष्टि को मूल मिलावे से न हटाये। इस अवस्था में ही आत्मा अपनी परात्म के भावों में डूबकर एकरस (ओत—प्रोत) हो पाती है और परमधाम की इस अनुपम शोभा का रसपान करती है।

भावार्थ— आत्मा के अन्तःकरण में जब युगल स्वरूप की छवि बस जाती है तो वह स्वयं को परात्म से अभिन्नता का अनुभव करती है। उसे अपने धाम हृदय में ही सम्पूर्ण परमधाम सहित युगल स्वरूप का अनुभव होने लगता है।

ए जोत में सोभा सुन्दर, देखिए हिरदे में आन ।

भर भर प्याले पीजिए, देख केहे सुन कान ॥५१॥

हे साथ जी! नूरमयी ज्योति में विराजमान युगल स्वरूप की इस सुन्दर शोभा को अपने धाम—हृदय में लेकर अपनी प्रेम भरी आत्मिक दृष्टि से उनका दर्शन कीजिए, आत्मिक रसना से प्रेम भरी बातें कीजिए और अपने आत्मिक कानों से उनकी अमृत से भी मीठी बातों को सुन—सुनकर प्रेम के प्याले भर—भर कर पीजिए।

प्रकरण ८

अब कहूं मैं ताल की, अन्दर आए सको सो आओ ।

जो होवेरुह अर्स की, फेर ऐसा न पावे दाओ ॥१॥

हे साथ जी! अब मैं हौज कौसर ताल की शोभा का वर्णन कर रही हूँ। आप में परमधाम की जो भी आत्मा है, वह चितवनि के द्वारा यदि इस हौज कौसर के अन्दर आकर सम्पूर्ण शोभा को देख सकती है, तो आए और इसका रसपान करे। पुनः आपको ऐसा सुनहरा अवसर नहीं मिलने वाला है।

भावार्थ— चितवनि का तात्पर्य ही है आत्म—दृष्टि से युगल स्वरूप सहित २५ पक्षों की शोभा को देखना या उसमें घूमना। मात्र ब्रह्मसृष्टि ही चितवनि में रुचि लेती है, जबकि ईश्वरी सृष्टि ज्ञान एवं जीव सृष्टि कर्मकाण्ड में लगी रहती है। इस चौपाई के तीसरे चरण से यही निष्कर्ष निकलता है। पुनः ऐसा अवसर न मिलने का आशय यह है कि जब स्वयं श्रीजी (अक्षरातीत) ही परमधाम की आत्माओं को हौजकौसर देखने का निर्देश कर रहे हों और सुन्दरसाथ उसकी अवहेलना करे, तो उससे अधिक मन्दभाग्य भला और कौन हो सकता है? सिन्धी ग्रन्थ का यह कथन 'जाए न बोलाए खसम की, सो औरत बेएतबार' भी इसी सन्दर्भ में है।

चारों तरफों कुण्ड ज्यों, इत देत खूबी अति जल ।

हाए हाए ए बात करते मोमिन, रुह क्यों न जात उत चल ॥६०॥

यहां यमूना जी का जल चौरस कुण्ड के समान दृष्टिगोचर हो रहा है। चारों ओर देखने पर

इस जल की बहुत ही विशेष शोभा दिखायी देती है। हाय! हाय! वहां की शोभा का वर्णन करने पर भी ब्रह्मसृष्टियों की आत्मायें वहां प्रत्यक्षतः क्यों नहीं पहुँच पा रही हैं ?

भावार्थ— इस चौपाई में धाम धनी के द्वारा यह निर्देश दिया गया है कि परिक्रमा ग्रन्थ को मात्र चर्चनी के रूप में बुद्धि विलास का ही विषय न बनाया जाय, बल्कि उसे क्रियात्मक रूप में अपने जीवन में उतारा जाय अर्थात् अपने आत्म चक्षुओं से परमधाम के २५ पक्षों की शोभा को स्पष्ट रूप से देखा जाय। इस चौपाई के चौथे चरण से शरीर छोड़ने का भाव नहीं लेना चाहिए।

मोमिन होए सो देखियो, तुमारा दिल कह्या अर्स।

चारों घाट लीजो दिल में, दिल ज्यों होए अरस—परस।।७८।।

हे साथ जी! आप में जो भी परमधाम की आत्मा है, वह इन घाटों की शोभा को अवश्य ही देखे। आपके दिल (हृदय) को ही धाम कहा गया है, इसलिये अपने धाम हृदय में इन चारों घाटों की अनुपम शोभा को बसाइये, जिससे आपका यह दिल परात्म और धनी के दिल से एक रस (अरस—परस) हो जाय।

भावार्थ— इस चौपाई से यह पूर्णतया स्पष्ट हो रहा है कि ब्रह्मसृष्टियों के लिये चितवनि अनिवार्य है। अरस—परस का तात्पर्य है—एकरस एकाकार हो जाना या ओत—प्रोत हो जाना। जब आत्मा के धाम हृदय में धनी की शोभा बस जाती है तो वह परात्म से एकाकार हो जाती है। अर्थात् परात्म के दिल और आत्मा के दिल में कोई भी भेद नहीं रह जाता है। सागर ग्रन्थ प्र. ११/४४ में इसे इस रूप में दर्शाया गया है—

अन्तस्करन आतम के, जब ए रहयो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए।।

चितवनि की और गहराई में डूबने पर वह धनी के दिल से भी एकाकार (एकरस) हो जाती है।

प्रकरण ११

कई सुख हाँसी फरामोस के, कई हजूर सुख खिलवत।

कई सुख पसु पंखियन के, कई सुख मोहोलों बैठत।।७९।।

इस मायावी जगत् के खेल में होने वाली भूलों की अनेक प्रकार की हंसी होनी है, जिसका सुख परात्म में जागृत होने पर होगा। इसी प्रकार, इस खेल में जागृत होने पर खिलवत (मूलमिलावे) के सुखों का अनेक प्रकार से प्रत्यक्ष अनुभव होता है। परमधाम में पशु—पक्षियों की मनोहर क्रीड़ाओं के अनेकों प्रकार के सुख हैं। सभी सखियों का धनी के साथ रंगमहल के भिन्न—भिन्न स्थानों में बैठना भी अनेकों प्रकार के सुखों का रस देता है।

भावार्थ— चितवनि द्वारा मूल मिलावे में विराजमान युगल स्वरूप सहित सखियों की बैठक को प्रत्यक्ष रूप में देखना ही वहां के सुखों का अनुभव करना है।

प्रकरण १४

छात पांचमी पोहोंची पहाड़ लों, बड़े बंगले बड़ी दिवाल।

बड़े छज्जे चारों तरफों, सुख पाइए जो आवे हाल।।८०।।

बड़े-बड़े ये बंगले ऊँची-ऊँची दिवालों से युक्त हैं। इन बंगलों की पांचवीं छत (छठी भूमिका) के ऊपर बड़ोवन व फीलपायों की छत है, जिस पर पुखराजी ताल शुरु होता है। जिनके चारों तरफ बड़े-बड़े छज्जे निकले हैं। इनका सुख तो उसी को प्राप्त होता है जो परमधाम की रहनी में आकर अपनी आत्मिक नेत्रों से इन्हें देखता है।

भावार्थ— प्रेम में डूबकर युगल स्वरूप एवं परमधाम की चितवनि ही ब्रह्मसृष्टियों की करनी है, जिसकी पराकाष्ठा रहनी (हाल) कही जाती है।

प्रकरण १५

किनारे मोहोल जोए के, तुम मिल देखो मोमिन।

पाउ पलक न छोड़िए, अपना एही जीवन॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी! श्री यमुना जी के किनारे स्थित महलों की अनुपम शोभा को आप सभी मिलकर देखिए और इसे चौथाई पल के लिये भी अपनी आत्मिक दृष्टि से अलग न होने दीजिए, क्योंकि अपना वास्तविक जीवन यही है।

भावार्थ— इस चौपाई में चितवनि के लिये स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है। प्रेममयी चितवनि के बिना तो आत्म जागृति या आध्यात्मिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

प्रकरण १६

तुम देखो दिल में, अरवाहें जो अर्स।

हक देखावत नजरो, घड़नाले नेहेरें दस॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! आपको प्राणेश्वर अक्षरातीत मेरे हृदय में विराजमान होकर यमुना जी के दस घड़नालों से प्रवाहित होने वाले दस नहरों की शोभा को दिखा रहे हैं। आप में जो भी निजधाम की आत्मा है, वह अपने धाम हृदय में (चितवनि द्वारा) अवश्य देखे।

मेहेर करी मेहेबूब ने, मोहोल देखे ऊपर जोए।

ए सुख कहूं मैं किनको, मोमिन बिना न कोए॥२॥

प्रियतम अक्षरातीत ने मेरे ऊपर अपार मेहर की है, जिससे मैंने यमुनाजी के ऊपर बने हुए महल के समान शोभा वाले केल पुल तथा वट पुल को देख लिया है। प्रश्न यह है कि इस दर्शन (दीदार) का सुख मैं किससे कहूँ? ब्रह्मसृष्टियों के बिना तो इसे कोई सुन ही नहीं सकता।

भावार्थ—पूर्वोक्त दोनों (१, २) चौपाईयों में ब्रह्मसृष्टि की पहचान बतायी गयी है। परमधाम के ज्ञान एवं चितवनि के द्वारा उसके साक्षात्कार की कामना ब्रह्मसृष्टियों में ही होती है। जीव सृष्टि शरियत को छोड़कर हकीकत मारिफत की राह नहीं अपना पाती।

महामत कहे ए मोमिनो, ए सुख अपने अर्स के।

एक पलक छोड़े नहीं, भला चाहे आपको जे॥१८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! यमुनाजी के सातों घाटों एवं दोनों महलों आदि में क्रीड़ा करने के अनन्त सुख परमधाम के हैं। जो भी सुन्दरसाथ इस संसार में अपना भला चाहते

हैं, वे एक पल के लिये भी चितवनि द्वारा अपनी आत्मिक दृष्टि से यहां की शोभा को अलग न करें।

भावार्थ—इस चौपाई में प्रेममयी चितवनि की महत्ता को दृढ़ता पूर्वक निर्देशित किया गया है कि जो भी सुन्दरसाथ इस मायावी जगत में अपनी भलाई चाहता है अर्थात् माया के विकारों एवं दुखों से दूर रहकर आत्म-जागृति और प्रियतम का सुख चाहता है, उसे कभी भी चितवनि से अलग नहीं होना चाहिए।

प्रकरण १७

राज स्यामाजी साथ सों, खेलत हैं इन बन।

ए जो ठौर कहे सब तुमको, तुम जिन भूलो एक खिन॥१८॥

इन वनों में श्रीराजश्यामाजी सुन्दरसाथ के साथ अनेकों प्रकार की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करते हैं। आपसे मैंने जिन जिन स्थानों का वर्णन किया है, उसे एक क्षण के लिये भी मत भूलिये अर्थात् चितवनि द्वारा अपने धाम हृदय में बसाए रखिए।

महामत कहे सुनो साथ जी, खिन बन छोड़ो जिन।

या मंदिरों संग धनीय के, विलसो रात और दिन॥२१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! मेरी एक बात सुनिए। इन वनों की शोभा को अपने हृदय से एक क्षण के लिये भी अलग न होने दीजिए। परमधाम के इन मन्दिरों में अष्ट-प्रहर (दिन-रात) की होने वाली लीला में चितवनि द्वारा डूब जाइए और अखण्ड आनन्द का रसपान कीजिए।

भावार्थ—यद्यपि परमधाम में लीला तो दिन-रात अनवरत चलती ही रहती है, किन्तु इस मायावी जगत में निद्रा-भोजन तथा अन्य कार्यों में ब्रह्मलीला का निरन्तर रसास्वादन केवल आत्मिक धरातल पर ही लिया जा सकता है। जीव के हृदय में दिन-रात उसका अनुभव होते रहना सम्भव नहीं है। आत्मा जब परात्म का श्रृंगार सजकर युगल स्वरूप और परमधाम की शोभा या अष्ट प्रहर की लीला को आत्मसात् कर लेती है तो वह उसके धाम हृदय में हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है और आत्मा निरन्तर उस आनन्द का रस पान करती रहती है। जीव को केवल चितवनि में ही आनन्द मिलता है। इस चौपाई में कथित 'विलसों रात और दिन' का यही आशय है। इस चौपाई में प्रेममयी चितवनि के लिय स्पष्ट आदेश दिया गया है।

प्रकरण २२

हकें सुख अर्स देखाइया, इलम दे करी बेसक।

हम क्यों रहें इन मासूक बिना, जो कछूए होए इस्क॥२२॥

हे साथ जी! धाम धनी ने तारतम वाणी के ज्ञान से हमें पूर्णतया संशय रहित कर दिया है तथा परमधाम के अखण्ड सुखों की पहचान करायी है। यदि, हमारे अन्दर अपने प्रियतम के प्रति थोड़ा सा भी प्रेम हो तो हम इस मायावी संसार में भला कैसे रह सकते हैं?

भावार्थ—श्रीराजजी से प्रेम हो जाने पर संसार में मन लगता ही नहीं। वह केवल युगल स्वरूप एवं पच्चीस पक्षों की शोभा में लग जाता है। इसी को संसार का परित्याग करना कहते हैं। यहां

शरीर छोड़ने का प्रसंग नहीं है 'लगी वाली कछु और ना देखे, पिण्ड ब्रह्माण्ड वाको है री नाही' का कथन इसी सन्दर्भ में है।

इन मोहोल सुख रूहों के, और सुख घाटों चार।

हाए हाए क्यों जाए हमें रात दिन, ए सुख बैठी रूहें हार॥१३॥

हौज कौसर ताल के टापू महल तथा चारों घाटों की लीला में ब्रह्मात्माओं का अपार सुख विद्यमान है। हाय! हाय! हमारा दिन-रात का समय माया में क्यों बीता जा रहा है? इसी कारण तो हम परमधाम के सुखों को प्राप्त नहीं कर पा रही हैं।

भावार्थ—जो जिसका चिन्तन करता है, वह उसी को प्राप्त हो जाता है। युगल स्वरूप एवं पच्चीस पक्षों की प्रेममयी चितवनि ही हमें परमधाम के सुखों का रसास्वादन करा सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

याद करों सुख हाँसीय के, के याद करों सुखपाल।

के याद करों तले मोहोल के, हाए हाए अजूं ना बदलत हाल॥१६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! आप परमधाम की उन लीलाओं को याद कीजिए कि आप किस प्रकार धाम धनी के साथ प्रेममयी हंसी की लीला करते थे? किस प्रकार सुखपालों में बैठकर धनी के साथ भ्रमण करते थे और किस प्रकार पाल के अन्दर के महलों में आनन्दमयी लीला में संलग्न रहते थे? यदि, याद करने पर भी हमारी स्थिति नहीं बदलती अर्थात् संसार से हमारा ध्यान हटकर परमधाम में नहीं लगता तो हाय! हाय! यह आत्ममन्थन का विषय है ऐसा क्यों हुआ?

भावार्थ—इस चौपाई में एक बहुत ही गहन रहस्य को रेखांकित किया गया है। परमधाम की शोभा या लीला का बौद्धिक रूप से चिन्तन करना (याद करना) चर्चनी है, जबकि प्रेममयी अवस्था में उसमें खो जाना चितवनि है। उसमें बुद्धि की कोई भी क्रियाशीलता नहीं रहती। इस चौपाई में यही बात स्पष्ट की गयी है कि प्रेममयी चितवनि में डूबने पर ही हमारी (यहां की) रहनी (हाल) परमधाम की रहनी जैसी होने की राह पर अग्रसर हो सकती है। बौद्धिक चिन्तन तो केवल कथनी का विषय है। यह हमें ईमान पर खड़ा तो कर सकता है, किन्तु परमधाम के प्रेम में स्पष्टतः नहीं डुबा सकता।

प्रकरण २६

सो परत बीच ले कुंड में, इत चारों तरफों देहेलान।

ए सुख कब हम लेयसी, इन मेले साथ मेहेरबान॥१०॥

ये १६ धारायें बीच में कुण्ड (अधबीच के कुण्ड) में गिरती हैं। इसके चारों ओर दहलानें हैं। यहां बैठकर हम सभी सखियां इन धाराओं की मधुर कर्णप्रिय गर्जना व सुंदर दृश्य का आनन्द लिया करती थीं। हे धनी ! आप तो प्रेम के सागर हैं। हम आपके साथ पुनः कब उस सुख का रसास्वादन इस संसार में करेंगी ?

भावार्थ—वैसे दहलानें तो पश्चिम में ही हैं किन्तु चारों ओर बड़े वन के वृक्ष आये हैं, जिनकी

चारों भूमिकाओं की डालियां छज्जों के रूप में अधबीच के कुण्ड तक छाई हुई हैं। इन्हें ही दहलान कहा गया है। परमधाम में लीला का साक्षात् विलास है किन्तु इस संसार में उसका रसपान मात्र प्रेममयी चितवनि के द्वारा ही सम्भव है। इस चौपाई में यही बात दर्शाई गयी है।

प्रकरण २६

लेत सोभा अर्स जिमिएं, जब साहेब होत अस्वार।

ए जिन देख्या सो जानहीं, औरों पोहोंचे नहीं विचार।।६२।।

जब स्वयं श्रीराजजी पशु-पक्षियों पर सवारी करते हैं, उस समय परमधाम की धरती की शोभा ही अनुपम होती है। इस शोभा को जिसने प्रेममयी चितवनि की गहराइयों में डूबकर देखा है, एकमात्र वही जानता है। दूसरे तो इसके बारे में सोच भी नहीं सकते।

भावार्थ—जिन सुन्दरसाथ की यह मान्यता है कि श्री राजश्यामाजी या परमधाम को देखना सम्भव नहीं है, उनके लिये इस चौपाई में बहुत कुछ कह दिया गया है। आवश्यकता है निष्पक्ष हृदय से अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनने की।

मैं तुमें कहूं मोमिनो, देखो दिल लगाए।

ऐसी साहेबी खसम की, जो रुह देख सुख पाए।।७८।।

हे साथ जी! मैं आप से जो बात कह रही हूँ, उसके विषय में दिल लगाकर (ध्यान से) विचार कीजिए। प्रियतम श्री राज जी का स्वामित्व अनुपम है। जो भी आत्मा उसका अनुभव करेगी, वह निश्चय ही आनन्द का रसपान करेगी।

भावार्थ—युगल स्वरूप एवं सखियों सहित परमधाम के २५ पक्षों की शोभा तथा लीला ही धनी का स्वामित्व है जिसका ज्ञान तारतम वाणी के द्वारा हो जाता है। चितवनि में उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है, जिसका सुख शब्दों से परे है। इस चौपाई में यही बात दर्शाई गयी है।

प्रकरण ३०

पेहेले किया बरनन अर्स का, रुह अल्ला का केहेल।

अब चितवन सें केहेत हों, जो देत साहेदी अकल।।९१।।

अब तक मैंने परमधाम का जो भी वर्णन किया है, वह सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र पहले कह चुके हैं। अब चितवनि में डूबकर अपनी बुद्धि की साक्षी से निजधाम की शोभा का वर्णन कर रही हूँ।

भावार्थ—यदि इस चौपाई के शब्दों के बाह्य अर्थ के आधार पर ऐसा कहा जाय कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारविन्द से श्री मिहिरराज जी ने जो सुन रखा था, वही इस परिक्रमा ग्रन्थ में अब तक वर्णित किया गया है तथा अब जो कुछ भी कहा जा रहा है, वह स्वयं श्री महामति जी साक्षात् देख कर कह रहे हैं, तो ऐसा कहना अनुचित है। यदि श्री मिहिरराज जी सुना हुआ ज्ञान ही अब तक कह रहे हैं, तो यह श्री मिहिरराज जी की वाणी हो जायेगी। ऐसी अवस्था में प्रकाश ग्रन्थ के इन कथनों का आशय क्या होगा ?

आ वचन मेहराजें प्रगट न थाय। प्र. गु.४/१४

ए वचन महामति से प्रगट न होए। प्र. हि.४/१४

मेरी बुधें लुगा न निकसे मुख, धनी जाहेर करें अखंड घर सुख। प्र. हि.२६/७

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि दोनों तनों (श्री देवचन्द्र जी तथा श्री मिहिरराज जी) के अन्दर विराजमान होकर श्रीराजजी ने ही परमधाम का ज्ञान दिया है। इसलिये कथनों में समानता होने के कारण ही यह बात कही जा रही है कि अब तक आपने परमधाम का यह जो भी वर्णन सुना है, वह सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी पहले कह चुके हैं।

चितवनि से देखकर कहने का आशय यह है कि जिस शोभा का वर्णन किया जा रहा है, उसे चितवनि में श्री महामति जी की आत्मा प्रत्यक्ष रूप से देख अवश्य रही है, किन्तु कहने वाले स्वयं अक्षरातीत श्रीराजजी (श्री प्राणनाथ जी) हैं। कि. ७६/७५ का यह कथन इस तथ्य पर प्रकाश डालता है—

महामत कहे सुनो साथ, देखो खोल बानी प्राणनाथ।

धनी ल्याए धाम से वचन, जिनसे न्यारे न हो चरन॥

हिरदे बैठ केहेलाया रास, पेहेले फेरे के दोऊ किए प्रकास॥ प्र.४/१८

स्पष्ट है कि श्रीमुखवाणी का प्रत्येक शब्द धाम धनी के आवेश से कहा गया है। इसलिये इसे ब्रह्मवाणी की शोभा प्राप्त है। यदि सुनकर पुनः उसे मन-बुद्धि के धरातल पर दोहरा दिया जाय तो तारतम्य वाणी 'सन्त वाणी' कहलायेगी जिसे कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

प्रकरण ३१

और जो झरोखे गिरदवाए के, तिनही के सरभर।

एता ऊंचा जिमी से, देखें हुकमें रुहें नजर॥३३॥

और दहलान के आगे किनार पर जो झरोखें हैं, वे भी दहलान व चौक के बराबर लम्बे-चौड़े और जमीन से उतने ही ऊँचे हैं। इस शोभा को धाम धनी के हुक्म से ब्रह्मसृष्टियाँ अपनी आत्मिक दृष्टि से देखती हैं।

ए रुह की आंखों देखिए, असल बका के तन।

तो देखो चित्रामन धाम की, करत निरत सबन॥७२॥

हे साथ जी! परमधाम में विद्यमान अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर आप अपनी आत्मिक दृष्टि से यदि इस नृत्य लीला को देखें तो आपको यह दिखायी देगा कि परमधाम के चित्ररूपी सभी स्वरूप ही इस नृत्य में संलग्न हैं।

भावार्थ—इस चौपाई के दूसरे चरण से ऐसा भाव नहीं लेना चाहिए कि हमें परात्म की दृष्टि से परमधाम दिखायी देगा। परात्म इस समय फरामोशी में है और वहदत में होने से सबकी फरामोशी एक साथ ही समाप्त होगी। वस्तुतः इसका भाव यह है कि हम अपने इस पंचभौतिक तन को भूलकर परात्म का श्रृंगार सजें।

‘जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम लेय के, विलसिए संग खसम॥ सागर ७/४१ का कथन यही सिद्ध करता है। इस जागनी लीला में मात्र आत्मिक दृष्टि से ही देखा जा सकता है, परात्म से नहीं।

प्रकरण ३२

सिफत हक सूरत की, क्यों न आवे जुबांए।

कछू लज्जत तो पाइए, जो आवे फैल हाल माहें॥५५॥

अक्षरातीत श्रीराजजी की शोभा का यथार्थ वर्णन तो इस जिह्वा से किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता, किन्तु यदि हम कथनी को करनी और रहनी में रूपान्तरित कर लें तो उनकी अद्वितीय शोभा का अनुभव (रसास्वादन) हो सकता है।

भावार्थ—‘करनी’ का तात्पर्य है ‘प्रेममयी चितवनि की राह पर चलना’ और ‘रहनी’ से आशय है ‘प्रेम में इस प्रकार डूब जाना कि शरीर और संसार की कोई सुध न रहे’।

सोभा सुन्दरता जात की, एक हक जात सूरत।

अंतर आंखें खोल तू अपनी रूह की इत॥५७॥

श्यामाजी सहित सभी सखियों की शोभा सुन्दरता एक समान है। हे मेरी आत्मा! इस जागनी लीला में अब तू अपनी अंतर्दृष्टि खोल ले।

भावार्थ— इस चौपाई में अपनी आत्मिक दृष्टि को खोलने के लिये प्रेरित किया गया है, जिससे अपनी परात्म को देखा जा सके और जागनी के स्वर्णिम लक्ष्य को पाया जा सके।

रहे ठाढ़ी इन जिमी पर, देख अपना खसम।

देख मिलावा अर्स का, और देख अपनी रसम॥५८॥

भले ही तू इस मायावी जगत् में आयी है, लेकिन अपनी आत्मिक दृष्टि से तू अपने प्राणवल्लभ को देख। रंगमहल के मूल मिलावे में विराजमान सभी सखियों की परात्म के तनों तथा अष्ट प्रहर की लीला को भी देख।

भावार्थ— इस चौपाई में प्रेममयी चितवनि करने के लिये स्पष्ट निर्देश दिया गया है। इसलिये अब सुन्दरसाथ को किसी भी प्रकार का बहाना बनाने का अवसर नहीं मिल सकता कि जब धाम धनी का आदेश होगा, तब चितवनि करेंगे या चितवनि करने पर जब शरीर ही छूट जायेगा तो हम चितवनि क्यों करे ?

जब केहेनी आई अंग में, तब फैल को नाहीं बेर।

फैल आए हाल आइया, लेत कायम रोसनी घर॥७३॥

जब हृदय में परमधाम की शोभा तथा लीला का ज्ञान आ जाता है तो चितवनि (करनी) की ओर उन्मुख होने (लग जाने) में देर नहीं लगती। युगल स्वरूप तथा परमधाम की चितवनि में लगे रहने पर प्रेममयी अवस्था (रहनी) आ जाती है, जिससे आत्मा को अखण्ड सुखों का अनुभव होने लगता है (अखण्ड का प्रकाश आ जाता है)।

प्रकरण ३३

अब देखो अन्दर अर्स के, रूहें बैठी बारे हजार।

उतरी लैलत—कदर में, खेल देखन तीन तकरार॥९॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! अब आप अपनी आत्मिक दृष्टि से रंगमहल के मूल—मिलावे में देखिए, जहां बारह हजार ब्रह्मात्मायें बैठी हुई हैं। वे ब्रज, रास तथा जागनी लीला को देखने के लिये इस मायावी जगत् में सुरता से आयी हुई हैं।

इन ठौर ए मिलावा, जिन जुदी जाने आप।

इतहीं तेरी कयामत, याही ठौर मिलाप॥२१॥

हे मेरी आत्मा! तू इस मूल—मिलावे में ही अपने प्राणप्रियतम के सम्मुख बैठी हुई है। तू अपने को धाम धनी और मूलमिलावे से अलग न मान। इसी मूल—मिलावे में तेरी आत्म जागृति का अखण्ड सुख विद्यमान है और इसी में तुझे अपनी आत्मिक दृष्टि से श्री राजश्यामाजी से मिलना (दर्शन करना) भी है।

हक हादी इतहीं, इतहीं असलू तन।

खोल आंखें इत रुह की, एह तेरा बका वतन॥२२॥

श्रीराजश्यामाजी इसी मूलमिलावे में बैठे हैं। तेरा मूल तन भी यहीं है। तू अपनी आत्मिक दृष्टि खोलकर जरा देख तो यह परमधाम ही तेरा अखण्ड घर है।

भावार्थ—यह ध्रुव सत्य है कि आत्म जागृति के लिये हमारी सुरता की दृष्टि का मूलमिलावे में पहुँचना अनिवार्य है, किन्तु जब हमारी आत्मिक दृष्टि खुल जाती है तो हमें अपनी आत्मा के धाम हृदय में ही मूल—मिलावे सहित सम्पूर्ण परमधाम नजर आने लगता है। ‘ऊपर तले अर्स न कह्या, अर्स कह्या मोमिन कलूब’ का कथन यही सिद्ध करता है। श्रृंगार ग्रन्थ २३/७६ के दूसरे प्रकरण में इस विषय पर बहुत गहरा प्रकाश डाला गया है।

ए ठौर नजर में लीजिए, लगने न दीजे पल।

कौल फैल या हाल सों, देख हक हांसी असल॥२३॥

हे साथ जी! मूल—मिलावे की ओर अपनी दृष्टि कीजिए। इस महान कार्य में अब एक पल की भी देरी न कीजिए। अपनी कथनी, करनी या रहनी की दृष्टि से मूल मिलावे में सिंहासन पर विराजमान श्रीराजजी की वास्तविक हंसी को देखिए कि वे किस प्रकार हमारी भूलों पर हंसी कर रहे हैं।

भावार्थ—हमारे मुख से निकले हुए शब्दों में जब केवल सिंहासन पर विराजमान श्रीराजश्यामाजी ही होते हैं तो इसे ‘कथनी’ की दृष्टि से देखना कहते हैं। चितवनि में युगल स्वरूप को लक्ष्य करना ‘करनी’ की दृष्टि से देखना है तथा प्रेममयी चितवनि की गहन स्थिति में युगलस्वरूप के मुस्कराते हुए मुखारविन्द को देखना ‘रहनी’ की दृष्टि से देखना है।

इत देख फेर फेर तूं अपनी रुह की आंखां खोल।

कर कुरबानी आपको, आए पोहोंच्या कयामत कौल॥२४॥

हे मेरी आत्मा! अब तू अपनी आँखें (अन्तर्दृष्टि) खोल और अपने प्राणेश्वर को बार—बार देख। धनी के प्रेम में अपने अस्तित्व को तू मिटा दे। धनी द्वारा तेरी आत्म—जागृति की पुकार हो रही है अर्थात् श्रीराजजी तुझे जागृत होने के लिये पुकार रहे हैं।

ए हांसी करी हक ने, फरामोसी की दे।

क्यों न विचारें आपन, ए तरंग इस्क के॥२५॥

धाम धनी ने हमें माया की नींद में डालकर हमारे ऊपर हंसी की यह विचित्र लीला की है, जिस मूलमिलावे की चितवनि (ध्यान) से हमारे अन्दर इश्क की तरंगें आती हैं, उसके विषय में हम क्यों नहीं विचार रहे अर्थात् हम चितवनि के मार्ग पर क्यों नहीं चल रहे?

प्रकरण ३४

विवेक कर जब देखिए, तब पाइए फूल पांखड़ी पात।

कई जिनसें जुगतें कांगरी, नूर आगे देखी न जात॥४७॥

यदि आप चिन्तन की गहराइयों से देखें तो आपको फूलों, पंखुड़ियों तथा पत्तियों की अलौकिक शोभा दिखायी पड़ती है। इनमें कई प्रकार की आकृति वाली कांगरी भी बनी है, जो अत्यधिक ज्योति के कारण दिखायी नहीं पड़ रही थी।

भावार्थ—इस चौपाई में एक बहुत ही गहन रहस्य की ओर संकेत किया गया है। इस चौपाई के प्रथम चरण में बौद्धिक धरातल पर शोभा देखने का प्रसंग नहीं है, क्योंकि चितवनि की गहराइयों में लौकिक बुद्धि का कोई उपयोग नहीं होता। मात्र आत्म-दृष्टि के द्वारा प्रेममयी भावों में ही परमधाम की शोभा को देखा जाता है। इस चौपाई में प्रेममयी चितवनि की उस गहन अवस्था का वर्णन किया गया है। जब हमारी आत्मिक दृष्टि किसी शोभा विशेष पर केन्द्रित हो जाती है और जब तक शोभा में गहराई तक प्रवेश नहीं कर जाती, तब तक अन्यत्र दृष्टि नहीं करती।

प्रकरण ३५

खोल आंखें रूह नूर की, क्यों नूर न देखे बेर बेर।

क्यों न आवे बीच नूर के, ज्यों नूर लेवे तोहे घेर॥१०॥

हे मेरी आत्मा! अब तू अपनी मनोहर आंखों को खोल, तू परमधाम की इस नूरमयी शोभा को बार-बार क्यों नहीं देख रही है? तू मायावी जगत को छोड़कर इस नूरी धाम में क्यों नहीं आ जाती, जहाँ तेरे चारों ओर नूर ही नूर घिरा (फैला) हुआ है?

भावार्थ—परात्म का स्वरूप नूरमयी है। यद्यपि इस संसार में परमधाम का नूर नहीं आ सकता, क्योंकि 'इस अर्स की एक कंकरी, उड़ावे चौदे तबक॥' श्रु. २१/३६ आत्मा प्रतिबिम्ब है परात्म की, इसलिये आत्मा के नेत्रों को अति सुन्दर (नूरमयी) कहा गया है। इस चौपाई में स्वयं के प्रति कथन करके श्री महामति जी ने सब सुन्दरसाथ को अपने आत्मिक नेत्रों को खोलने का निर्देश दिया है।

नूर कहे महामत रूहें, देखो नजरों नूर इलम।

वाहेदत आप नूर होए के, पकड़ो नूरजमाल कदम॥३१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! आप तारतम ज्ञान की दृष्टि से परमधाम को देखिए तथा अपनी नूरी परात्म का श्रृंगार सजकर चितवनि द्वारा धनी को अपने धाम हृदय में बसा लीजिए (पकड़ लीजिए)।

भावार्थ—परात्म के सभी तनों में वहदत (एकत्व) है। इस चौपाई के तीसरे चरण में स्वयं को नूर वहदत के रूप में मानने का भाव यह है कि इस पंचभौतिक शरीर, संसार और जीवभाव से अलग होकर स्वयं को परात्म स्वरूपा मानना। इस भाव में भावित होकर एकमात्र प्रेममयी चितवनि के द्वारा ही उस प्रियतम के स्वरूप (चरण—कमलों) को अपने धाम हृदय में बसाया जा सकता है।

प्रकरण ३७

कहे आमर नूर अर्स का, ए जो अर्स नूरजमाल।

दिल अर्स मोमिन नूर का, नूर सुनके बदले हाल॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि श्रीराजजी का हुक्म (आवेश स्वरूप) मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर रंगमहल की नूरी शोभा का वर्णन कर रहा है। ब्रह्मात्माओं का प्रेम भरा हृदय (दिल) ही धनी का धाम होता है। इस नूरी शोभा का वर्णन सुनकर ब्रह्मसृष्टियों की अवस्था (रहनी) बदल जाती है अर्थात् उनकी दृष्टि संसार से हट कर परमधाम एवं श्रीराजजी में केन्द्रित हो जाती है।

नूर द्वार दोऊ ओर बराबर, नूर द्वार सीढ़ी दोए तरफ।

नूर छे चौक आगूं देहरी, रूहें नूर देखें तो बोलें ना हरफ॥४१॥

दहलान के दोनों ओर ६ मन्दिरों के पश्चिम दिशा के जो द्वार हैं, उनके सामने चांदों से दोनों ओर सीढ़ियां उतरी हैं। इन ६ मन्दिरों के चौक के आगे (हांसों की संधि की जगह में) गुर्ज हैं। जिनके ऊपर दसवीं चांदनी में देहरी बनती है। यहां की शोभा इतनी अनुपम है कि यदि आत्मायें इसे देख लें (चितवनि के द्वारा) तो उनके मुख से कहने के लिये एक शब्द भी निकल नहीं सकता है क्योंकि यह शोभा ही अनन्त है।

ए छे नूर द्वार दाएँ बाएँ, नूर दोऊ तरफों तीन तीन।

ए रूहें देखें नूर विवेक, जो देवे हुकम नूर आकीन॥४२॥

दहलान के दायें—बायें (मंदिरों की पश्चिम दिशा की दीवाल में) ६ द्वार हैं। दोनों ओर ३—३ द्वार आये हैं। धामधनी के आदेश (हुक्म) से यदि इस अद्वितीय शोभा के प्रति अटूट विश्वास आ जाता है, तो ब्रह्मसृष्टियां प्रेममयी चितवनि द्वारा इसे देख सकती हैं।

भावार्थ—इस चौपाई के तीसरे चरण में 'विवेक' शब्द का तात्पर्य बुद्धिजन्य विवेक नहीं मानना चाहिए, बल्कि धामधनी की प्रेममयी चितवनि में आत्मा के अन्दर जो ज्ञान का प्रकाश आता है, उसे ही यहां विवेक कहा गया है।

नूर खेलत नूर देखत, और नूरै नूर बरसत।

रूहें आइयां जो इत नूर से, सो नूर नूरै को दरसत॥४३॥

नूरी स्वरूप वाली नवरंग बाई नृत्य की क्रीड़ा करती है, जिसे श्रीराजश्यामाजी और सखियां देखते हैं। इस नृत्य की लीला में प्रेम और आनन्द की बरसात होती है। परमधाम से जो भी आत्मायें इस मायावी जगत में आयी हैं, वे प्रेममयी चितवनि में डूबकर परमधाम की शोभा को देखा करती हैं।

प्रकरण ३८

तो भी नेक केहेना साथ कारने, माफक जुबां इन बुध।

अद्वैत अखण्ड पार की, करूं साथ के हिरदे सुध॥३॥

फिर भी, सुन्दरसाथ की आत्म जागृति के लिये इस जिह्वा तथा बुद्धि के अनुकूल थोड़ा बहुत तो कहना ही होगा। सुन्दरसाथ के हृदय को शुद्ध करने के लिये मैं बेहद से भी परे स्वलीला अद्वैत परमधाम के रंगमहल की शोभा एवं लीला का वर्णन कर रही हूँ ?

भावार्थ— जब सुन्दरसाथ के हृदय में परमधाम की शोभा एवं लीला का ज्ञान बस जायेगा तो वे माया का ध्यान छोड़कर परमधाम के ध्यान में लग जायेंगे और मायावी विकारों से अपनी रक्षा कर लेंगे। इस चौपाई के चौथे चरण में हृदय को शुद्ध करने का यही आशय है।

प्रकरण १३

जो कोई होसी अंग अर्स की, और जागी होए हक इलम।

तो कछू बोए आवे इन सहूर की, जो करे मदत हक हुकम॥३८॥

सुन्दरसाथ के समूह में जो कोई परमधाम की आत्मा हो, तारतम वाणी के ज्ञान से जागृत हो गयी हो तथा धनी का हुक्म (आदेश) भी उसकी सहायता कर रहा हो तो उसे यहां की शोभा को आत्म-दृष्टि से देखने की कुछ सुगन्धि मिल सकती है अर्थात् कुछ अनुभव हो सकता है।

भावार्थ— मानसिक एवं बौद्धिक दृष्टि से सहूर का तात्पर्य चिन्तन, मनन एवं विवेचन से है, जबकि आत्मिक दृष्टि से सहूर का भाव आत्मिक दृष्टि से देखने से है।

प्रकरण ४४

देखो महामत मोमिनो जागते, जो हक इलमें दिए जगाए।

करे सो बातें हक अर्स की, तूं पी इस्क तिनों पिलाए॥४४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! यदि आप धामधनी की तारतम वाणी से जागृत हो गये हैं तो अपने हृदय में प्रेम भरकर अपने प्रियतम को और अपने परमधाम को अवश्य देखिए। अब आप केवल धामधनी और परमधाम की ही बातें करें, संसार की नहीं। हे मेरी आत्मा! तू अपने प्राणवल्लभ की प्रेममयी अमृतधारा का पान कर और ज्ञान दृष्टि से जागृत हुए सुन्दरसाथ को भी प्रेम का रसास्वादन करा।

सागर

प्रकरण १

चौसठ थंभ चबूतरा , दरवाजे तखत बरनन।

रूह मोमिन होए सो देखियो, करके दिल रोसन॥२॥

मूल मिलावे में कमर भर ऊँचा चबूतरा है, जिसके किनारे पर चौसठ थम्भों (स्तम्भों) की शोभा आयी है। चबूतरे के मध्य में सिंहासन है तथा मन्दिरों में दरवाजे सुशोभित हैं। जो भी ब्रह्मसृष्टि हो, वह तारतम वाणी से अपने दिल में ज्ञान का उजाला करे और प्रेम भर कर ध्यान (चितवनि)

द्वारा वहां की शोभा का दीदार करे।

भावार्थ— रंगमहल की प्रथम भूमिका (मंजिल) में चार चौरस हवेलियों को पार करने के पश्चात् पांचवी हवेली गोलाकार आती है, जिसे मूल-मिलावा कहते हैं। इस हवेली में ६० मन्दिरों की एक हार तथा ६४-६४ थम्भों की तीन हारें आयी हैं। इस हवेली में अति सुन्दर दरवाजे शोभायमान हैं। चबूतरे के मध्य में तख्त (सिंहासन) है, जिस पर युगल स्वरूप विराजमान हैं।

प्रकरण ३

लेहेरी सुख सागर की, लेसी रुहें अर्स।

याके सरूप याको देखसी, जो हैं अरस परस॥१॥

रुहों की शोभा का यह सागर सुख का सागर है। इसकी लहरों का रस मात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टियां ही लेंगी। आत्मायें ही अपने मूल तन से अरस परस (एकाकार) हैं और एक मात्र वे ही अपने मूल तन (स्वरूप) को देख सकेंगी।

भावार्थ— परात्म को अपने धाम धनी से जो सुख मिलता है, वह सागर के समान है और आत्मा अपने मूल तन की शोभा को ध्यान द्वारा देखकर जो आनन्द प्राप्त करती है वह लहर के समान है। दूसरे शब्दों में परात्म धनी का तन होने से सुख का सागर भी कहा जाता है। एक मात्र ब्रह्मसृष्टि ही अपने मूल तन को देख सकती है, अन्य कोई दूसरा नहीं। इस सम्बन्ध में सागर ग्रन्थ १४/२७ का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है—

ए जो सरूप निसबत के, काहू न देवें देखाए।

बदले आप देखावत, प्यारी निसबत रखें छिपाए॥

उनों अंतर आंखें तब खुलें, जब हम देखें वह नजर।

अदर चुभे जब रुह के, तब इतहीं बैठे बका घर॥३॥

जिस तरह से हमारी परात्म पहले श्री राज जी को देखती रही है, उसी प्रकार हमारी आत्मा भी जब धाम धनी को देखने लगे तो हमें यहीं बैठे— बैठे परमधाम की अनुभूति होने लगेगी और हमारी परात्म की अन्तर्दृष्टि भी खुल जायेगी अर्थात् वह जागृत हो जायेगी।

भावार्थ— इस चौपाई के कथन पर यह संशय होता है कि जब श्री मुखवाणी क० हि० २३/२६ में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि 'पौढ़े भेले जागसी भेले, खेल देख्या सबों एक।' अर्थात् परात्म में जागृति सभी की साथ में ही होनी है तो यहां पर यह क्यों कहा गया है कि जिसकी आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी की छवि बस जायेगी, उसकी परात्म में जागृति हो जायेगी।

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि यह तो शाश्वत सत्य है कि परमधाम में वहदत होने के कारण सबकी परात्म में जागृति एक ही साथ होनी है, किन्तु यहां सामूहिक रूप में यह बात दर्शायी गयी है कि जब आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी का साक्षात्कार हो जायेगा, तभी परात्म में जागृति हो सकेगी।

इस खेल में सभी आत्माओं की जागृति धीरे धीरे क्रमशः हो रही है। जो भी आत्मा जागृत हो जाती है, वह यहीं बैठे-बैठे परमधाम के सुखों का रसपान करती है, किन्तु उसकी परात्म पर

फरामोशी का आवरण तब भी पड़ा ही रहता हैं। अपने पंचभौतिक तन का त्याग करने के पश्चात् वह सूक्ष्म शरीर से गुम्मत जी में श्री जी के चरणों में रहकर परमधाम के आनन्द का रसपान करती हैं। इस सम्बन्ध में छो० क्या० १/८७ का यह कथन देखने योग्य है—

‘जो कदी वह आगे चली, जिमी बैठी वह जिमी मांहे।

पांचों पोहोंचे पाचों में, रूह अपनी असल छोड़े नांहे।।

खेल खत्म होने के बाद ही परात्म की जागनी हो सकेगी। उसके पहले केवल इतना ही हो सकेगा कि आत्मा जागृत होकर अपने मूल तन को देखेगी तथा परात्म धाम धनी के दिल रूपी परदे पर अपनी जागृत आत्मा की जागनी—लीला देखती रहेगी। इस तथ्य को सागर ११/४४ में इस प्रकार दर्शाया गया है—

अन्तस्करन आतम के, जब ए रहयो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए।।

प्रकरण ४

अब कहूं सागर तीसरा, मूल मेला बिराजत।

रूह की आंखों देखिए, तो पाइए इनों सिफत।।१।।

श्री महामति जी कहते हैं कि अब मैं तीसरे सागर ‘एक दिली’ (वहदत) का वर्णन कर रहा हूँ। परमधाम के मूल मिलावे में सभी सखियां विराजमान हैं। उनके दिल में एक रूपता है। यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से देखिए तो आपको इनके स्वरूप की महिमा का पता लगेगा।

इनों दिल सागर तीसरा, एक सागर सबों दिल।

देखो इनों दिल पैठ के, किन विध बैठियां मिल।।४।।

हे साथ जी! इनके दिल में बैठकर देखिए तो आप को यह विदित होगा कि इनका दिल वहदत का अनन्त सागर है, जिसे तीसरा सागर कहते हैं। इन सभी के दिल में वहदत का सागर लहरा रहा है। उसी के कारण ये सभी एक स्वरूप होकर बैठी हैं।

भावार्थ — दिल में बैठने का तात्पर्य है अपनी आत्मा के दिल का तार (सम्बन्ध) उस दिल (परात्म के दिल) से जोड़ना। परात्म वहदत में हैं, इसलिये अपनी परात्म का भेद मिल जाने पर सभी की परात्म से अपना सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। वस्तुतः परात्म के भावों में डूब जाना ही परात्म का भेद पाना है। दिल में बैठना भी इसी सन्दर्भ में कहा गया है।

महामत कहें ए तीसरा,ए जो रूहों दिल सागर।

अब कहूं चौथा सागर, पट खोल देखो अन्तर।।३३।।

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! यह तीसरा सागर है, जो सखियों के दिल में स्थित एकदिली (वहदत) का सागर है। अब मैं चौथे सागर (युगल स्वरूप की शोभा और श्रृंगार) का वर्णन करने जा रहा हूँ। अब अपनी आत्मिक दृष्टि से इस सागर को हृद-बेहृद से परे परमधाम के मूल मिलावे में देखिए।

प्रकरण ५

हक खिलवत जाहेर करी, इत सिजदा हैयात ।

इतहीं इमाम इमामत, इतहीं महंमद सिफात ॥६१॥

अक्षरातीत श्री राज जी ने श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर ब्रह्मवाणी द्वारा मूल—मिलावे की सम्पूर्ण शोभा का वर्णन कर दिया। इसके पहले यह ज्ञान संसार में नहीं था। यहां पर किया हुआ प्रणाम (सिज्दा) अखण्ड होता है अर्थात् युगल स्वरूप सहित मूल—मिलावे की शोभा को दिल में बसाना ही वास्तविक प्रेम लक्षणा भक्ति है और इसी का फल अखण्ड होता है। आखरूल इमाम मुहम्मद महदी श्री प्राणनाथ जी का भी निर्देश इसी मूल मिलावे के ध्यान के लिये है तथा मुहम्मद साहिब ने भी अर्श (मूल मिलावे) के सिज्दे की महिमा गायी है।

भावार्थ— 'इमामत' का अर्थ नेतृत्व करना होता है। ब्रह्मसृष्टियों को जागृत करने के लिये श्री प्राणनाथ जी ने मूल मिलावे में ध्यान करने के लिये कहा है (निर्देश दिया है)। इसे ही इमाम की इमामत कहते हैं। श्री मुखवाणी का यह कथन 'अर्स बका पर सिजदा, करावसी इमाम' इसी ओर संकेत करता है। मुहम्मद साहिब ने कुरआन तथा हदीसों में एकमात्र अल्लाह तआला की ही बन्दगी का निर्देश दिया है, जो अर्श में विराजमान है। शरियत की नमाज भी जिस मस्जिद में पढ़ी जाती है, उसमें परमधाम के रंगमहल के मुख्य द्वार की मेहराबों की आकृति बनायी गयी होती है, जो अर्श पर सिज्दा करने का संकेत कर रही होती है।

कोई खाली न गया इन खिलवतें, कछू लिया हक का भेद ।

सो कहूं जाए ना सके, पड़्या इस्क के कैद ॥६२॥

मूल—मिलावे का ध्यान कभी भी निष्फल नहीं जाता। उस पर धनी की मेहर अवश्य होती है। जिसने भी श्री राज जी की कुछ भी शोभा अपने धाम हृदय में बसा ली होती है, वह कभी भी धनी को छोड़कर अन्यत्र (माया या देव पूजन में) नहीं जा सकता, क्योंकि वह तो अक्षरातीत के प्रेम में कैद हो गया होता है।

भावार्थ— श्री राज जी का भेद लेने का तात्पर्य होता है उनकी शोभा को दिल में बसा लेना। यहां दिल के भेद लेने का प्रसंग नहीं है। दिल के भेद केवल मारिफत की अवस्था में ही लिये जा सकते हैं। युगल स्वरूप का ध्यान ही माया से बचने एवं अपने अन्दर इश्क (प्रेम) पैदा करने का एकमात्र साधन है।

आसिक पकड़े जो दावन, तो छूटे नहीं क्योंकर ।

देखत देखत चीन लगे, तोलों जात निकस उमर ॥६३॥

धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली आत्मा जब जामे के दावन को देखती है, तो उसे देखते ही रह जाती है। उसे वह किसी भी तरह छोड़ नहीं पाती। यदि उसकी नजर चुन्नटों में लग जाती है तो वह उसमें इतनी खो जाती है कि यदि सारी उम्र देखती रहे तो भी उससे नजर हटा पाने की उसमें इच्छा नहीं होती।

भावार्थ— इस चौपाई के चौथे चरण का भाव सम्पूर्ण उम्र देखने से है। यहां शरीर छूटने का

प्रसंग नहीं है, बल्कि यह कहा गया है कि यदि सारी उम्र भी उस शोभा को देखने में लगा दिया जाय तो उससे हटने की इच्छा ही नहीं होगी। यद्यपि व्यवहारिक रूप में ऐसा सम्भव नहीं है कि कोई सम्पूर्ण उम्र बिना खाये, पिये और सोये केवल दीदार में ही लगा रहे, क्योंकि इस पंचभौतिक शरीर की एक सीमा हैं।

एकों पिया एक पीवत हैं , एक प्याले पीवेंगे।

खोल्या दरवाजा अर्स का , वास्ते अर्स अरवाहों के॥१०३॥

धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों के लिये परमधाम के प्रेम का दरवाजा खोल दिया है। कुछ अंगनाओं (आत्माओं) ने प्रेम के प्याले को पी लिया है, कुछ पी रहीं हैं और कुछ पीने वाली हैं।

भावार्थ— यद्यपि इस प्रेम रूपी प्याले का रसपान करने का सौभाग्य सबको प्राप्त है, किन्तु केवल ब्रह्मसृष्टियां ही उसका वास्तविक रसपान (शोभा श्रृंगार में डूबना) कर पाती हैं। ईश्वरी सृष्टि ज्ञान और भक्ति में लग जाती है तो जीव सृष्टि मात्र कर्म काण्ड को ही अपने जीवन का आधार समझ लेती हैं।

अंग आसिक उपले देख के ,इतहीं रहे ललचाए।

जो कदी पैठे गंज में, तो क्यों कर निकस्यो जाए॥१०४॥

धनी के प्रेम में डूबी हुई आत्मा प्रियतम के बाह्य अंगों की शोभा को देखकर पल—पल और अधिक आकर्षित होती जाती है। यदि वह श्री राज जी के दिल में बैठ गयी तो उस गंजानगंज इश्क के सागर से निकल पाना उसके लिये असम्भव (बहुत कठिन) होता है।

भावार्थ— यद्यपि परमधाम में अन्दर—बाहर एक ही तत्व है, किन्तु यहाँ के भावों से ऐसा समझना चाहिए कि बाह्य स्वरूप पर आकर्षित होने के बाद प्रेम बढ़ता है, किन्तु उस प्रेम का मूल हृदय (दिल) से जुड़ा होता है। हृदय में डूबे बिना प्रेम का वास्तविक रसपान सम्भव नहीं है। यद्यपि परमधाम में वहदत होने के कारण श्री राज जी के किसी भी बाह्य अंग की शोभा को दिल में बसाकर बैठाने (मारिफत) की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु यहां चौपाई का भाव यह है कि कभी भी धनी का दीदार होने के पश्चात् अपने प्रेम की झोली बन्द नहीं कर देनी चाहिए, बल्कि उनकी शोभा को पल—पल दिल में बसाते हुए अपनी प्यास बढ़ाते रहना चाहिए और धनी के दिल में डुबकी लगाकर सर्वोच्च मंजिल को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। इस चौपाई के दूसरे चरण में ललचाने का तात्पर्य और अधिक आकर्षित होने से है। जो वस्तु सुन्दर दिखायी देती है, उसे देखने की बारम्बार इच्छा होती है। इसी को इस चौपाई में ललचाना कहा गया है।

प्रकरण ६

ए चरन पुतलियां नैन की, सो मैं राखूं बीच तारन।

पकड़ राखूं पल ढांप के, मेरे जीव के एही जीवन॥८॥

मेरी यही चाहना है कि श्यामा जी के इन चरणों को अपने नेत्रों की पुतलियों के तारों में बसा लूं और पलकों से ढककर अन्दर ही पकड़े रखूं।

वस्तुतः ये चरण कमल ही तो मेरे जीवन के सर्वस्व हैं।

भावार्थ— इस चौपाई के गुह्य भाव में नैन परात्म का तन है तो पुतली आत्मा का स्वरूप। उसका दिल ही तारा है, जिसमें श्यामा जी के चरण कमलों को बसाना है। जिस प्रकार आंखों की पलकें बन्द कर लेने पर बाहर की वस्तुएं दिखायी नहीं पड़ती, उसी प्रकार आत्मा जब संसार से अपना ध्यान हटाकर युगल स्वरूप की शोभा की ओर मुड़ जाती है तो संसार से सम्बन्ध टूट जाता है। इस प्रकार पलकें आत्मा की इच्छा शक्ति की प्रतीक हैं।

सागर ७/४१ में कहा गया है कि—

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम लेय के, विलसिए संग खसम॥ सागर ७/४१

जब तक आत्मा (पुतली) अपनी दृष्टि संसार से हटाकर अपनी परात्म का श्रृंगार नहीं कर लेती, तब तक उसके तारा रूपी दिल में धनी की शोभा नहीं बस सकती।

मेरे मीठे मीठरड़े आतम के, सो चुभ रहे अन्तस्करन।

रूह लागी मीठी नजरों, मेरे जीव के एही जीवन॥६॥

ये चरण कमल मेरी आत्मा को बहुत ही मीठे (प्यारे) लगते हैं। उनकी मधुर छवि मेरे हृदय में बस चुकी है। अब मेरी आत्मा अपनी मधुर दृष्टि से इन चरणों की तरफ लग गयी है, क्योंकि ये चरण—कमल मेरे जीवन के आधार हैं।

ए चरन कमल अर्स के, इनसे खुसबोए आवे वतन।

ए तन बका अर्स अजीम, मेरे जीव के एही जीवन॥१०॥

ये नूरी चरण कमल परमधाम के हैं। इनके ध्यान (चितवनि) से निजघर की सुगन्ध का अनुभव होता है। उस अखण्ड परमधाम में श्यामा जी का वह नूरी तन विराजमान है, जिसके चरण मेरी आत्मा के आधार हैं अर्थात् उनके बिना मेरा कोई भी अस्तित्व नहीं है।

ए चरन निमख न छोड़िए, राखिए माहें नैनन।

ए निसबत हक अर्स की, मेरे जीव के एही जीवन॥११॥

हे साथ जी! इन चरणों को एक क्षण के लिये भी न छोड़िये। इन्हें अपनी आत्मा के दिल रूपी नेत्रों में बसा लीजिए। श्री राज जी की अर्धांगिनी श्यामा जी के इन चरणों से मेरा मूल सम्बन्ध तो परमधाम से ही है। वस्तुतः ये चरण कमल ही मेरे प्राणाधार हैं।

क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।

ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन॥१७॥

मैं श्यामा जी के चरणों की महिमा का वर्णन कैसे करूँ ? इस सम्बन्ध में तो मेरी बोलने की सामर्थ्य ही नहीं है। अन्ततः ये चरण कमल ही मेरे जीवन हैं, क्योंकि इनकी कृपा से ही मेरे धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हुए हैं।

भावार्थ— इस चौपाई के तीसरे चरण का भाव यह है कि जब आत्मा श्री राज जी या श्यामा जी के चरणों का ध्यान करती है तो हृदय में प्रेम बढ़ता है, जिससे युगल स्वरूप की छवि

विराजमान हो जाती है। इस सम्बन्ध में सिनगार २१/२२७ देखने योग्य है —

ए मेहेर करें चरन जिन पर, देत हिरदे पूरन सरूप।

जुगल किसोर चित्त चुभत, सुख सुन्दर रूप अनूप॥

ए छब फब सब देख के ,इन चरन तले बसत।

ए सुख अर्स रूहें जानहीं , जिनकी ए निसबत॥१०१॥

इस अलौकिक सौन्दर्य की सारी शोभा को देखकर ब्रह्मसृष्टियां श्यामा जी के चरणों के ध्यान में ही डूबी रहती हैं। उससे मिलने वाले आनन्द को मात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टियां ही जानती हैं, जिनका इन चरणों से अखण्ड सम्बन्ध होता है।

द्रष्टव्य— इस चौपाई से चितवनि की महत्ता निर्विवाद प्रमाणित होती है।

अर्स मिलावा ले चली , अपने संग सुभान।

किया चाहया सब दिल का, आगूं आए लिए मेहेरबान॥१२६॥

परमधाम में श्यामा जी सभी सखियों को अपने साथ लेकर श्री राज जी के पास आती हैं। धाम धनी आगे आकर उनकी अगवानी (स्वागत) करते हैं और उनके दिल की सारी इच्छा को पूर्ण करते हैं।

भावार्थ— परमधाम की लीला में यह प्रसंग श्यामा जी का सखियों सहित तीसरी भूमिका के आसमानी रंग के मन्दिर से चलकर २८ थंभ के चौक से होते हुए चबूतरे की सीढ़ियों पर श्री राज जी के पास जाने का है, किन्तु इस जागनी लीला में इसका अर्थ इस प्रकार होगा—

श्यामा जी अपनी रसना रूपी वाणी के द्वारा सभी सखियों की सुरताओं को परमधाम के मूल मिलावे में ले जाती है। जो सुन्दरसाथ अपने दिल में धनी की शोभा को बसाते हैं, श्री राज जी उनके धाम दिल में आकर प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं और उनकी सारी आत्मिक इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। इस सम्बन्ध में श्री मुख वाणी की ये चौपाइयाँ ध्यान देने योग्य हैं—

एही लैलत कदर की फजर, उग्या बका दिन रोसन।

हक खिलवत जाहेर करी, अर्स पोहोंचे हादी मोमिन॥ सा०६/१४०

मेंहेदी हद्दां कर दर्ई, घर इमाम बतायी राह।

पोहोंचे अर्स मेयराज को, हंस मिलियां रूहें खुदाए॥ सनंध ४२/२७

में लिख्या है तुमको, एक बार करो मोहे साद।

दस बार जी जी कहूं कर कर तुमको याद॥ सिनगार २१/२३

ए सोभा जुगल किसोर की, चौथा सागर सुख।

जो हक तोहे हिंमत देवहीं, तो पी प्याले हो सनमुख॥१३०॥

हे मेरी आत्मा ! यह चौथा सागर युगल किशोर श्री राज श्यामा जी की शोभा के सुख का है। यदि धाम धनी अपनी मेहर से तुझे अन्तः प्रेरणा (हिम्मत) देते हैं तो तू उनके सम्मुख होकर अर्थात् उनका दर्शन कर उनकी शोभा के अमृत रूपी रस के प्याले को पी।

एही लैलत कदर की फजर, ऊग्या बका दिन रोसन।

हक खिलवत जाहेर करी, अर्स पोहोंचे हादी मोमिन।।१४०।।

कियामत के समय परमधाम के ज्ञान का अवतरण ही लैल तुल कद्र की रात्रि में उजाला होना कहा गया है, जिसमें दिन के उजाले के समान परमधाम का ज्ञान फैल जायेगा। इस समय परमधाम की खिलवत जाहिर होने से श्यामा जी सहित ब्रह्मसृष्टियां चितवनि (ध्यान) द्वारा यहीं बैठे-बैठे परमधाम का इस प्रकार साक्षात्कार करेंगी, जैसे वे परमधाम में ही हों।

भावार्थ— बृहत्सदाशिव संहिता में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि परब्रह्म के आवेश से युक्त अक्षर ब्रह्म की जागृत बुद्धि अवतरित होगी, जिससे ब्रह्मप्रियाओं को जागृत करने वाला ज्ञान प्रकट होगा।

चिदावेशवती बुद्धिरक्षरस्य महात्मनः

प्रबोधाय प्रियाणाम् भविष्यति भारताजिरे।

महामत कहे अपनी रूह को, और अर्स रूहन।

इन सुख सागर में झीलते, आओ अपने वतन।।१४१।।

श्री महामति जी अपनी आत्मा एवं परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि आप सभी युगल स्वरूप की शोभा-शृंगार रूपी इस आनन्द के सागर में स्नान कीजिए और अपने निजधाम लौटिए।

भावार्थ— इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है कि इस संसार में यदि अपनी आत्मा को जागृत करना है और परमधाम के आनन्द की अनुभूति करनी है तो युगल स्वरूप श्री राज जी श्यामा जी की चितवनि के अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा साधन नहीं है।

प्रकरण ७

इन विध साथ जी जागिए, बताए देऊं रे जीवन।

स्याम स्यामा जी साथ जी, जित बैठे चौक वतन।।१।।

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरे जीवन स्वरूप हे सुन्दरसाथ जी! मैं आपको जीने की कला बता रहा हूँ। परमधाम के मूल मिलावे में युगल स्वरूप श्री राज श्यामा जी और आपके मूल तन विराजमान हैं। उनकी शोभा को अपने धाम हृदय में बसाकर अपनी आत्मा को जागृत कीजिए।

भावार्थ— चार चौरस हवेलियों के बाद चार गोल हवेलियां आती हैं। मूल मिलावा चार चौरस हवेलियों के बाद पांचवीं गोल हवेली के रूप में है, इसलिये मूल मिलावे को चौक के रूप में वर्णित किया गया है। वास्तविक जीवन की कला तो मूल मिलावे के ध्यान में ही छिपी है।

याद करो सोई साइत, जो हँसने मांग्या खेल।

सो खेल खुसाली लेय के, उठो कीजे केलि।।२।।

हे साथ जी! आप उस घड़ी को याद कीजिए, जब आपने धाम धनी से यह हंसी का खेल मांगा था। अब इस खेल के आनन्द को लेकर जागृत होइए और धाम धनी से प्रेमलीला का आनन्द लीजिए।

भावार्थ— यह जिज्ञासा हो सकती है कि इस चौपाई में कहाँ जागृत होने की बात कही गयी है परात्म में या इस संसार में ? वस्तुतः इस चौपाई में दोनों जगह की जागृति के लिये सम्बोधन है। यह निर्विवाद सत्य है कि इस संसार में मात्र आत्मा की ही जागनी होगी और वह भी आगे—पीछे जबकि परात्म में जागनी सामूहिक ही होगी, क्योंकि वहाँ वहदत की भूमिका है।

सुरत एकै राखिए , मूल मिलावे माहें।

स्याम स्यामाजी साथजी, तले भोम बैठे हैं जाहें॥३॥

हमें अपनी सुरता (ध्यान) प्रथम भूमिका के उस मूल मिलावे में रखनी चाहिये, जहाँ युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी और सुन्दर साथ बैठे हुए हैं।

ए मूल मिलावा अपना, नजर दीजे इत।

पलक न पीछी फेरिए, ज्यों इस्क अंग उपजत॥४०॥

हे साथ जी! यह अपना मूल मिलावा है, जहाँ धाम धनी के चरणों में हमारे मूल तन विराजमान है। अपनी आत्मिक दृष्टि से इसकी शोभा देखिये और अपनी पलकों को कभी भी बन्द मत कीजिए अर्थात् अपने और धनी के बीच अन्य किसी भी सांसारिक वस्तु को न आने दीजिए। यदि आप ऐसा करते हैं तो निश्चित ही आपके हृदय में प्रेम पैदा हो जायेगा।

भावार्थ— जिस प्रकार आंखों की पलकें बन्द कर लेने पर दिखायी देने वाली वस्तु भी दिखनी बन्द हो जाती है, उसी प्रकार यदि हमारे हृदय में धनी के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की चाहत है तो हमारा ध्यान धनी से हट सकता है और हमें धनी के दीदार से मिलने वाले आनन्द से भी वंचित होना पड़ सकता है। इस चौपाई में यही बात सिखापन के रूप में बतायी गयी है। इस्क पाने का यही सर्वोत्तम मार्ग है कि हम इस्क के सागर श्री राज जी की शोभा को हमेशा ही अपलक नेत्रों से निहारा (देखा) करें।

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम लेय के, विलसिए संग खसम॥४१॥

मूल मिलावे में हमारी आत्मा का मूल स्वरूप विराजमान है, जिसे परात्म कहते हैं। हमें ध्यान (चितवनि) में अपने इस माया के नश्वर रूप को भुलाकर परात्म को ही अपना स्वरूप समझना चाहिए और उसी भाव से युगल स्वरूप की शोभा को आत्मा के धाम हृदय में बसाना चाहिए। ऐसा करके ही हम आनन्द का रसपान कर सकते हैं।

महामत कहे ए मोमिनो, करूं मूल सरूप बरनन।

मेहेर करी मासूक ने, लीजो रूह के अन्तस्करन॥४२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! मासूक श्री राज जी ने मेरे ऊपर अपार मेहर की है, जिससे अब मेरी आत्मा मूल मिलावे में विराजमान श्री राज श्यामा जी की शोभा श्रृंगार का वर्णन कर रही है। आप सभी इस श्रृंगार वर्णन को अपनी आत्मा के धाम हृदय में धारण करें।

प्रकरण ८

उज्जल लाल तली पांउं की, रंग रस भरे कदम।

छब सलूकी अंग अर्स की, रूह से छूटे क्यों दम॥११॥

प्रियतम के दोनों चरणों की तलियों में उज्ज्वलता और लालिमा का मिश्रण हैं। ये दोनों चरण कमल परमधाम के प्रेम और आनन्द से भरपूर हैं। इन अंगों की शोभा—सुन्दरता परमधाम की है, जो एक पल के लिये भी आत्मा से नहीं छूट सकती।

भावार्थ—इस चौपाई के चौथे चरण में कहा गया है कि धनी के चरणों से एक पल के लिये भी आत्मा की दृष्टि अलग नहीं हो सकती, किन्तु यह प्रश्न होता है कि निद्रा, भोजन, वार्तालाप एवं अन्य लौकिक कार्यों में निश्चित ही हमारा ध्यान धनी से हट जाता है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मवाणी का यह कथन कहाँ तक उचित है?

इसका समाधान यह है कि निद्रा, भोजन एवं वार्तालाप आदि कार्यों में हमारी इन्द्रियां, अन्तःकरण एवं जीव ही भाग लेते हैं। आत्मा मात्र दृष्टा है। उसकी दृष्टि भले ही इस मायावी खेल को अवश्य देख रही होती है किन्तु, जब उसके धाम हृदय में एक बार भी युगल स्वरूप की छवि बस जाती है तो वह हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है तथा एक पल के लिये भी आत्मा से अलग नहीं हो पाती। सांसारिक क्रिया कलापों में भी आत्मा से युगल स्वरूप की छवि अलग नहीं होती, जबकि जीव के अन्तःकरण को उसकी विस्मृति (भूल) हो जाती है। यहां यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि जीव के अन्तःकरण तथा आत्मा के अन्तःकरण दोनों ही अलग—अलग हैं। चितवनि की अवस्था में आत्मा के सम्बंध से जीव को भी धनी की शोभा का आनन्द प्राप्त होता है, जिसके कुछ अंश का आभास अन्तःकरण को होता है, जो लौकिक क्रियाओं में भुला देता है। इसके विपरीत आत्मा के अन्तःकरण में वह शोभा अखण्ड रूप से विद्यमान रहती है और निद्रा आदि क्रियाओं में भी उससे अलग नहीं हो पाती। जब आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है तो तारतम ज्ञान के प्रकाश तथा चितवनि से अर्श दिल की शोभा को धारण करने वाली आत्मा भला अपने प्रियतम की शोभा को कैसे भुला सकती है।

आसिक बसत अर्स तले, या बसे अर्स के माहें।

ए खुसबोए मस्ती अर्स की, निसदिन पीवे ताहें॥१६॥

धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टियों का ध्यान हमेशा ही हृद— बेहद से परे परमधाम की ओर रहता है। वे परमधाम के पच्चीस पक्षों तथा युगल स्वरूप की शोभा में खोयी रहती हैं। इस प्रकार उन्हें दिन—रात ही परमधाम के प्रेम की सुगन्धि का रस मिलता रहता है और वे उसके आनन्द में डूबी रहती हैं।

भावार्थ— इस चौपाई के पहले चरण में कथित 'अर्स तले' का तात्पर्य परमधाम की ओर केन्द्रित होने से है। मात्र चितवनि (आत्म—दृष्टि से देखने) से ही परमधाम के वास्तविक आनन्द का रसपान किया जा सकता है।

कहे महामत अरवा अर्स से, जो कोई आई होए उतर।

सो इन सरूप के चरन लेय के, चलिए अपने घर॥११८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम से जो भी ब्रह्मसृष्टि इस खेल में आयी है, वह धाम धनी के चरणों को अपने हृदय में बसाकर अपने धाम में वापस चले।

भावार्थ — प्रियतम के चरणों को अपने धाम हृदय में बसाने का तात्पर्य है (नख से शिख तक सम्पूर्ण श्रृंगार को बसाना) इसके बिना आत्म जागृति की कल्पना करना मात्र हवाई महल बनाना है।

परमधाम में अनादि काल से प्रेम और आनन्द की लीला चलती रही है, किन्तु इस ब्रह्मवाणी के अवतरण से पहले किसी को भी इश्क (प्रेम), वहदत, निस्बत और खिल्वत की मारिफत (सर्वोपरि शाश्वत सत्य) का बोध नहीं था। इस जागनी ब्रह्माण्ड का सर्वोपरि लक्ष्य मारिफत तक पहुँचना है, जो न तो कभी पहले सम्भव था और न कभी भविष्य में (अन्य ब्रह्माण्ड में) हो सकेगा।

इसलिये, इस जागनी लीला में सबका ध्येय यही होना चाहिए कि हम युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में बसायें और परात्म में जागृत होने से पहले धनी के दिल में डुबकी लगाकर मारिफत के अनमोल मोतियों को अवश्य ही चुन लें।

प्रकरण ६

बारीक बातें अर्स की, सो जानें अर्स के तन।

जीवत लेसी सो सुख, जिनका दूट्या अन्तस्करन॥१६॥

परमधाम की ये सूक्ष्म (रहस्यमयी) बातें हैं और इसे मात्र ब्रह्मांगनायें ही जानती हैं। इस संसार में शरीर रहते हुए इस सुख का रसास्वादन वही कर सकता है, जिसका हृदय संसार से टूट चुका होता है।

भावार्थ — संसार की तृष्णाओं से रहित हो जाना ही संसार से दिल का टूटना है। ये तीन तृष्णाएँ इस प्रकार हैं—

१. लोकेषणा — संसार में प्रतिष्ठा की इच्छा।
२. वित्तेषणा — लौकिक सुख सम्पत्ति की इच्छा।
३. दारेषणा — पारिवारिक सम्बन्धियों या शिष्यों की संख्या बढ़ाने का मोह।

इन तृष्णाओं के त्यागने पर ही काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आदि से निवृत्त हुआ जा सकता है। इसके लिये युगल स्वरूप के ध्यान के अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं है। जिस प्रकार कमरे में दीपक जलाते ही कक्ष का सारा अन्धकार क्षण भर में भाग जाता है, उसी प्रकार जो प्रेमपूर्वक अपने हृदय में अक्षरातीत के युगल स्वरूप का ध्यान करता है उसके हृदय से तृष्णाएँ छूमन्तर (समाप्त) हो जाती हैं और मायावी विकार पास भी नहीं फटकते। एक मात्र ऐसे ही दिल को धनी का पूर्वोक्त सुख प्राप्त होता है।

दिल के अंगों बिना हक के, इत स्वाद लीजे क्यों कर।

देखे सुने बोले बिना, तो क्या अर्स नाम धर्या धनी बिगर॥३६॥

इश्क, इल्म, जोश और हुक्म आदि धाम धनी के दिल के अंग हैं। इनके बिना इस संसार में निस्बत का स्वाद नहीं लिया जा सकता अर्थात् अपने प्रियतम का दीदार एवं मधुर वार्तालाप असम्भव है। यदि अपने दिल में धनी को बसाया (बिठाया) नहीं, उनका दीदार नहीं किया, उनकी

मधुर बातें सुनी नहीं तथा उनसे स्वयं बातें नहीं की, तो इस दिल को अर्श कहलाने का क्या अधिकार है, कोई नहीं ?

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि मात्र सुन्दरसाथ के समूह में सम्मिलित हो जाने से ही अपने दिल को परमधाम कहने का अधिकार नहीं मिल जाता। इसके लिये अपने धाम हृदय में युगल—स्वरूप को अनिवार्य रूप से बिठाना ही होगा। इसके बिना आत्म जागृति की बातें करना मात्र दिवा—स्वप्न या हवाई महल के समान है। 'हक इलम जित पोहोंच्या, तित अर्स हुआ दिल हक, के आधार पर केवल बौद्धिक ज्ञान से अपनी आत्म—जागृति की पूर्णता मानना उचित नहीं। वस्तुतः यह अधूरी जागनी है। अगली चौपाई भी इसी बात को दर्शा रही है—

जो मासूक सेज न आइया, देख्या सुन्या न कही बात।

सुख अंग न लियो इन सेज को, ताए निरफल गई जो रात॥३७॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में जिसने भी अपने अर्श दिल की सेज्या पर अपने धाम धनी को विराजमान कर उनका दीदार नहीं किया, उनकी प्रेम भरी बातें सुनी नहीं, अपने विरह प्रेम की बातें कही नहीं और किसी भी प्रकार से दिल में बसाने का सुख नहीं लिया, उसका इस खेल में आना ही व्यर्थ है, ऐसा मानना चाहिए।

भावार्थ— इस चौपाई के चौथे चरण में रात का तात्पर्य खेल के तीसरे हिस्से (लैल तुल कद्र के तीसरे तकरार) जागनी ब्रह्माण्ड से है। माया में ब्रह्मसृष्टियों के आने को रात्रि की संज्ञा दी गयी है। इस चौपाई में बहुत जोर देकर यह बात दर्शायी गयी है कि सुन्दर साथ का सर्वोपरि लक्ष्य है युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में विराजमान करना। जो इस तरफ अपने कदम नहीं बढ़ाते, निःसन्देह वे संसार के सबसे भाग्य हीन व्यक्ति हैं।

नरम लांक अति बारीक, पेट पांसली अति गौर।

ए छबि रूह रंग तो कहे, जो होवे अर्स सहूर॥८१॥

पेट और पसलियों के बीच वाला भाग बहुत ही पतला, कोमल एवं अत्यन्त गोरे रंग का है। श्यामा जी के इस अलौकिक सौन्दर्य की शोभा को कोई भी आत्मा तभी कह सकती है, जब वह परमधाम के चिन्तन में खोई रहती हो।

भावार्थ— इस चौपाई में लांक (लंक) का भाव कमर से हैं, पीठ की गहराई से नहीं। परमधाम के चिन्तन का तात्पर्य बौद्धिक—चिन्तन नहीं है, बल्कि आत्मा के द्वारा परमधाम की शोभा में डूबे रहने से है। लौकिक बुद्धि द्वारा ब्रह्मवाणी को पढ़कर उसमें निहित ज्ञान को ग्रहण तो किया जा सकता है, किन्तु वास्तविक शोभा का साक्षात्कार तो मात्र चितवनि से ही सम्भव है।

याही ठौर रूहें बसत, रात दिन रहें सनकूल।

हक अर्स मोमिन दिल, तिन निमख न पड़े भूल॥१४५॥

युगल स्वरूप के चरणों में ही ब्रह्मसृष्टियों का ध्यान बना रहता है, जिससे वे हमेशा ही (दिन—रात) आनन्द में डूबी रहती हैं। इन ब्रह्मांगनाओं का दिल ही धनी का परमधाम है। उनसे इस सम्बन्ध में क्षण भर के लिये भी जरा सी भूल नहीं होती अर्थात् वे किसी भी स्थिति में अपने दिल से क्षण भर के लिये भी धनी के चरणों को अलग नहीं कर सकतीं।

भावार्थ— इस चौपाई में यह प्रश्न होता है कि ब्रह्मसृष्टियां निद्रावस्था में किस प्रकार धनी के चरणों को अपने धाम हृदय में बसाये रखती हैं ?

इसका उत्तर यह है कि आत्मा के धाम हृदय में एक बार जो भी शोभा बस जाती है, वह अलग नहीं होती। नींद की अवस्था में भी आत्मा के दिल में अखण्ड रूप से धनी की शोभा बसी रहती है, क्योंकि वह खेल में मात्र दृष्टा है। जीव का ही स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर (दिल) नींद से प्रभावित होता है। वह मात्र जागृत अवस्था में ही ध्यान-चिन्तन आदि के द्वारा उस आनन्द की एक झलक ले पाता है।

भी राखों बीच नैन के, और नैनों बीच दिल नैन।

भी राखों रूह के नैन में, ज्यों रूह पावे सुख चैन॥१४८॥

मैं युगल स्वरूप के चरण-कमलों को अपने नेत्रों में तो रखूं ही, इन नैनों के बीच में स्थित दिल के नैनों में भी रखूं। इतना ही नहीं, मैं इन्हें अपनी आत्मा के भी दिल रूपी नैनों में रखूं जिससे मेरी आत्मा अपने मूल आनन्द और शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर सके।

भावार्थ— मुखारबिन्द या नेत्रों को हृदय का दर्पण कहा जाता है, क्योंकि हृदय के सम्पूर्ण भाव इनमें अवश्य प्रतिबिम्बित होते हैं, भले ही कोई उनका आंकलन (पहचान) न कर पाये। यही कारण है कि बाह्य नेत्रों के बीच में दिल के नेत्रों को स्थित कहा गया है। आत्मा के दिल को ही आत्मा के नेत्रों की संज्ञा प्राप्त है। परोक्ष कथन के द्वारा इस चौपाई में सुन्दरसाथ को यह निर्देश दिया गया है कि वे अपने जीव तथा आत्मा दोनों के ही दिल में युगल स्वरूप के चरण कमलों को बसायें।

महामत कहे इन चरन को, राखों रूह के अन्तस्करण।

या रूह नैन की पुतली, बीच राखों तिन तारन॥१४९॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि मेरी एक मात्र यही इच्छा है कि मैं युगल स्वरूप के इन चरणों को अपनी आत्मा के अन्तःकरण (हृदय, दिल) में बसा लूं। मेरी आत्मा परात्म रूपी नेत्र की पुतली है, जिसमें स्थित 'तारा' ही मेरी आत्मा का दिल है। उसी में मुझे अपने प्राणवल्लभ की सम्पूर्ण शोभा को बसाना है।

प्रकरण १०

ए वस्तर भूखन हक के, सो सारे ही चेतन।

सब जवाब लिया चाहिए, आसिक एही लछन॥१५०॥

धाम धनी के अंगों में सुशोभित होने वाले ये सभी वस्त्र और आभूषण चेतन हैं। ब्रह्मसृष्टि का यही लक्षण है कि वह धनी का दीदार करे और वस्त्रों एवं आभूषणों से वार्तालाप द्वारा अपने प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करे।

द्रष्टव्य— इस चौपाई से चितवनि की महत्ता प्रतिप्रादित होती है। सुन्दरसाथ कहलाने की सार्थकता इसी में है कि हम इस कसौटी पर स्वयं को खरा सिद्ध करें।

एक अंग जिन देख्या होए, सो पल रहे न देखे बिगर।

हुई बेसकी इन सरूप की, रूह अंग न्यारी रहे क्यों कर॥१५१॥

जिस आत्मा ने धाम धनी के एक अंग की भी शोभा देख ली होती है, उसे पुनः देखे बिना वह एक पल भी नहीं रह सकती। धनी के उस स्वरूप का साक्षात्कार कर लेने के पश्चात् जब वह संशय रहित हो जाती है तो भला उससे अलग रहने का प्रश्न ही कहाँ होता है ?

सब अंग दिल में आवते, बेसक आवत सूरत।

हाए हाए रूह रेहेत इत क्यों कर, आए बेसक ए निसबत ॥६५॥

जब आत्मा के दिल में धाम धनी के सभी अंगों की शोभा बस जाती है तो निश्चित रूप से मुखारबिन्द सहित सम्पूर्ण स्वरूप दिल में आ जाता है। धाम धनी से इस प्रकार का सम्बन्ध हो जाने पर अर्थात् हृदय में प्रियतम अक्षरातीत की शोभा के बस जाने पर आत्मा, हाय! हाय! इस झूठे संसार में कैसे रह पाती है ? यह बहुत ही आश्चर्य की बात है।

चारों जोड़े चरन के, ए जो अर्स भूखन।

ए लिए हिरदे मिने, आवत सरूप पूरन ॥६६॥

धाम धनी के दोनों चरणों में ये चार आभूषण झांझरी, घुंघरी, कांबी, और कड़ली (कड़ी) विराजमान हैं। परमधाम के इन आभूषणों सहित दोनों चरण कमलों की शोभा जब दिल में बस जाती है तो प्रियतम अक्षरातीत का नख से शिख तक का सम्पूर्ण स्वरूप भी दिल में आ जाता है।

भावार्थ— इस चौपाई के कथन को चितवनि का मूल सूत्र समझना चाहिए। धनी के मुखारबिन्द की शोभा को आत्मसात् करने के लिये सर्वप्रथम चरण कमलों की शोभा को अपने हृदय में बसाना चाहिए।

जो रूह कहावे अर्स की, माहें बका खिलवत।

सो जिन खिन छोड़े सरूप को, कहे उमत को महामत ॥६७॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को सम्बोधित करते हुए श्री महामति जी कहते हैं कि जो भी सुन्दरसाथ स्वयं को परमधाम की आत्मा कहते हैं, और अखण्ड मूल मिलावे में अपनी परात्म का स्वरूप मानते हैं, उन्हें एक क्षण के लिये भी श्री राज जी की शोभा को अपने दिल से अलग नहीं करना चाहिए।

भावार्थ— इस चौपाई में डिण्डिम घोष (डंके की चोट) के साथ धाम धनी की शोभा को अपने दिल में बसाने के लिये कहा गया है। जो सुन्दरसाथ जान बूझकर इसकी अवहेलना करते हैं, उन्हें आत्म-चिन्तन करने की आवश्यकता है कि वे किस राह पर जा रहे हैं ?

प्रकरण ११

सूरत सकल साथ की, मुख कोमल सुन्दर गौर।

ए छबि हिरदे तो फबे, जो होवे अर्स सहूर ॥१५॥

सब सुन्दरसाथ (ब्रह्मांगनाओं) का स्वरूप बहुत ही मनोहर है। उनका मुखारबिन्द कोमल, गौर और अति सुन्दर है। परमधाम का चिन्तन होने पर ही यह अलौकिक शोभा दिल में अवतरित होती है।

भावार्थ— 'सहूर' शब्द का भाव 'चिन्तन', से होता है, बहस से नहीं, किन्तु इस चौपाई में मन, बुद्धि या चित्त के द्वारा किये जाने वाले चिन्तन का प्रसंग नहीं है, बल्कि ध्यान की गहराईयों में होने

वाले चिन्तन का प्रसंग है। वस्तुतः यहां चिन्तन का तात्पर्य प्रेम के रस में डूबी हुई बोधावस्था (ज्ञानमयी स्थिति) से है। इसी प्रकरण की चौ० ३६, ४० और ४१ में यह बात स्पष्ट रूप से बतायी गयी है।

ए सुख संग सरूप के, जो अन्तर अंदर इस्क।

आतम अन्तस्करण विचारिए, तो कछू बोए आवे रंचक।।३८।।

परात्म के अन्दर इश्क (प्रेम) होने से युगल स्वरूप के साथ आनन्द की लीला होती है। हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मा के अन्तःकरण में विचार करें तो वहां के आनन्द की कुछ सुगन्धि (झलक) प्राप्त हो सकती है।

भावार्थ— जीव और आत्मा के अन्तःकरण अलग-अलग हैं। जीव का अन्तःकरण त्रिगुणात्मक है, जबकि आत्मा का अन्तःकरण परात्म के अन्तःकरण का प्रतिबिम्ब है। आत्मा के अन्तःकरण की लीला केवल ध्यानावस्था (चितवनि) में ही होती है। लौकिक कार्यों में मात्र जीव का ही अन्तःकरण कार्य करता है, आत्मा का नहीं।

जो कोई आतम धाम की, इत हुई होए जाग्रत।

अंग आया होए इस्क, तो कछू बोए आवे इत।।३९।।

यदि किसी के अन्दर परमधाम की आत्मा हो और यहां जागृत हो गयी हो तथा उसके धाम हृदय में धनी के प्रति प्रेम हो तो उसके अन्दर परमधाम के आनन्द की कुछ सुगन्धि आ सकती है अर्थात् कुछ अनुभव हो सकता है।

भावार्थ— जागृत होने का तात्पर्य है युगल स्वरूप की शोभा का दिल में बस जाना। परमधाम के अनन्त आनन्द की थोड़ी सी भी झलक मिलना बिना प्रेम एवं आत्म-जागृति के सम्भव नहीं है। इसके आगे की चौपाइयों में चितवनि की गहन स्थिति का वर्णन हो रहा है।

पिउ नेत्रों नेत्र मिलाइए, ज्यों उपजे आनन्द अति घन।

तो प्रेम रसायन पीजिए, जो आतम थें उतपन।।४०।।

हे साथ जी! आप अपनी आत्म-दृष्टि से प्रियतम के नेत्रों की ओर देखिए, ताकि आपको अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति हो सके। प्रियतम के नेत्रों की ओर देखने पर जब आपकी आत्मा में प्रेम का रस प्रवाहित होने लगे तो उसका पान कीजिए अर्थात् उसमें डूब जाइए।

भावार्थ— चितवनि की प्रारम्भिक अवस्था में चरणों का ही विशेष ध्यान किया जाता है इससे संसार से अलगाव होने लगता है और प्रियतम की शोभा दिल में बसने लगती है—

चारों जोड़े चरन के, ए जो अर्स भूखन।

ए लिए हिरदे मिने, आवत सरूप पूरन।।

अक्षरातीत का दिल इश्क का अथाह सागर है। उसका रस नेत्रों के द्वारा प्रवाहित होता है। इसलिये नेत्रों के ध्यान से आत्मा के अन्तःकरण में प्रेम की अखण्ड वर्षा होने लगती है। यद्यपि परमधाम की वहदत में चरणों और नेत्र में कोई भी गुणात्मक अन्तर नहीं है, किन्तु इस प्रकार का कथन हमारी ग्राह्य शक्ति के आधार पर किया गया है। जिस प्रकार इस संसार में किसी के चरणों के प्रति भाव रखने से श्रद्धा व विश्वास की वृद्धि होती है, किन्तु नेत्रों की ओर देखने पर प्रेम की वृद्धि होती है, उसी प्रकार ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था में जब तक अपने आत्म स्वरूप में स्थित

नहीं हुआ जाता, तब तक जीव भाव के योग से होने वाली ध्यान प्रक्रिया में चरणों एवं नेत्र के ध्यान में भेद करना पड़ता है।

आतम अन्तस्करण विचारिए, अपने अनुभव का जो सुख।

बढ़त बढ़त प्रेम आवहीं , परआतम सनमुख॥४१॥

अब आपको जिस आनन्द का अनुभव हो रहा है, उसका अपनी आत्मा के अन्तःकरण में विचार कीजिए। आनन्द के भावों के बढ़ने पर दिव्य प्रेम का रस प्रवाहित होगा, जिससे अपनी परात्म नजर आने लगेगी।

भावार्थ— आत्मा के अन्तःकरण में युगल स्वरूप के ध्यान से मिलने वाले आनन्द का विचार तभी होगा, जब पिण्ड और ब्रह्माण्ड का जरा भी आभास नहीं होगा। उस अवस्था में आनन्द की निरन्तर वृद्धि होने से माया से सम्बन्ध पूर्णतया टूट जायेगा, जिससे त्रिगुणातीत प्रेम की धारा बहेगी और अपनी परात्म का स्वरूप नजर आने लगेगा।

इतथें नजर न फेरिए , पलक न दीजे नैन।

नीके सरूप जो निरखिए, ज्यों आतम होए सुख चैन॥४२॥

अब अपनी आत्मा के अपलक नेत्रों से युगल स्वरूप को अच्छी तरह से देखिए और अपनी दृष्टि जरा भी इधर-उधर न कीजिए। ऐसा करने से आत्मा के दिल में आनन्द और परम शान्ति का अनुभव होगा।

भावार्थ— इस स्तर तक पहुँचने के लिये अति शुद्ध और सात्विक अल्पाहार, निर्विकारिता एवं विरह रस में डूबे रहना अनिवार्य है, अन्यथा अपलक नेत्रों से युगल स्वरूप को देखना सम्भव नहीं हो सकेगा।

तब प्रेम जो उपजे , रस परआतम पोहोंचाए।

तब नैन की सैन कछू होवहीं, अन्तर आंखां खुल जाए॥४३॥

अब आत्मा के अन्दर जो प्रेम प्रकट होता है। उसकी अनुभूति परात्म को भी होती है। इस स्थिति में आत्मा के नैनों की दृष्टि श्री राज जी के नैनों से मिलती है, जिससे आत्मिक-दृष्टि पूर्णतया खुल जाती है।

भावार्थ— इस खेल में आत्मा वाले जीव के तन से जो कुछ भी लीला हो रही होती है, परात्म उसे देख रही होती है। उदाहरण के लिये सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी से कहा था कि शाकुण्डल एवं शाकुमार की आत्मा राजघरानों में हैं, क्योंकि इनके मूल तन परमधाम में हंस रहे हैं।

जब आत्मा अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर युगल स्वरूप का दीदार कर रही होती है तो ऐसी अवस्था में उसके अन्दर जो प्रेम प्रकट होता है, उसका अहसास परात्म को भी हो जाता है। इसे ही परात्म तक प्रेम रस पहुँचने की बात की गयी है। धनी के नेत्रों से जब आत्मा के स्वरूप की नजर मिलती है तो अक्षरातीत के नेत्रों से प्रेम और आनन्द का रस प्रवाहित होने लगता है। इसे ही आत्म-दृष्टि का खुलना कहते हैं, किन्तु यह स्थित चौ. ४०, ४१ में वर्णित धनी के नेत्रों से नेत्र मिलाने एवं प्रेम रस का पान करने से भिन्न होती है। चौ. ४०, ४१ का कथन प्रारम्भिक अवस्था

का है, जबकि इस ४३वीं चौपाई में प्रत्यक्ष दर्शन (दीदार) का प्रसंग है।

अन्तस्करण आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछू अन्तराए॥४४॥

अब आत्मा के अन्तःकरण में प्रेम और आनन्द का रस बरसने लगता है। इस अवस्था में आत्मा और परात्म में जरा भी भेद नहीं रह जाता।

भावार्थ— परात्म के दिल में युगल स्वरूप की छवि अखण्ड रूप से बसी होती है। अब आत्मा ने भी अपने धाम हृदय में जब युगल स्वरूप को बसा लिया तो उसमें और परात्म में कोई भी अन्तर नहीं रह जाता। इस अवस्था में माया से आत्मा का कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता है। यही आत्म जागृति है जो इस जीवन का परम लक्ष्य है।

तार्थें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।

सुरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइए बल बल॥४६॥

इसलिये अब अपनी आत्मा के धाम हृदय में चबूतरे पर बैठे हुए सुन्दरसाथ के बीच में विराजमान युगल स्वरूप को बसाईये। अपना ध्यान टूटने न दीजिए और बारम्बार युगल स्वरूप की शोभा पर स्वयं को न्योछावर कर दीजिए।

भावार्थ— इस चौपाई में सूरता (सुरति) का तात्पर्य आत्म-दृष्टि से है। इसी प्रकार चितवनि का भाव है— आत्म चक्षुओं से देखना। यद्यपि शास्त्रीय भाषा में मन या चित्त की वृत्ति को सुरति कहा जाता है, किन्तु यहां वैसा प्रसंग नहीं है। आत्मा के हृदय (मन या चित्त) की वृत्ति को सुरति कह सकते हैं, किन्तु जीव के चित्त की वृत्ति को नहीं। इसी प्रकार चित्त और चिति शक्ति में भी अन्तर होता है। यहां चिति शक्ति का भाव आत्मिक चेतना से लिया जाता है, जबकि चित्त का सम्बन्ध मात्र चित्त से ही होता है।

प्रकरण १२

इन ठौर बैठे देखाइया, साहेबी हक बुजरक।

पैठ हक दिल बीच में, पी प्याले इस्क॥१७॥

धाम धनी ने तुझे (मूल तन को) मूल मिलावे में ही बिठा कर अपनी महान साहिबी (स्वामित्व) दिखा दी है। अब तू अपने प्राण प्रियतम के दिल में बैठ कर इश्क के प्याले को पी।

भावार्थ— इस चौपाई की पहली पंक्ति में परमधाम का प्रसंग है, जबकि दूसरी पंक्ति में इस खेल में जागनी लीला का प्रसंग है, जिसमें आत्मा चितवनि में डूब कर प्रेम के प्याले पीती है। खेल खत्म होने के पश्चात् यह स्थिति परमधाम के लिये होगी। यह बात इसी प्रकरण की चौपाई १६ और २५, २६ में भी कही गयी है।

ए इस्क सागर अपार है, वार न पाइए पार।

ए लेहेरी इस्क सागर की, हक देवें सोहागिन नार॥२३॥

इश्क का सागर अनन्त है। इसकी कोई सीमा नहीं है। प्रेम के सागर की लहरों का अनुभव धाम धनी मात्र अपनी अंगनाओं को ही देते हैं।

भावार्थ— परमधाम के नूरी तन ही इश्क के सागर में डूबा करते हैं। इस खेल में तारतम ज्ञान एवं चितवनि द्वारा उसकी लहरों का अनुभव किया जाता है।

जो हक तोहे अन्तर खोलावहीं, तो आवे हक लज्जत।

और बड़े सुख कई अर्स के, पर ए निपट बड़ी न्यामत॥२४॥

हे मेरी आत्मा ! यदि धाम धनी यह माया का पर्दा हटा दें और तुम्हारी आत्मिक दृष्टि खोल दें तो तुम्हें इस संसार में ही श्री राजजी तथा परमधाम के कई सुखों का प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है। किन्तु निश्चित रूप से इस प्रकार की उपलब्धि बहुत बड़ी आध्यात्मिक सम्पदा है।

भावार्थ— इस चौपाई का कथन सुन्दरसाथ के लिये है, महामति जी के लिये नहीं। इस चौपाई में कथित उपलब्धि को मात्र प्रेम की राह पर चलकर ही पाया जा सकता है।

सुख हक इस्क के, जिनको नाही सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सों करो विचार॥३०॥

परमधाम में अक्षरातीत के प्रेम का अनन्त आनन्द है, किन्तु हे साथ जी ! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से विचार करें तो उन सुखों की पहचान इस जागनी ब्रह्माण्ड में ही होनी है।

भावार्थ— परमधाम में नूरी तनों से प्रेम और आनन्द का विलास है, किन्तु इस जागनी ब्रह्माण्ड में तारतम वाणी के प्रकाश में हम अपने ज्ञान चक्षुओं से इश्क और आनन्द की मारिफत को जान सकते हैं। प्रेममयी चितवनि द्वारा अष्ट प्रहर की लीला सहित सम्पूर्ण पक्षों का साक्षात्कार भी कर सकते हैं और उस अवस्था की प्राप्ति कर सकते हैं जिसमें आत्मा और परात्म में भेद नहीं रह जाता।

फेर कब जुदागी पाओगे, छोड़ के हक अर्स।

बैठे खेल में पिओगे, हक इस्क का रस॥३४॥

हे साथ जी! इस बात पर आप विचार कीजिए कि अब आपको ऐसा अवसर कभी भी दूसरी बार नहीं मिलने वाला है, जिसमें आप परमधाम को छोड़कर वियोग का अनुभव कर सकें और इस मायावी जगत् में रहते हुए भी धाम धनी के इश्क का रस पान कर सकें।

भावार्थ— आत्म चक्षुओं द्वारा युगल स्वरूप को अपलक देखना ही इश्क का रसपान करना है। इस अवस्था की प्राप्ति बाह्य आडम्बर और नवधा भक्ति के कर्मकाण्डों से नहीं होती, बल्कि विरह के आंसुओं में युगल स्वरूप की शोभा को दिल में बसाने से होती है।

सिनगार

प्रकरण ३

हक रूहें बीच अर्स के, नहीं जुदागी एक खिन।

हुकमें नैन कान दीजिए, अब देखो नैनों सुनो वचन॥६८॥

परमधाम में श्री राज जी और सखियों के बीच एक पल की भी जुदायगी नहीं है। हे साथ जी! अब धनी के अपने आदेश से धाम हृदय में ही अपने आत्मिक नेत्रों और आत्मिक कानों से प्रियतम की छवि को देखिए और उनके अमृतमयी वचनों को सुनिए।

भावार्थ— परमधाम में जिस तरह श्री राज जी अपनी अंगनाओं से पल भर भी दूर नहीं है, उसी तरह इस संसार में भी अपनी आत्माओं से दूर नहीं है। परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप का ध्यान करते ही आत्मा के धाम हृदय में ही वहां की सारी शोभा दृष्टिगोचर होने लगती है। इसलिए श्री राज जी को ब्रह्ममुनियों की शाहरग (प्राणनली) से भी अधिक निकट कहा गया है।

प्रकरण ४

जिन देखी सूरत हक की, इन वजूद के सनमंध।

जोस हुकम मेहेर देखावहीं, मोमिन जानें एह सनंध॥६॥

इस पंचभौतिक तन को प्राप्त कर जिसने भी अक्षरातीत की शोभा का दर्शन किया है, उसने धनी की मेहर, जोश और आदेश के द्वारा ही यह सफलता प्राप्त की है। इस रहस्य को मात्र ब्रह्मसृष्टियां ही जानती हैं।

भावार्थ— प्रेम के भावों में भरकर अक्षरातीत की शोभा का ध्यान करने पर धनी का जोश प्राप्त होता है। इस जोश के बिना आत्मिक दृष्टि कभी भी निराकार को पार नहीं कर सकती। जोश प्राप्त होने पर बेहद तक आत्मिक दृष्टि पहुंचती है। मुहम्मद साहिब भी इसी जोश के द्वारा बेहद तक पहुंचे थे। इसके पश्चात् धनी की मेहर के रूप में इश्क प्राप्त होता है, जिसके द्वारा आत्मिक दृष्टि मूल मिलावे में पहुंचती है और अपने प्राणवल्लभ का दीदार करती है। यह सारी प्रक्रिया धनी के आदेश की छत्र छाया में होती है। इस प्रकार कोई व्यक्ति भले ही कितना ही योगी, तपस्वी एवं विद्वान क्यों न हो, किन्तु बिना जोश एवं प्रेम के वह निराकार—बेहद से परे परमधाम का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

जिन जो देख्या जागते, सो देखे माहें सुपन।

कानों सुन्या सोभी देखत, याके साथ तो हक इजन॥१५॥

परमधाम की जिन आत्माओं ने जागृत अवस्था में परमधाम को देखा था, अब उसे वे चितवनि द्वारा इस सपने के ब्रह्माण्ड में देख रही हैं। अपने कानों से माया के जिस ब्रह्माण्ड के बारे में सुना था, उसे तो प्रत्यक्ष देख ही रही हैं। इनके साथ प्रियतम के आदेश (हुक्म) की शक्ति है, जो ये सारी लीलायें करवा रही हैं।

अधुर हरवटी नासिका, दंत जुबां और गाल।

जो अंग आया हक का दिल में, उठे रूह अंग उसी मिसाल॥२४॥

जब आत्मा अपने धाम हृदय में श्री राज जी के अति सुन्दर होंठों, टुड्ढी, नासिका, दाँतों, मुख तथा गालों की शोभा को अपने धाम हृदय में बसा लेती है तो उसी क्रम में आत्मा के भी अंग जागृत हो जाते हैं (दिखने लगते हैं)।

भावार्थ— जिस प्रकार दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर अपने रूप का निर्धारण किया जाता है, उसी प्रकार आत्मा अपने धाम हृदय में अपने परात्म का रूप (प्रतिबिम्ब) देखकर अपने रूप का निर्धारण करती है।

इसके साथ ही विशेष तथ्य यह भी है कि जिस प्रकार द्रष्टा दृश्य को देखते—देखते अपने को

भी देखने लग जाता है, उसी प्रकार आत्मा भी परात्म को देखते-देखते स्वयं को भी देखने लग जाती है और ऐसी भी स्थिति आती है, जब वह परात्म की जगह स्वयं का अस्तित्व अनुभव करने लगती है। यह स्थिति वैसे ही होती है, जैसे किसी अपने ही चित्र को बहुत ध्यान पूर्वक देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वयं ही चित्र के रूप में प्रत्यक्ष है। उसे चित्र में एकात्मता प्रतीत होने लगती है। इसी प्रकार चितवनि की प्रक्रिया में प्रतिबिम्ब (आत्मा) अपने बिम्ब को देखकर उससे तदात्म्य (एकरूपता) स्थापित कर लेती है अर्थात् अब आत्मा को अपना वह अंग प्रत्यक्ष दिखाई देता है, जो श्री राज जी अथवा परात्म का अंग देखा था। इस प्रकार चितवनि की गहन स्थिति में तीनों ही दिखाई देंगे— १. श्री राज श्यामा जी २. परात्म ३. आत्मा। आत्मा को अपने जिस-जिस अंग का अनुभव होगा उस-उस अंग का उठना कहा जायेगा। आगे की चौपाईयों में यही बात दर्शायी गयी है।

जो तूं ग्रहे हक नैन को, तो नजर खुले रुह नैन।

तब आसिक और मासूक के, होए नैन नैन से सैन॥२५॥

हे मेरी आत्मा! यदि तूं श्री राज जी के अति मनोहर नेत्रों को देखती है तो तेरे भी नेत्र खुल जायेंगे। जब तुम्हारे नेत्रों की दृष्टि प्रियतम के नेत्रों से मिलेगी तो प्रेम के संकेत रूपी बाण चलने शुरू हो जायेंगे।

भावार्थ— इस चौपाई में उस स्थिति का वर्णन है, जब आत्मा अपने धाम हृदय में ही ऐसा अनुभव करती है कि उसका प्रियतम उसके सम्मुख ही विराजमान है और वह अपनी परात्म जैसी शोभा से युक्त होकर उनका दीदार (दर्शन) कर रही है। स्थिति यहां तक पहुंच जाती है कि जैसे परमधाम में परात्म अपने प्राणवल्लभ के नेत्रों से प्रेम के संकेत करती है, उसी तरह आत्मा भी करने लगती है। यह विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य है कि उस अवस्था में अपने पंचभौतिक तन का ज़रा भी आभास नहीं रहेगा तथा आत्मा के दिल में सब कुछ घटित होते हुए भी ऐसा लगेगा जैसे हम मूल मिलावे में आमने-सामने बैठे हुए हैं।

जो हक निलाट आवे दिल में, और दिल में आवे श्रवन।

दोऊ अंग खड़े होएं रुह के, जो होवें रुह मोमिन॥२६॥

यदि किसी के अन्दर परमधाम की आत्मा हो और वह अपनी आत्मिक दृष्टि से अपने धाम हृदय में श्री राज जी के मस्तक और कानों की शोभा को देखती है तो आत्मा को भी अपने मस्तक और कानों की शोभा दिखायी देगी।

भावार्थ— इस चौपाई में यह प्रश्न होता है कि परमधाम के तन तो नूरी हैं, किन्तु इस संसार में चितवनि करने पर कैसा दिखायी देता है ?

इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार यदि टी•वी• के पर्दे पर या जल में तपते हुए सूर्य को दिखाया जाय तो सूर्य का वास्तविक रूप दिखता तो है किन्तु टी•वी• के पर्दे पर या जल में गर्मी का आभास नहीं होता, उसी प्रकार करोड़ों सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान परमधाम के नूरी तनों को देखने पर कुछ भी अनुचित प्रभाव नहीं पड़ता। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्याम जी के मन्दिर में श्री राज जी के आवेश स्वरूप को बाह्य आंखों से देखा था, किन्तु कुछ भी शारीरिक

विकृति नहीं हुई। यह धाम धनी की अलौकिक लीला है।

दोऊ मुक्ताफल कान के, करड़े कंचन बीच लाल।

साड़ी किनार सेंथे पर, श्रवन पानड़ी झाल॥५३॥

श्री राज जी के दोनों कानों में सोने के ऐंठदार बड़े बाले लटक रहे हैं, जिनमें मोती के फूल जड़े हुए हैं। इनके बीच में लाल नग सुशोभित हो रहा है। इसी प्रकार श्यामा जी के कानों में पानड़ी आयी है तथा नीचे झाला लटक रहा है। श्यामा जी की साड़ी का किनारा मांग के ऊपर से होकर शोभा दे रहा है।

भावार्थ— इस चौपाई में युगल स्वरूप की शोभा का साथ-साथ वर्णन किया गया है। चितवनि में भी सुन्दरसाथ को यही प्रक्रिया अपनानी चाहिए।

हक अंग तो मुतलक मारत, पर भूखन लगें ज्यों भाल।

चितवन जुगल किसोर की, देत कदम नूरजमाल॥५४॥

श्री राज जी के अंगों की शोभा तो आशिक (आत्मा) को निश्चित रूप से मार डालती है अर्थात् आत्मा अपने प्रियतम के प्रति पूर्ण रूप से एकाकार हो जाती है और स्वयं का अस्तित्व भूल जाती है। इसके साथ ही नूरमयी आभूषणों की शोभा भाले के समान चोट करती है। युगल स्वरूप की चितवनि, आत्मा को धनी के चरण दिला देती है।

भावार्थ— युगल स्वरूप के अंग-अंग से छिटकने वाला अनन्त सौन्दर्य आत्मा को इतना बेसुध (मदहोश) कर देता है कि वह स्वयं को भूल जाती है। उस समय उसकी दृष्टि में अक्षरातीत के अनन्त प्रेम एवं सौन्दर्य से भरे अंगों के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नजर नहीं आता। इसे ही मार डालना कहते हैं। इस संसार में जिस प्रकार भाले की चोट से व्यक्ति तड़पने लगता है, उसी प्रकार श्री राज जी के आभूषणों की एक झलक भी यदि मिल जाय तो आत्मा का हृदय भाले के चोट की तरह विरह में तड़पने लगता है। अकेले श्री राज जी का ही केवल ध्यान नहीं करना चाहिए, बल्कि उनके साथ श्यामा जी का भी ध्यान करना चाहिए। वस्तुतः श्यामा जी अक्षरातीत की हृदय स्वरूपा है। वे परब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति हैं। दोनों में कोई भेद नहीं है। वस्त्र-शृंगार आदि का जो भेद दिखायी पड़ता है, वह मात्र लीला भेद है, तात्त्विक नहीं। इस प्रकार अध्यात्म के शिखर तक मारिफत की अवस्था में पहुंचने के लिये युगल स्वरूप की चितवनि अनिवार्य है।

ए रंग जोत किन विध कहूं, जो ले देखो अर्स सहूर।

सोभा रंग सलूकी सुख, देखो रूह की आंखों जहूर॥६०॥

हे साथ जी! यदि आप परमधाम का चिन्तन करके देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि वहां के रंगों की ज्योति की शोभा का वर्णन कर पाना बहुत ही कठिन है। मैं उसका वर्णन कैसे करूँ? आप अपने आत्मिक चक्षुओं को खोलकर परमधाम के रंगों की शोभा, सुन्दरता तथा उससे मिलने वाले सुख का अनुभव कीजिए।

सुपने सूरत पूरन, रूह हिरदे आई सुभान ।

तब निज सूरत रूह की, उठ बैठी परवान ॥६६॥

इस स्वप्न के तन में बैठी आत्मा के धाम हृदय में जब धाम धनी के मुखारविन्द की पूर्ण शोभा विराजमान हो जाती है तो निश्चित रूप से आत्मा का भी मुखारविन्द पूर्ण रूप से जागृत हो जाता है ।

महामत हुकमें केहेत हैं, जो होवे अर्स अरवाए ।

रूह जागे का एह उद्दम, तो ले हुकम सिर चढ़ाए ॥७५॥

श्री राज जी के आदेश से श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! आपमें जो भी परमधाम की आत्मा हो, वह धनी के इस आदेश को शिरोधार्य करे कि आत्म-जागृति के लिये धनी की सम्पूर्ण शोभा को अपने दिल में बसाये। आत्मा को जागृत करने का एक मात्र यही उपाय है ।

भावार्थ— इस सम्पूर्ण प्रकरण में युगल स्वरूप की शोभा को अपने धाम हृदय में बसाने का निर्देश दिया गया है। यह निर्देश स्वयं धाम धनी की ओर से है, जैसा कि इस प्रकरण की अन्तिम चौपाई में भी कहा गया है। इस प्रकार यह निर्विवाद सिद्ध है कि चितवनि ही आत्म-जागृति का एकमात्र साधन है। इससे विमुख होना अक्षरातीत के आदेश का स्पष्ट उल्लंघन है ।

प्रकरण ६

फेर फेर चरन को निरखिए, रूह को एही लागी रट ।

हक कदम हिरदे आए, तब खुल गए अन्तर पट ॥७५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! मेरी आत्मा आपसे इसी बात की रट लगा रही है कि धनी के चरणों को बारम्बार देखिए। यदि श्री राजजी के चरण-कमल आपके धाम हृदय में बस जायेंगे तो आपके और धाम-धनी के बीच का पर्दा हट जायेगा ।

भावार्थ— 'अन्तर' का अर्थ भेद होता है। 'अन्तर-पट' का अभिप्राय है माया का वह पर्दा, जिसके कारण आत्मा अपने धाम-धनी को नहीं देख पाती है ।

हकें बैठक कही अपनी, दिल मोमिन का जे ।

जिन दिल हक आए नहीं, सो दिल मोमिन कहिए क्यों ए ॥७६॥

धामधनी ने ब्रह्ममुनियों के हृदय को अपना निवास स्थान माना है। जिस दिल में प्राणवल्लभ अक्षरातीत की शोभा नहीं बस सकती, उसे ब्रह्ममुनि का दिल कैसे कहा जा सकता है? कदापि नहीं ।

भावार्थ— युगल स्वरूप के अंग-अंग की शोभा को अपने हृदय में बसाना ही तो चितवनि है। जो सुन्दरसाथ ऐसा नहीं करते हैं, उन्हीं के लिये इस चौपाई में धाम धनी की ओर से इतना कठोर निर्देश है कि उन्हें स्वयं को ब्रह्ममुनि, आत्मा या सुन्दरसाथ कहलाने का कोई भी नैतिक आधार (अधिकार) नहीं है ।

जो रूह देखे लांक लीक को, तो रूह तितहीं रहे लाग।

अर्स रूहों को इन लीक बिना, सुख दुनियां लागे आग।।३०।।

यदि आत्मा की दृष्टि श्री राज जी के चरणों की तली की गहराई में आयी हुई रेखाओं की शोभा में जाती है, तो वह उसी में लगी (डूबी) रह जाती है। परमधाम की आत्माओं के लिये इन रेखाओं को देखे बिना संसार के सभी सुख जलती हुई अग्नि के समान कष्टकारी लगते हैं।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टियों के लिये प्रेममयी चितवनि द्वारा युगल स्वरूप के चरणों के सौन्दर्य में स्वयं को डुबो देना ही सबसे बड़ा आनन्द है। इसके बिना संसार के सारे सुख उन्हें कष्टकारी ही लगते हैं।

जो आड़ी आवे पलक, तो जानों बीच पड़्यो ब्रह्माण्ड।

ए निसबत हक वाहेदत, जो अर्स दिल अखंड।।४८।।

यदि आत्म-चक्षुओं के सामने पलकों का पर्दा आता है तो यह स्थिति असह्य हो जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि सामने समस्त ब्रह्माण्ड ही आ गया है। आत्मा का धनी के चरणों से यह सम्बन्ध तो श्री राजजी की एक दिली (एकत्व) के अन्तर्गत है, क्योंकि परात्म के हृदय में समस्त परमधाम अखण्ड रूप से विद्यमान है।

भावार्थ— चितवनि की गहन स्थिति में शरीर, संसार या ज्ञान सम्बन्धी किसी विचार का आना ही पलकों का ढक जाना है जिससे प्रियतम का दीदार होना बन्द हो जाता है।

कहे हुकम नूरजमाल का, मोहे प्यारे अति मोमिन।

महामत कहे दोनों ठौर, हमको किए धन धन।।६४।।

श्री राज जी का आवेश स्वरूप (हुक्म, आदेश स्वरूप) कहता है कि मुझे ब्रह्ममुनि बहुत ही प्यारे हैं। श्री महामति जी कहते हैं कि धाम धनी ने हमें इस संसार में तथा परमधाम में भी धन्य-धन्य कर दिया है।

भावार्थ— इस संसार में ब्रह्मवाणी के द्वारा परमधाम का ज्ञान प्राप्त हो गया है, जिससे धनी के विरह-प्रेम में डूबकर चितवनि द्वारा वहां का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। ब्रह्मवाणी द्वारा ही परमधाम की निस्वत, वहदत, खिल्वत और इश्क की मारिफत का ज्ञान मिला है, जो परमधाम में मालूम नहीं था। इसका आनन्द परात्म में जागृत होने पर मिलेगा। दोनों जगह (संसार और परमधाम में) धन्य-धन्य होने का यही आशय है।

प्रकरण ७

ए कदम ले दिल मोमिन, अर्स से ना निकसत।

ए रूहें जानें अर्स बारीकियां, जो असल हक निसबत।।१८।।

ब्रह्मसृष्टियां जब अपने प्राण प्रियतम के अति सुन्दर चरणों को अपने धाम हृदय में बसा लेती हैं तो उनकी दृष्टि परमधाम से नहीं हट पाती। परमधाम की इन गुह्य बातों को मात्र वे ब्रह्मसृष्टियां ही जानती हैं, जिनका धनी के चरणों से शाश्वत सम्बन्ध होता है।

भावार्थ— इस चौपाई में जिस धाम से उनकी दृष्टि के न हटने की बात कही गयी है, वह परमधाम के भी लिये है तथा धाम-हृदय के लिए भी। साक्षात्कार (दीदार) की अवस्था में परमधाम और धाम हृदय में एकरूपता हो जाती है, किन्तु इसके पूर्व ध्यान तो बेहद से परे परमधाम में ही केन्द्रित किया जाता है।

प्रकरण ११

खाना पीना खिन खिन लिया, प्यार अर्स रूहन।

पल पल मासूक देखना, एही आहार आसिकन॥६॥

परमधाम की आत्माओं के द्वारा क्षण-क्षण धनी से प्रेम करना ही भोजन करना और जल पीना है। श्री राजजी का पल-पल दीदार (दर्शन) ही आत्माओं का आहार है।

भावार्थ— भोज्य पदार्थ को ग्रहण करना और जल पीना आहार के अन्तर्गत आता है। इस प्रकार श्री राजजी का दर्शन करना भोजन करना है तथा प्रेममयी लीला में डूब जाना पानी पीना है, श्रृंगार का कथन इसकी पुष्टि करता है—

खाना दीदार इनका, या सों जीवे लेवे स्वांस।

दोस्ती इन सरूप की, तिनसें मितट प्यास॥ सिनगार ५/६०

हक बैठे अपने अर्स में, सो अर्स मोमिन का दिल।

तो अनेक खूबी खुसालियां, हम क्यों न लेवें मिल॥७॥

श्री राजजी जिस परमधाम में विराजमान हैं, वह परमधाम ब्रह्ममुनियों का हृदय (दिल) कहा गया है। इस प्रकार उस धाम-हृदय में अनेक प्रकार की विशेषताएं और आनन्द के स्रोत भरे हुए हैं। ऐसी स्थिति में हम सभी आत्मायें मिलकर उस आनन्द का रस पान क्यों न करें ?

भावार्थ— अपने धाम हृदय में छिपे हुए आनन्द के भण्डार को पाने के लिये स्वयं को प्रेम में डुबाना पड़ेगा और चितवनि द्वारा युगल स्वरूप को अपने धाम-हृदय (अर्श-दिल) में बसाना पड़ेगा।

कटि कोमल अति पतली, सुन्दर छाती गौर।

देख देख सुख पाइए, जो होवे अर्स सहूर॥१०॥

श्री राजजी की कमर बहुत ही कोमल और पतली है। छाती (वक्षस्थल) अति सुन्दर गौर वर्ण की है। हे साथ जी! यदि आप चितवनि रूप परमधाम का चिन्तन करते हैं तो आप धनी के इन अंगों की शोभा को देख-देखकर अपार आनन्द प्राप्त करेंगे।

भावार्थ— इस चौपाई में 'सहूर' शब्द का तात्पर्य बौद्धिक या मानसिक चिन्तन से नहीं लेना चाहिए, बल्कि आत्मिक दृष्टि से परमधाम के लीला रूप पदार्थों को देखना ही परमधाम का चिन्तन (सहूर) है। जब इस नश्वर जगत के मन, बुद्धि और चित्त की पहुँच परमधाम में है ही नहीं, तो बौद्धिक या मानसिक चिन्तन को स्थान कहां दिया जा सकता है ? जिन चौपाईयों में ज्ञान के किसी भी विषय पर चिन्तन की बात आती है, वहां 'सहूर' शब्द का प्रयोग अवश्य ही बौद्धिक या मानसिक चिन्तन के रूप में किया जाता है जैसे—

एता मता तुमको दिया, सो जानत है तुम दिल।

बेसक इलमें न समझे, तो सहूर करो सब मिल॥ शृंगार २७/१

और पेट पांसली हककी, ए कौन भांत कहूं रंग।

रूह देखे सहूर अर्स के, और कौन केहेवे हक अंग॥१२॥

श्री राज जी के पेट और पसलियों के भाग की सुन्दरता इतनी अधिक है कि यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उसके सौन्दर्य (रंग) का वर्णन मैं कैसे करूँ? परमधाम की चितवनि में ही आत्मा इसे यथार्थ रूप में देख सकती है, अन्यथा अक्षरातीत के अंगों की शोभा का वर्णन भला दूसरा कोई भी कैसे कर सकता है ?

हक छाती नरम कोमल, रूह सदा रहे सूर धीर।

पाए बिछुरे पिउ परदेस में, हाए हाए सो रही ना कछू तासीर॥५४॥

धाम धनी का वक्ष बहुत ही कोमल है। सर्वदा ही एक धैर्यशाली वीर की तरह आत्मा इस शोभा के दीदार (दर्शन) में प्रयत्नशील रहती है। यद्यपि इस मायावी जगत् में उसने बिछुड़े हुए प्रियतम को पा लिया है, किन्तु हाय! हाय! अब परमधाम जैसे प्रेम का प्रभाव (बल) नहीं रह गया है।

भावार्थ— युद्ध में धैर्यपूर्वक कष्टों को सहन करते हुए, अपनी वीरता प्रदर्शित करने वाले वीर को 'सूरधीर' कहते हैं। आत्मा का माया से भयानक युद्ध होता है, जिसमें वह धैर्य पूर्वक युद्ध करती है और अपने प्रियतम का दीदार करती है, इसलिये इस चौपाई में उसे 'सूरधीर' कहा गया है।

बिछुरे पाए परदेस में, देखी पिउ अंग छाती।

अब पलक पड़े जो बिछोहा, हाए हाए उड़े ना करे आप घाती॥५७॥

ब्रह्मवाणी के ज्ञान द्वारा आत्माओं ने इस मायावी जगत् में भी अपने उस प्रियतम को पा लिया, जिनसे वियोग हो गया था। चितवनि द्वारा उन्होंने उनकी खुली हुई सुन्दर छाती का भी दीदार कर लिया। अब एक पल के लिये भी यदि उनसे वियोग होता है और आत्म विरह में अपना शरीर नहीं छोड़ देती तो हाय!हाय! कष्ट के साथ कहना पड़ता है कि वह आत्मघात कर रही है अर्थात् अपने आत्मिक कर्तव्य से च्युत होकर अपने छबि को कलंकित कर रही है।

भावार्थ— आत्मा के अन्दर बसी हुई शोभा हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है, इसलिये कहा गया है कि

“खाते पीते उठते बैठते, सोवत सुपन जागृत।

दम न छोड़े मासूक को, जाको होए हक निसबत॥” सिनगार २०/३

किन्तु, इस अनुभूति के पश्चात् भी यदि जीव माया के विकारों में फंस जाय तो आत्मा को मिलने वाले आनन्द का जो अंश प्राप्त कर वह आनन्दित होता था, उससे वह वंचित हो जाता है। इसे ही वियोग कहा गया है। इस जागनी लीला में बाह्य रूप से जीव के सभी कार्यों को आत्मा के साथ ही जोड़ कर कहा जाता है, क्योंकि आत्मा ने उस जीव के तन को धारण किया होता है। वास्तविकता यह होती है कि आत्मा अपने प्रियतम का दीदार कर लेने के पश्चात् एक

पल के लिये भी कभी धनी से अलग नहीं हो पाती किन्तु, जीव के द्वारा होने वाला अपराध आत्मा के नाम से जुड़ जाता है। आनन्द के सागर अक्षरातीत की शोभा को विषय सेवन एवं आलस्य में डूब कर खोना अक्षम्य अपराध है। इसलिये प्रायश्चित्त के रूप में शरीर और संसार के मोह से पूर्णतया अलग हो जाने की बात कही गयी है। यही शरीर को उड़ा देना है। प्रियतम को पाये बिना मृत्यु को प्राप्त कर लेने पर तो पुनर्जन्म भी सम्भव है। यदि विषयों में फंस कर धनी से विमुख हुए जीव को पुनः विरह की अग्नि में जलाकर प्रायश्चित्त की राह पर नहीं चलाया जाता है तो यह आत्मा के लिये कलंक है और उसके उज्ज्वल प्रेम पर अमिट दाग है। इसे ही आत्मघात (स्वयं को मारना) कहते हैं।

मुख न फेरें मोमिन, छाती इन सुभान।

ए करते याद अनुभव, क्यों न आवे असल ईमान ॥६०॥

श्री राजजी की छाती की शोभा से ब्रह्ममुनियों की दृष्टि कभी भी हटती नहीं है। इस अनुभव को याद करने पर परमधाम जैसा ईमान क्यों नहीं आता है?

भावार्थ— चितवनि की अवस्था में आत्मा शरीर, संसार और जीव भाव से परे हो जाती है, किन्तु चितवनि के टूटते ही वह लौकिक भावों में खो जाती है अर्थात् चितवनि में आत्मा के अन्तःकरण की लीला चल रही होती है, जबकि टूटने के पश्चात् जीव के अन्तःकरण तथा इन्द्रियों की लीला शुरू हो जाती है। इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि श्री राज जी की छाती को देखते समय, जिस प्रकार उसे श्री राजजी एवं अपनी परात्म का नूरी तन दिख रहा था, और वह अपनी आत्मा के स्वरूप को भी परात्म के प्रतिबिम्बित स्वरूप में देखकर प्रियतम से एकाकार हो रही थी, वही स्थिति अखण्ड रूप से क्यों नहीं बनी रहती? चितवनि वाली स्थिति का अखण्ड रूप से बने रहना ही असल ईमान में बने रहना है, जो इस संसार में सम्भव नहीं है। इस चौपाई में प्रश्नवाचक रूप में यही बात कही गयी है।

मासूक छाती निरखते, क्यों याद न आवे अर्स।

विचार किए आवे अनुभव, जाको दिल कह्यो अरस—परस ॥६१॥

श्री राजजी की छाती की शोभा को देखते समय तो आत्मा परमधाम के भावों में डूबी रहती है, किन्तु चितवनि टूटने के पश्चात् परमधाम की वैसी याद क्यों नहीं आती ? जिन ब्रह्ममुनियों के हृदय को श्री राज जी के हृदय से एकाकार हुआ माना गया है, उनको तो परमधाम का विचार करने मात्र से ही अनुभव आना चाहिए।

भावार्थ— चितवनि में जो आत्मा इस पंच भौतिक शरीर, जीव और संसार को भूल कर एक मात्र परमधाम की शोभा और आनन्द में डूबी होती है, वही चितवनि के टूटते ही जीव के माध्यम से माया की लीला को देखने लगती है। यही कारण है कि प्रेम विह्वल होकर चिन्तन करने मात्र से जिन आत्माओं को परमधाम का आभास होने लगता है, उनका जीव यदि मायावी कार्यों में ज्यादा लिप्त हो जाता है तो आत्मा भी उसी को देखने लग जाती है, फिर भी उसके धाम हृदय में युगल स्वरूप की शोभा अखण्ड रूप से बसी रहती है।

हक छाती निपट नजीक है, सेहेरग से नजीक कही।

हक सहूर किए बिना, आड़ी अंतर तो रही।।६८।।

श्री राजजी की छाती तो आत्मा के बहुत ही निकट है, प्राणनली शाहरग से भी अधिक निकट। धाम धनी की चितवनि (सहूर) न होने से ही माया रूपी पर्दे के कारण आत्मा और धनी की छाती के बीच में भेद बना हुआ है।

भावार्थ— सामान्यतः हृद-बेहृद के अनन्त ब्रह्माण्ड से परे परमधाम में विराजमान श्री राज जी की छाती का ध्यान किया जाता है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर वह परमधाम हमारी आत्मा के लिये उतना ही निकट है, जितना जीव के लिये प्राणनली (शाहरग) नजदीक होती है।

हक भी कहे दिलमें, अर्स भी कह्या दिल।

परदा भी कह्या दिलको, आया सहूरें बेवरा निकल।।६९।।

श्री मुखवाणी के चिन्तन और चितवनि (सहूर) से यह निर्णय हो गया है कि आत्मा के हृदय को धाम कहा गया है, जिसमें श्री राज जी विराजमान हैं। इसी प्रकार दिल को पर्दा भी कहा गया है।

भावार्थ— जिस प्रकार चितवनि में आत्मा का दिल परमधाम को देखता है तो उसे धाम की शोभा प्राप्त होती है उसी प्रकार आत्मा का दिल जीव की मायावी लीला को भी देखता है, इसलिये उसे पर्दा भी कहा गया है। पर्दे के दो रूप हैं १—जिसके होने से द्रष्टा और दृश्य के बीच में भेद बन जाय और दृश्य दिखायी न पड़े २—जिसके ऊपर द्रष्टा दृश्य को देख सके, जैसे—टी०वी० या चित्रपट का पर्दा। परात्म का दिल श्री राजजी के दिल रूपी पर्दे पर सम्पूर्ण जागनी लीला को देख रहा है। इसी प्रकार आत्मा अपने दिल रूपी पर्दे पर सम्पूर्ण लीला को देख रही है, किन्तु माया ग्रस्त जीव का दिल वह पर्दा है, जिसके कारण आत्मा के दिल रूपी पर्दे पर परमधाम या युगल स्वरूप की छवि नहीं आ पाती, बल्कि माया दिखने लगती है। जीव के दिल रूपी पर्दे पर केवल माया ही माया है। ब्रह्मवाणी के प्रकाश में कभी-कभी माया का धुंधलका हटता है, किन्तु पूर्ण रूप से तभी हट पायेगा, जब धाम धनी की मेहर होगी और जीव विरह की अग्नि में स्वयं को जलायेगा।

जो पीठ दीजे ब्रह्माण्ड को, हुआ निस दिन हक सहूर।

तब परदा उड़्या फरामोस का, बका अर्स हक हजूर।।७०।।

हे साथ जी! यदि आप इस ब्रह्माण्ड को पीठ दे दीजिए अर्थात् अपनी आत्मिक दृष्टि को इस ब्रह्माण्ड से परे परमधाम में ले चलिये तो माया का यह पर्दा हट जायेगा। इसके साथ ही दिन-रात अखण्ड परमधाम एवं श्री राजजी का दीदार (दर्शन) होता रहेगा और उनसे वार्ता होती रहेगी।

भावार्थ— इस चौपाई से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट होता है कि माया के बन्धनों को काटकर अपनी आत्मा को जागृत करने के लिये एक मात्र चितवनि ही वास्तविक

मार्ग है। इस प्रकरण में सहूर शब्द के कई अर्थ स्पष्ट होते हैं, १—चितवनि २—चिन्तन या आत्म मंथन ३—वार्ता।

इलम सहूर मेहेर हुकम, ए चारों चीजें होएं एक ठौर।

तिन खैंच लिया मता अर्स का, पट नहीं कोई और।।७८।।

ब्राह्मी ज्ञान (खुदाई इल्म), चितवनि द्वारा आत्मिक दृष्टि का खुला होना, धनी की मेहर और हुक्म ये चारों वस्तुएं जिस आत्मा के धाम—हृदय में विद्यमान होती हैं, उसमें परमधाम की सम्पूर्ण निधियां विराजमान हो जाती हैं। उसके और धाम—धनी के बीच किसी भी प्रकार का भेद (पदी) नहीं रह जाता है।

भावार्थ— इस चौपाई में श्री महामति जी की ओर संकेत किया गया है। हब्से में विरह—प्रेम के द्वारा श्री महामति जी का हृदय धाम बन गया। उसमें युगल स्वरूप प्रत्यक्ष रूप में विराजमान हो गये और परमधाम की ब्रह्मवाणी का अवतरण भी होने लगा। धाम धनी ने उन्हें जागनी का उत्तरदायित्व सम्भालने के लिये आदेश (हुक्म) भी दिया। श्री महामति जी के अन्दर परमधाम की सम्पूर्ण निधियां विद्यमान हो गयीं। उनमें और धाम धनी में अब किसी भी प्रकार का भेद नहीं रह गया, इसलिये तो श्रृंगार में कहा गया है कि—

तुम हीं उतर आए अर्स से, इत तुम ही कियो मिलाप।

तुम हीं दर्ई सुध अर्स की, ज्यों अर्स में हो आप।। सिनगार २३/३१

नाम सिनगार सोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो। किरन्तन ६१/१५

प्रकरण १२

लाल जुबां दंत अधुर, हरवटी गौर हंसत।

जब बातून नजरों देखिए, तब रुह सुख पावत।।२६।।

धाम धनी की जिह्वा लाल रंग की है, और अति सुन्दर है। उनके चमचमाते हुए दांत, होंठ एवं अति गौर वर्ण की ठुड्ढी आदि अंग हंसते हुए प्रतीत हो रहे हैं। जब इस अलौकिक शोभा को आत्मिक दृष्टि से देखते हैं तो आत्मा के हृदय में अपार आनन्द होता है।

ए मुख देख सुख पाइए, उपजत है अति प्यार।

देख देख जो देखिए, तो रुह पावे करार।।५१।।

हे साथ जी! यदि आप श्री राज जी के मुखारविन्द की इस अलौकिक शोभा को देखते हैं तो आपको अनन्त आनन्द का अनुभव होगा। यदि आप इस शोभा को बारम्बार देखते हैं तो हृदय में बहुत ही प्रेम प्रकट होता है और आत्मा को आराम (शुक्ल) प्राप्त होता है।

जो देखूं मुख सलूकी, तो चुभ रहे रुह माहें।

ए सुख मुख अर्स का, केहे ना सके जुबां।।५२।।

जब मैं धाम धनी के मुखारविन्द की शोभा को देखती हूँ तो वह शोभा मेरी आत्मा के धाम—हृदय में अखण्ड हो जाती है (बस जाती है)। परमधाम में विराजमान श्री राज जी के इस नूरी मुखारविन्द की शोभा को देखने पर मेरे हृदय में इतना आनन्द आता है कि मैं अपनी

जिह्वा से उसे व्यक्त नहीं कर सकती।

गौर निलवट रंग उज्ज्वल, जाऊं बल बल मुखारविंद।

ए रस रंग छबि देखिए, काढ़त विरहा निकन्द॥५३॥

माथे का रंग उज्ज्वल और अत्यन्त गौर है। मैं धाम धनी के मुखारविन्द की शोभा पर न्योछावर होती हूँ। हे साथ जी! यदि आप श्री राज जी की इस प्रेम की माधुर्यता एवं आनन्द से भरपूर शोभा को देख लेते हैं तो आपके विरह की पीड़ा समाप्त हो जायेगी।

जो मुख सोभा देखिए, तो उपजत रुह आराम।

आठों पोहोर आसिक, एही मांगत है ताम॥५४॥

हे साथ जी! यदि आप इस मुखारविन्द की शोभा को देखते हैं तो आत्मा में बहुत ही आनन्द प्रकट होता है। धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टियों के लिये धनी का दीदार ही भोजन है और उनकी एकमात्र यही इच्छा होती है कि उन्हें आठों प्रहर (दिन-रात) ही पल-पल दीदार (दर्शन) का सुख मिलता रहे।

रुह के नैन खोल के, देखूं दोऊ गाल।

आसिक को मासूक का, कोई भेद गया रंग लाल॥५४॥

मेरी एकमात्र यही इच्छा है कि मैं अपने आत्मिक नेत्रों से श्री राजजी के दोनों गालों की शोभा को देखती ही रहूँ। मेरे दिल में तो अब प्रेमास्पद (माशूक) श्री राजजी के गालों का अति मनोहर लाल रंग अखण्ड भी हो गया है।

प्रकरण १४

नैन देखें नैन रुह के, तिनसों लेवे रंग रस।

तब आवें दिल में मासूक, सो दिल मोमिन अरस-परस॥१६॥

जब आत्मा अपने नयनों से प्रियतम श्री राजजी के नयनों को देखती है, तो वह अनन्त प्रेम और आनन्द का रस पान करने लगती है। इसके पश्चात् आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी की शोभा अखण्ड रूप से विराजमान हो जाती है अर्थात् स्वयं श्री राज जी ही उस धाम हृदय में विराजमान हो जाते हैं। उस स्थिति में आत्मा के दिल और श्री राजजी के दिल दोनों ही एकाकार हो जाते हैं।

भावार्थ— इस चौपाई से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि आत्म-जागृति के लिये चितवनि पूर्ण रूपेण अनिवार्य है। प्रियतम के दर्शन का अधिकार प्रत्येक सुन्दर साथ को है। इसमें वर्ग, प्रान्त और स्थान विशेष के आधार पर किसी भी प्रकार की विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती।

मेरी रुह नैनकी पुतली, तिन नैन पुतली के नैन।

मासूक राखूं तिन बीचमें, तो पाऊं अर्स सुख चैन॥२२॥

मेरी आत्मा उस परात्म रूपी नैन की पुतली है। उस पुतली (आत्मा) के नैन उसका हृदय है, जिसमें यदि मैं अपने प्राण प्रियतम अक्षरातीत को बसा लेती हूँ तो अपने परमधाम का आनन्द

ले सकती हूँ।

भावार्थ—आत्मा के हृदय में धनी की शोभा को बसाने का कथन सागर ११/४६ में किया गया है।

ताथें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।

सूरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइए बल बल॥

यह हृदय जीव के स्थूल और सूक्ष्म हृदय से पूर्णतया भिन्न है। वस्तुतः यह परात्म के दिल का प्रतिबिम्ब है।

दिल मोमिन अर्स तन बीच में, उन दिल बीच ए दिल।

केहेने को ए दिल है, है अर्स दिल असल॥ सि० २६/१४

अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछू नाहे॥ सि० ११/७६

इस चौपाई में स्वयं अपने ऊपर कहकर श्री महामति जी ने सुन्दरसाथ को शिक्षा दी है कि यदि परमधाम का आनन्द पाने की इच्छा है तो युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में बसाना ही होगा।

प्यारे मेरे प्राण के, नैना सुख सागर सलोने।

रेहे ना सकों बिना रंगीले, जो कसूंबड़ी उजलक में॥३२॥

धाम धनी के ये अति मनोहर (सलोने) नयन आनन्द के अनन्त सागर हैं और मेरे प्राणों को बहुत ही प्यारे हैं। उज्ज्वलता में केशरिया मिश्रित अद्भुत रंग वाली इन आंखों की शोभा को देखे बिना तो मैं रह ही नहीं सकती।

भावार्थ—प्रेम भरी (मदहोश) आंखों में केशरियां रंग की झलक दिखने लगती है। इस अलौकिक शोभा को अपने धाम हृदय में बसाने की दृढ़ प्रेरणा श्री महामति जी ने हमें इन चौपाई में दी है।

जब देखों शीतल नजरों, सब ठरत आसिक के अंग।

सब सुख उपजे अर्स में, हक मासूक के संग॥३३॥

जब मेरी दृष्टि परमधाम में विराजमान श्री राज जी के अति मनोहर नयनों की शीतल दृष्टि से जुड़ती (देखती) है, तो मेरे सभी अंगों में प्रेम की शीतलता व्याप्त हो जाती है और स्वयं को धाम धनी के साथ पा कर मुझे सभी प्रकार के आनन्द की प्राप्ति हो जाती है।

भावार्थ— इस चौपाई में उस स्थिति का वर्णन है, जब आत्मा की दृष्टि परात्म का श्रृंगार सजकर परमधाम में पहुँचती है और अपने प्राणवल्लभ के नेत्रों में देखती है। आगे की चौ० ३४, ३५ और ३६ में यही स्थिति दर्शायी गयी है।

मैं नैनो देखूं नैन हक के, हुई चारों पुतली तेज पुन्ज।

जब नैन मिलें नैन नैन में, नूरै नूर हुआ एक गन्ज॥३४॥

जब मैं अपनी आत्मा के नयनों से श्री राज जी के नयनों को देखती हूँ तो हम दोनों की चारों पुतलियों का तेज—पुंज आपस में मिल जाता है। जब मेरे नयनों की दृष्टि परात्म के नयनों और श्री राज जी के नयनों की दृष्टि से मिलती है तो चारों ओर नूर ही नूर का भण्डार

दृष्टिगोचर होता है।

भावार्थ— जब आत्मा की दृष्टि परात्म का श्रृंगार सजकर युगल स्वरूप के सामने उपस्थित होती है तो कभी वह श्री राज जी के नेत्रों की ओर देखती है तो कभी अपनी परात्म के नेत्रों की ओर। इसे ही इस चौपाई के तीसरे चरण में नैनों का नैन-नैन से मिलना कहा गया है।

हक देखें पुतली अपनी, मैं देखूं अपनी पुतलियां।

मैं हक देखूं हक देखें मुझे, यों दोऊ अरस-परस भैयां॥३५॥

धाम धनी अपनी पुतलियों से मुझे देखते हैं तथा मैं अपनी पुतलियों से उन्हें देखती हूँ। मैं श्री राज जी को देखती हूँ तथा श्री राज जी मुझे देखते हैं। इस प्रकार हम दोनों एकाकार से हो जाते हैं।

प्रकरण १६

हकें खेल देखाया याही वास्ते, सुख देखावने अपने अंग।

सुख लेसी बड़ा इस्क का, रुहें ले विरहा मिलसी संग॥१४॥

श्री राजजी ने अपनी अंगनाओं को अपने अंगों का सुख दिखाने के लिये ही यह माया का खेल दिखाया है। अंगनायें इस ब्रह्मवाणी से प्रियतम का विरह लेकर उनसे मिलेंगी और प्रेम का आनन्द लेंगी।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जागृत होने के पश्चात् हृदय में विरह पैदा होता है। जिससे युगल स्वरूप का साक्षात्कार होता है। यही आत्म-जागृति है। इसके पश्चात् आत्मा प्रियतम के प्रेम रस का निरन्तर ही रसास्वादन करती रहती है।

मेरी रुह देखे सहूर कर, जाके नख सिख लग इस्क।

जुबां कैसी तिन होएसी, और बानी बका अर्स हक॥३०॥

मेरी आत्मा परमधाम की चितवनि (चिन्तन) द्वारा प्रियतम की शोभा को देख रही है और यह विचार कर रही है कि जिस अखण्ड परमधाम में धाम धनी के नख से शिख तक अनन्त प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है, उनकी रसना और उससे प्रकट होने वाली वाणी में कितनी प्रेम भरी मिठास होगी ?

ए बेवरा जानें रुहें अर्सकी, जाको हुआ हक दीदार।

जाए सिफायत हुई महंमद की, याको जाने सोई विचार॥३६॥

परमधाम की जिन आत्माओं को श्री राज जी का साक्षात्कार हुआ होता है, वे ही धाम धनी की रसना का विवरण जानती हैं। इन्हीं ब्रह्ममुनियों के लिये मुहम्मद साहिब ने भी अनुशंसा की है। ये ही ब्रह्ममुनि श्री राजजी की रसना के बारे में जानते हैं और उसके बारे में विचार करते हैं।

हक रसना गुन जानें रुहें, जाको निस दिन एही ध्यान।

ए खेल कबूतर क्या जानहीं, हक रसना के बयान॥३७॥

श्री राजजी की रसना के गुणों को तो एकमात्र ब्रह्मसृष्टियां ही जानती हैं, क्योंकि वे ही दिन— रात युगल स्वरूप के ध्यान में खोयी रहती हैं। धाम धनी की रसना के बारे में भला ये माया के जीव (खेल के कबूतर) क्या जान सकते हैं ?

अर्स सुख और भिस्तका सुख, ए खेल में दिए सुख दोए।

इन दोऊ में दिए सुख खेलके, ए हक रसना बिना क्यों होए॥५१॥

इस माया के खेल में धाम धनी ने हमें परमधाम के तथा बहिश्तों के दोनों सुखों का अनुभव कराया है। इसी प्रकार परमधाम में तथा बहिश्त में इस माया के खेल का सुख दिया है। यह सब धाम धनी की रसना से ही सम्भव हो सका है।

भावार्थ— इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री राजजी ने ब्रह्मवाणी द्वारा हमें परमधाम के २५ पक्षों का जो ज्ञान दिया है, उसका आनन्द हम ध्यान (चितवनि) द्वारा प्राप्त कर रहे हैं। इसी प्रकार हम ब्रह्मवाणी के ज्ञान से ध्यान द्वारा बेहद की आठों बहिश्तों का भी अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। इसी को खेल में परमधाम और बहिश्त का सुख प्राप्त करना कहते हैं।

इस जागनी लीला में हमारी आत्मा के साथ जो कुछ भी घटित हो रहा है, उसे धाम धनी के दिल रूपी पर्दे पर हमारी परात्म देख रही है। परमधाम में जागृत हो जाने के पश्चात् परात्म उस लीला को याद करके आनन्दित होगी।

इसी प्रकार सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में हमारे जीवों को इस खेल की सारी बातें याद आ जायेंगी। ब्रह्मात्मा का रूप धारण किया हुआ जीव ब्रज, रास और जागनी लीला की घटनाओं को याद करके आनन्दित हुआ करेगा। इसे ही बहिश्त में खेल का आनन्द लेना कहा गया है। इस सम्बन्ध में सिन्धी १६/१५,१६ में कहा गया है।

इन विध सब हुकमें कर, खेल देखाया खिलवत अंदर।

बातें खिलवत की करीं खेल में, जो गुझ हक के दिल भीतर॥

और खेल की बातें सब, होसी बीच खिलवत।

लेसी खेल का सुख खिलवत में, लिया खेल में सुख निसबत॥

प्रकरण १८

जो एक नंग नीके निरखिए, तो रोम रोम छेदत भाल।

जो लों देखों उपली नजरों, तो लों बदलत नाहीं हाल॥३३॥

यदि पटली के एक नग को भी अच्छी तरह से देख लिया जाय तो शरीर के रोम—रोम में विरह के भाले चुभने लगते हैं। जब तक हम मात्र बाह्य दृष्टि से ही देखते रहेंगे तब तक हमारी रहनी नहीं बदल सकती।

भावार्थ— जब आत्मा किसी नग की शोभा को देख लेती है तो उसका कुछ रस जीव को भी प्राप्त होता है। चितवनि टूटने के पश्चात् जीव उस शोभा को देखने के लिये व्याकुल रहने लगता है। उसकी विरहावस्था बहुत गहन हो जाती है। उसे ऐसा आभास होता है कि जैसे विरह की पीड़ा शरीर के रोम—रोम में भालों के चुभने के समान कष्ट दे रही है। बाह्य (उपली) दृष्टि से देखने का तात्पर्य है— केवल पढ़कर कुछ देर के लिये भावों में खो जाना। जब तक

शरीर, अन्तःकरण और जीव के क्रिया कलाप स्थिर नहीं होते और आत्मिक दृष्टि खुलती नहीं, तब तक उसे चितवनि की संज्ञा नहीं दी जा सकती। युगल स्वरूप के भावों में डूब जाना भावलीनता है। इसे चितवनि कदापि नहीं कहा जा सकता। चितवनि का आशय है— आत्म दृष्टि से देखना, जबकि भावलीनता से तात्पर्य है— अन्तःकरण के द्वारा चिन्तन, मनन, विवेचन और अहंपना करना।

ए विचार कीजे जब दिल से, रूह की खोल नजर।

कड़ी कड़ी के रंग देखिए, गिनते होए जाए फजर॥५२॥

हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि खोलकर प्रत्येक कड़ी के रंग को देखते हैं और अपने अन्तःकरण में उसका विचार करते हुए कड़ियों के रंगों को गिनना प्रारम्भ करते हैं तो गिनते-गिनते उजाला हो जाता है (माया का अन्धकार मिट जाता है)।

भावार्थ— यद्यपि आत्म-दृष्टि से केवल देखा जाता है और ज्ञान रूप में उसका अनुभव आत्मा के अन्तःकरण के द्वारा किया जाता है। यहां जीव के अन्तःकरण का कोई प्रसंग नहीं है। जीव का अन्तःकरण तो जीव को होने वाले अनुभव का ही मात्र चिन्तन-मनन करता है। “आत्म अन्तस्करण विचारिये, अपने अनुभव का जो सुख” सागर का यह कथन इसी ओर संकेत कर रहा है।

कड़ियों के रंगों को गिनने का तात्पर्य है— चितवनि की गहराई में पहुँचना। इस स्थिति में आत्मा का जागृत हो जाना स्वाभाविक ही है, जिससे हृदय में ब्रह्मवाणी के परम गुह्य रहस्यों का उजाला हो जाता है और माया का अन्धकार समाप्त हो जाता है। इसे ही इस चौपाई के चौथे चरण में फजर होना कहा गया है।

इन जिमी आसिक क्यों रहे, वह खिन में डारत मार।

तो लों रहे सहूर में, जो लों रखे रखनहार॥६६॥

धनी के प्रेम में डूबी हुई आत्मा भला इस संसार के क्षणिक सुखों में कैसे फंसी रह सकती हैं ? वह तो अपने प्रियतम की शोभा में डूबकर स्वयं को क्षण भर में ही मार डालती है अर्थात् अपने शरीर और संसार के मोह से परे हो जाती है। जब तक धाम धनी अपने आदेश से उसके शरीर को रखते हैं, तब तक वह अपने प्रियतम की शोभा के चिन्तन-मनन या चितवनि में लगी रहती है।

एही काम आसिकन के, फेर फेर करे बरनन।

विध विध सुख सरूप के, सुख लेवें सिनगार भिन भिन॥७०॥

धनी के प्रेम में खोई हुई आत्माओं का यही मुख्य काम होता है कि वे युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का बार-बार वर्णन करती हैं। इस प्रकार वे अपने जीव के अन्तःकरण में श्री राजश्यामा जी के अनेक प्रकार के सुखों का अनुभव करती हैं। पुनः चितवनि में डूबकर अपने प्राण-प्रियतम के भिन्न-भिन्न श्रृंगारों को आत्मसात् करके आनन्दित होती हैं।

भावार्थ— जिस प्रकार चितवनि में आत्मा को अनुभूत होने वाले आनन्द का अंश मात्र ही जीव को अनुभव में आता है, उसी प्रकार जीव द्वारा ब्रह्मवाणी के चिन्तन-मनन से जो आनन्द

प्राप्त होता है, वह मात्र उसके लिये ही होता है, आत्मा के लिये नहीं। आत्मा अपने मूल स्वरूप में आनन्दमय है, और जीव के ऊपर विराजमान होकर इस खेल को देख रही है। जीव द्वारा ग्रहण किए गए ज्ञान या सुख-दुःख को वह अवश्य जान जाती है, किन्तु मात्र द्रष्टा होने के कारण वह स्वयं कुछ भी नहीं कर सकती और न चिन्तन-मनन से मिले हुए जीव के आनन्द को प्राप्त कर पाती है। इस स्थिति में आत्मा के ऊपर जीव भाव हावी रहता है। अक्षरातीत की मेहर से चितवनि की गहन स्थिति में जब आत्मा जीव भाव से परे हो जाती है तो वह अपने को परात्म के श्रृंगार में पाती है और अपने प्रियतम से एक रूप हो जाती है, किन्तु मात्र ज्ञान की अवस्था में उसे यह उपलब्धि नहीं हो पाती।

यह स्थिति वैसे ही होती है, जैसे सामने स्थित हिमालय को भी आंखों के सामने पर्दा होने के कारण नहीं देखा जा सकता। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार के पठन या श्रवण से जीव और उसके अन्तःकरण को आनन्द मिलता है तथा चितवनि में आत्मा को प्रत्यक्ष आनन्द मिलता है एवं जीव को अंश मात्र।

एही आहार आसिकन का, एही सोभा सिनगार।

झीलें सागर वाहेदत में, मेहेर सागर अपार।।७१।।

प्रियतम की शोभा-श्रृंगार का दीदार (दर्शन) ही ब्रह्मसृष्टियों का आहार है। इसे प्राप्त करके वे अपने धाम धनी की अपार मेहर एवं वहदत के सागर में क्रीड़ा (स्नान) करती हैं।

भावार्थ— जब युगल स्वरूप की छवि आत्मा के धाम हृदय में बस जाती है तो उसे अपने परात्म स्वरूप का भी साक्षात्कार हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह वहदत के स्वरूपों को प्रत्यक्ष देखती है। प्रेममयी चितवनि की गहराइयों में डूबने पर वह विज्ञानमयी (मारिफत) अवस्था को प्राप्त कर लेती है, जिसमें वह आठों सागरों के रसपान के साथ-साथ परम सत्य (मारिफत) के गुह्य रहस्यों को भी जान जाती है। यह ही वहदत एवं मेहर के सागर में क्रीड़ा करना है।

महामत देखे विवेकसों, हक वस्तर और भूखन।

सब अंग सोभा अंगों की, ज्यों दिल रुह होए रोसन।।७२।।

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ! अब मेरी आत्मा अपने प्राण वल्लभ के वस्त्रों, आभूषणों तथा सभी अंग-प्रत्यंगों की शोभा को विवेक पूर्वक देख रही है ताकि मेरी आत्मा और उसका अन्तःकरण दोनों ही धनी के नूर से प्रकाशमान हो जाये।

भावार्थ— विवेक पूर्वक देखने का तात्पर्य है— पंचभौतिक शरीर, अन्तःकरण, जीव और संसार के मोह से अलग होकर प्रेम की निर्विकारमयी दृष्टि से देखना। इस चौपाई में सुन्दरसाथ को परोक्ष रूप (पर्दे) में यह शिक्षा दी गयी है कि वे अपने धाम हृदय में श्री राज जी के वस्त्रों एवं आभूषणों सहित अंग-प्रत्यंग की शोभा को बसायें, जिससे उस शोभा के नूर से उनकी आत्मा एवं अन्तःकरण प्रकाशित होते रहें। श्री महामति जी ने तो इस उपलब्धि को हृदय में ही प्राप्त कर लिया था।

प्रकरण १६

सब अंग देखे रस भरे, प्रेम के सुख पूरन।

रूह सोई जाने जो देखहीं, ए पीवत रस मोमिन॥२०॥

मैंने धाम धनी के सभी अंगों को प्रेम के रस से ओत-प्रोत (भरा हुआ) देखा है। उनमें प्रेम का पूर्ण आनन्द विद्यमान है। इस बात को वही आत्मा जानती है, जिसने अपने आत्म-चक्षुओं से प्रियतम का दीदार किया है। प्रेम और आनन्द के इस रस का पान मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही करती हैं।

रूह आसिक जिन अंग अटकी, छूटत नहीं क्यों ए सोए।

ए किसी बातों आसिक सों, अंग मासूक जुदे न होए॥२२॥

प्रियतम के प्रेम में खोयी रहने वाली आत्मा जिस भी अंग की शोभा में अटक जाती है, तो किसी भी तरह से वह उस शोभा से अलग नहीं हो पाती। श्री राज जी का वह अंग भी किसी भी प्रकार (बाधा) से आत्मा के धाम हृदय से निकल नहीं पाता।

भावार्थ— चितवनि की गहराइयों में डूब जाने के पश्चात् आत्मा के धाम हृदय में धनी की जो शोभा एक बार भी बस (अखण्ड हो) जायेगी, वह किसी भी स्थिति में उसके हृदय से नहीं निकल सकती, भले ही माया अपनी सारी शक्ति क्यों न लगा दे।

स्वर भूखन मधुरे सोहे, ए तरह चलत जो हक।

ए जो देखे रूह नजर भर, तो चाल मार डारत मुतलक॥६०॥

श्री राज जी जब इस तरह की प्रेममयी चाल से चलते हैं तो अत्यधिक मधुर स्वरों की झनकार करने वाले आभूषण बहुत अधिक सुशोभित होते हैं। इस अनुपम चाल को यदि कोई आत्मा अच्छी तरह से देख ले तो धनी की यह चाल उसे निश्चित रूप से अपने प्रेम-बाणों से मार डालती है।

भावार्थ— मार डालने का तात्पर्य है— उसे शरीर और संसार के मोहजाल से हटाकर अपने में डुबो लेना। यह प्रसंग इस जागनी ब्रह्माण्ड का है, जिसमें आत्मा चितवनि में डूबकर इस चाल को देख सकती है।

जेता मता हक का, सो सब अर्स में देख।

सो सब मोमिन दिल में, पाइए सब विवेक॥६३॥

हे मेरी आत्मा! अक्षरातीत की जो भी निधियाँ हैं, उन सभी को तू परमधाम में देख। आत्म-दृष्टि से (विवेक पूर्वक) उन सम्पूर्ण निधियों को ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय में भी देखा जा सकता है।

द्रष्टव्य— श्री महामति जी ने इस चौपाई में प्रत्यक्षतः स्वयं के लिये कहा है, किन्तु परोक्ष में सन्देश सुन्दरसाथ के लिये है। अपनी आत्म दृष्टि को शरीर और संसार से परे कर लेना ही वास्तविक विवेक है।

प्रकरण २०

हक इलम के जो आरिफ, मुख नूरजमाल खूबी चाहें।

चाहें चाहें फेर फेर चाहें, देख देख उड़ावे अरवाहें।।१।।

श्री महामति जी कहते हैं कि जो ब्रह्मवाणी के ज्ञाता होते हैं, वे श्री राज जी के मुखारविन्द की अद्वितीय शोभा को बारम्बार देखते रहना चाहते हैं। उस शोभा को देख-देखकर वे स्वयं को उसमें डुबो देते हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में सुन्दरसाथ को यह विशेष रूप से शिक्षा दी गयी है कि ब्रह्मवाणी के शब्द ज्ञान को ग्रहण कर लेने मात्र से ही आत्मा पूर्ण रूप से जागृत नहीं होगी, बल्कि आत्म-जागृति के लिये धाम धनी के मुखारविन्द की शोभा को अपने धाम हृदय में बसाना ही होगा।

एही काम आसिकन का, हक इलम एही काम।

नूरजमाल का जमाल, छोड़ें न आठों जाम।।२।।

अक्षरातीत के मुखारविन्द से अवतरित होने वाली इस ब्रह्मवाणी तथा ब्रह्मात्माओं का एकमात्र कार्य (लक्ष्य) है—‘धाम धनी की शोभा को अष्ट प्रहर अपने हृदय में बसाये रखना’।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी प्रियतम की शोभा को हृदय में बसाने का ज्ञान देती है तथा आत्मा का प्रेम उस शोभा को आत्मसात् कराता है।

खाते पीते उठते बैठते, सोवत सुपन जाग्रत।

दम न छोड़ें मासूक को, जाको होए हक निसबत।।३।।

जिनका धनी के चरणों से अखण्ड सम्बन्ध होता है वे खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते या स्वप्न में भी पल भर के लिये भी अपने प्राण प्रियतम को अपने धाम हृदय से अलग नहीं करते।

भावार्थ— आत्मा के धाम हृदय में जो शोभा एक बार भी बस जायेगी, वह निद्रा या स्वप्न की अवस्था में भी उससे पल भर के लिये भी अलग नहीं हो सकेगी। हाँ! जीव या उसके दिल को वह शोभा विस्मृत रहेगी, क्योंकि नींद की अवस्था में तमोगुण के प्रभाव से जीव का अन्तःकरण क्रियाहीन हो जायेगा। जीव अन्तःकरण के ही माध्यम से ज्ञान का अनुभव करता है। समाधि अवस्था में त्रिगुणातीत अवस्था होती है, जिसमें आत्मा को मिलने वाले आनन्द का जीव रसपान करता है, किन्तु नींद में वह स्वयं को भूला रहता है। इसके विपरीत आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब होने तथा खेल की द्रष्टा होने से इन बन्धनों से सर्वदा ही परे रहती है।

हक बरनन फेर फेर करें, फेर फेर एही बात।

एही अर्स रूहों खाना पीवना, एही वतन बिसात।।४।।

परमधाम की आत्माएं श्री राज जी की शोभा का बारम्बार वर्णन करती हैं। उनके चिन्तन में बार-बार यही बात गूँजती रहती है। उनका भोजन और जल पीना भी यही है। प्रियतम की शोभा का ज्ञान ही उनके लिये परमधाम की अनमोल निधि है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि ब्रह्मसृष्टियों का भोजन करना और जल-पीना क्या है ? इस चौपाई में तो धाम धनी की शोभा का वर्णन और चिन्तन करने को ही भोजन करना और जल पीना कहा गया है, जबकि सागर ५/६० में प्रियतम के दीदार को भोजन करना तथा प्रेम में डूबने को जल पीना कहा गया है। क्या यह विरोधाभास नहीं है?

खाना दीदार इनका,यासों जीवें लेवें स्वांस।

दोस्ती इन सरूप की, तिनसे मिटत प्यास॥

इसका समाधान यह है कि अध्यात्म की प्राथमिक सीढ़ी के रूप में ज्ञान का चिन्तन-मनन ही जीव का आहार एवं पानी पीना है। आत्म-जागृति के शिखर पर पहुंचने के लिये जीव के अन्तःकरण द्वारा होने वाले चिन्तन-मनन से भी परे चितवनि की राह अपनानी पड़ेगी, जिसमें आत्मिक दृष्टि अपने प्राण वल्लभ का दीदार करती है और आत्मा के धाम हृदय में वह शोभा अखण्ड हो जाती है। उस स्थिति में मुख से अधिक बोलना सम्भव नहीं होता। क० हि० ६/२१ का यह कथन इस सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण है—

‘जब मैं हुती विरह में, तब क्यों मुख बोल्यो जाए।’

प्रेम की गति तो इससे भी न्यारी हैं। क० हि० ७/६ का कथन है—

नाहीं कथनी इस्क की, और कोई कथियो जिन।

इस्क तो आगे चल गया, सब्द समाना सुन॥

यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि ज्ञान का कथन मात्र जीव के अन्तःकरण एवं इन्द्रियों द्वारा ही होता है, जबकि प्रियतम के दीदार में आत्मा के अन्तःकरण की लीला होती है। आगे की चौपाई में यह बात स्पष्ट कर दी गई है।

जेती रूहें आसिक, रेहेत हक खूबी के माहें।

रूह को छोड़ के वजूद, कोई जाए न सके क्यांहे॥५॥

परमधाम की जो भी ब्रह्मसृष्टियां हैं, वे एकमात्र अपने प्राणप्रियतम की शोभा में ही डूबी रहती हैं। वे आत्मा के द्वारा होने वाली प्रेम लक्षणा भक्ति को छोड़कर शरीर के द्वारा होने वाले कर्मकाण्डों में किसी प्रकार भी नहीं फंसती।

एही हक इलम को लछन, आसिकों एही लछन।

एही इलम इस्क के आरिफ, सोई अर्स रूह मोमिन॥६॥

अक्षरातीत की ब्रह्मवाणी का गुण (लक्षण) है, आत्मा को धनी की शोभा में लगाना। इसी प्रकार आत्मा (आशिक) का लक्षण (गुण) है प्रियतम की शोभा को अपने हृदय में बसा लेना। इस प्रकार प्रेम और ज्ञान (इश्क और इल्म) को जो यथार्थ रूप से जानते हैं अर्थात् ज्ञान और प्रेम को जो धाम धनी की शोभा में केन्द्रित कर देते हैं, उनमें ही परमधाम की आत्मा विराजमान होती है।

बरनन करो रे रूहजी, मासूक मुख सुन्दर।

कोमल सोभा अलेखे, खोल रूह के नैन अंदर॥७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! तू अपने आन्तरिक नेत्रों को खोलकर प्रियतम

श्री राजजी के अति कोमल तथा सुन्दर मुख को देख और शब्दों से परे उनकी जो शोभा है, उसका वर्णन कर।

प्रकरण २१

नूर सोभा नूर जहूर, और न सोभा इत।

देखो अर्स तन अकलें, ए सरूप वाहेदत॥२८॥

अक्षरातीत की शोभा नूरमयी है। उनके स्वरूप से सर्वदा ही नूरी ज्योति चारों ओर फैलती रहती है। नूर के अतिरिक्त यहां अन्य किसी की शोभा नहीं है। हे साथ जी! अपने परात्म के तन तथा वहां की बुद्धि से वहदत (एक दिल) के स्वरूप श्री राज जी की शोभा को देखिए।

भावार्थ— परात्म के तन और बुद्धि से धाम धनी की शोभा को देखने का भाव है— परात्म का श्रृंगार सजकर। यह प्रसंग चितवनि का है, जिसमें आत्मा परात्म का श्रृंगार सजती है और अपने प्राणप्रियतम का दीदार करती है। सागर ७/४१ में कहा गया है—

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम संग लेय के, विलसिए संग खसम॥

इस संसार में आत्म-दृष्टि से ही देखा जायेगा, किन्तु परात्म के श्रृंगार में। जब तक जागनी लीला चल रही है, तब तक परात्म से देखना सम्भव नहीं है, क्योंकि परात्म के तनों में फरामोशी है, और उनमें जागृति एक साथ ही होगी।

और रुहों की सूरतें, जो असल अर्स में तन।

सो सहूर कीजे हक इलमें, देखो अपना तन मोमिन॥५१॥

आत्माओं के मूल तन परात्म हैं, जो परमधाम में विद्यमान हैं। हे साथ जी! ब्रह्मवाणी के ज्ञान से इसका चिन्तन कीजिए और चितवनि द्वारा परमधाम (मूल मिलावे) में विद्यमान अपने मूल तन को देखिए।

नख सिख लों बरनन करूं, याद कर अपना तन।

खोल नैन खिलवत में, बैठ तले चरन॥११४॥

हे मेरी आत्मा! तू अपनी परात्म का श्रृंगार सज कर धनी के चरणों में बैठ जा और अपने आत्मिक नेत्रों को खोल कर मूल मिलावे में अपने प्रियतम को देख, ताकि तू अपने प्राण वल्लभ की नख से शिख तक की शोभा का वर्णन कर सके।

तो ए क्यों आवे बानी में, कर देखो सहूर हक।

ए अर्स तनों विचारिए, तुम लीजो बुध माफक॥१६४॥

हे साथ जी! चितवनि में अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर श्री राजजी की शोभा को देखिए तथा अपनी आत्मा के अन्तःकरण में इसका विचार कीजिए। पुनः जब अपनी बुद्धि द्वारा चितवनि में देखी गयी शोभा के बारे में विचार करेंगे तो यही निर्णय निकलेगा कि धाम धनी के वस्त्रों तथा आभूषणों की शोभा को शब्दों में व्यक्त किया ही नहीं जा सकता।

भावार्थ— आत्मा के अन्तःकरण द्वारा चिन्तन—मनन केवल चितवनि में होता है तथा

सामान्य अवस्था में होने वाला चिन्तन-मनन जीव के अन्तःकरण द्वारा होता है। इस सम्बन्ध में सागर १०/४१ में कहा गया है कि—

आतम अन्तस्करण विचारिये, अपने अनुभव का जो सुख।

बढ़त बढ़त प्रेम आवहीं, परआतम सनमुख॥

परात्म का तन तो इस समय फरामोशी में हैं। उसके द्वारा विचार नहीं किया जा सकता। इस चौपाई के तीसरे चरण का आशय यह है कि चितवनि में आत्मा को परात्म का श्रृंगार सजाकर धनी की शोभा को देखते हुए आत्मा के ही अन्तःकरण में विचार करना चाहिए। चौथे चरण में जीव की बुद्धि के लिये संकेत किया गया है।

अब चरन कमल चित्त देय के, बैठ बीच खिलवत।

देख रुह नैन खोल के, ज्यों आवे अर्स लज्जत॥२१०॥

हे मेरी आत्मा! अब तू प्राण वल्लभ अक्षरातीत के चरण कमलों में अपना चित्त (दिल) लगा। परात्म का श्रृंगार सजकर अपनी आत्मिक दृष्टि से तू मूल मिलावे में पहुंच जा और अपने आत्म-चक्षुओं को खोलकर धाम धनी को देख, जिससे तुझे परमधाम की शोभा और आनन्द का स्वाद मिल सके।

भावार्थ— चित्त लगाने का तात्पर्य दिल लगाने से होता है, जबकि चितवनि लगाने का भाव होता है— आत्मिक नेत्रों से देखना। चित्त और चित् दोनों अलग हैं। चित् का आशय आत्म चैतन्य से है।

इत बैठ निरख चरन को, देख चकलाई चित्त दे।

नरम तली अति उज्जल, रुह तेरा सुख दायक ए॥२११॥

अब तू अपने आत्म स्वरूप से मूल मिलावे में बैठ जा और ध्यान पूर्वक प्रियतम के चरणों की सुन्दरता को देख। हे मेरी आत्मा! तू धाम धनी के चरणों की अति उज्ज्वल कोमल तलियों (तलुओं) को देख। ये कोमल-कोमल तलियां ही तो तुझे सारा आनन्द देने वाली हैं।

भावार्थ— परात्म का प्रतिबिम्ब ही आत्मा है। चितवनि आत्मिक दृष्टि से ही की जाती है। आत्मिक दृष्टि के मूल मिलावे में पहुंचने को आत्म-स्वरूप का ही पहुंचना कहते हैं, किन्तु उसका श्रृंगार परात्म का ही होता है।

प्रकरण २२

ए रुह के नैनों देखिए, नाजुक कमर निपट।

अति देखी सुन्दर चढ़ती, कही जाए न सोभा कटि॥३७॥

हे साथ जी! अपनी आत्मा के नेत्रों से श्री राजजी की कमर की शोभा को देखिए जो अत्यन्त कोमल है। यह शोभा पल-पल बहुत अधिक बढ़ती हुई ही दिखती है। कमर की इस अद्वितीय शोभा का शब्दों में वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

नाजुक सोभा हक की, जो रुह के आवे नजर।

तो अबहीं तोको अर्स की, होए जाए फजर॥७६॥

हे मेरी आत्मा! यदि धाम धनी की अति कोमल शोभा का तुझे साक्षात्कार हो जाय, तो अभी तुम्हारे हृदय में परमधाम के अखण्ड ज्ञान और शोभा का उजाला फैल जायेगा।

भावार्थ—इस चौपाई में श्री महामति जी ने स्वयं को सम्बोधित कर सुन्दर साथ को जागृत होने के लिये प्रेरित किया है। यही प्रसंग चौ० ८०—८३ तक में है। परमधाम का उजाला होने का तात्पर्य है—पूर्णतया सत्य ज्ञान तथा सम्पूर्ण परमधाम की शोभा का धाम—हृदय में अखण्ड हो जाना।

ज्यों सूरत दिल देखत, त्यों रूह जो देखे सूरत।

बेर नहीं रूह लज्जत, तेरे अंग जात निसबत॥८०॥

हे मेरी आत्मा ! जिस प्रकार तेरी परात्म का दिल श्री राज जी की शोभा को देख रहा है, उसी प्रकार यदि तू भी धनी के स्वरूप को देखने लग जाये, तो तुझे प्रियतम के प्रेम, सौन्दर्य और आनन्द का स्वाद आने में एक पल की भी देर न लगे, क्योंकि तुम्हारे अंग का परात्म और युगल स्वरूप से अखण्ड सम्बन्ध है।

भावार्थ— मूल मिलावे में सखियों की नजरें श्री राजजी की नजरों से मिली हुई हैं और वे धाम धनी के दिल रूपी पर्दे पर माया का खेल देख रही है। दिल के निर्देश पर ही इन्द्रियों से कार्य होता है। यद्यपि आंखें धाम धनी की ओर ही खुली हुई हैं, किन्तु श्री राजजी उन्हें दिखायी नहीं पड़ रहे हैं। श्रीमुखवाणी में यह बात इस प्रकार कही गयी है— नजरों देखें जहान॥

भले ही धाम धनी परात्म के नेत्रों (दिल) को दिखायी नहीं पड़ रहे हैं, परन्तु वे देख तो उन्हीं की ओर रहे हैं। इसी प्रकार, इस चौपाई में कहा गया है कि जैसे परात्म का दिल धाम धनी की ओर देख रहा है, वैसे ही यदि आत्मा का भी दिल (नेत्र) देखने लगे तो आत्मा जागृत हो जायेगी और उसे परमधाम का सारा स्वाद मिलने लगेगा।

अन्तस्करन आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥ सा० ११/४४

यद्यपि ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश में जीव का दिल श्री राजजी की शोभा का भाव दिल में लेता है और आत्मा का दिल कुछ अंशों में उसे आत्मसात कर लेता है। इस प्रकार आत्मा के दिल में भाव दृष्टि से तो देखना माना जा सकता है, किन्तु यथार्थ दृष्टि से नहीं। चितवनि की गहराइयों में ही आत्मा के दिल द्वारा धनी की शोभा को देखा जाता है, किन्तु इसे आत्मा के द्वारा ही देखा हुआ माना जायेगा।

सि. २२/८० में परात्म के दिल द्वारा मात्र देखने की बात कही गयी है, अनुभव करने की नहीं। परात्म का प्रतिबिम्ब आत्मा है और परात्म के दिल का प्रतिबिम्ब आत्म का दिल। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि इस चौपाई में परात्म के दिल (नेत्र) द्वारा ही देखने का प्रसंग है, भले ही वह न दिख रहे हो। जैसा कि खिलवत की इस चौपाई में भी कहा गया है—

बैठी अंग लगाए के, ऐसी करी अन्तराए।

ना कछु नैनों देखत, ना कछु आप ओलखाए॥ खि०। १/३

परात्म भले ही धाम धनी के दिल रूपी पर्दे पर संसार की लीला को देख रही है, किन्तु उसकी नजर तो श्री राजजी से मिली ही हुई है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है कि आत्मा की भी दृष्टि श्रीराजजी की नजरों से मिल जाये तो उसकी जागृति में एक पल भी नहीं लगेगा।

तेरा दिल लग्या ज्यों सूरत को, त्यों जो सूरतें रूह लगे।

तो अबहीं ले रूह लज्जत, एक पलक में जगे॥८२॥

हे मेरी आत्मा! जिस प्रकार तुम्हारी परात्म के दिल की नजरें (दृष्टि) श्री राजजी की नजरों से मिली हुई हैं, उसी प्रकार यदि तुम्हारी भी दृष्टि श्री राजजी से मिल जाय अर्थात् उनको देखने लगे तो अभी मात्र पल भर में ही तू जागृत हो जायेगी—और तुझे परमधाम का सारा स्वाद मिलने लगेगा।

फेर फेर मेहेबूब देखिए, लगे मीठड़ा मुख मासूक।

अंग गौर जोत अंबर लों, छब देख दिल होत न भूक भूक॥८७॥

हे साथ जी! प्रियतम की शोभा को बार बार देखिए। धाम धनी का मुखारविन्द कितना प्यारा लगता है ? उनके गोरे अंगों की ज्योति आकाश तक फैली हुई है। ऐसी अनुपम शोभा को देखकर दिल टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाता है?

जो होवे अरवा अर्स की, सो इन कदम तले बसत।

सराब चढ़े दिल आवत, सो रूह निस दिन रहे अलमस्त॥११७॥

जो भी परमधाम की आत्मा होती है, वह हमेशा ही धनी के चरणों में वास करती है, अर्थात् उसका ध्यान हमेशा ही श्रीराज श्यामा जी के चरणों की शोभा में डूबा रहता है। जब उसके हृदय में प्रियतम के प्रेम का नशा छा जाता है, तो दिन-रात अखण्ड आनन्द में डूबी रहती है।

प्रकरण २३

और न पावे पैठने, इत बका बीच खिलवत।

बका अर्स अजीम में, कौन आवे बिना निसबत॥२॥

ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त परमधाम के मूल मिलावे में अन्य कोई भी नहीं आ सकता। बिना मूल सम्बन्ध के अखण्ड परमधाम में भला और कौन आ सकता है ?

भावार्थ— केवल परमधाम की आत्मायें ही प्रेम-मार्ग पर चल कर चितवनि द्वारा मूल मिलावे में पहुंचती हैं। जीव-सृष्टि का रुझान चितवनि द्वारा मूल मिलावे में विराजमान युगल स्वरूप के साक्षात्कार की ओर होता ही नहीं है। शरियत (कर्मकाण्ड) एवं तरीकत के बन्धनों को तोड़ पाना उसके लिये टेढ़ी खीर होती है।

करना दीदार हक का, एही मोमिनों ताम।

पानी पीवना दोस्ती हक की, इनों एही सुख आराम॥६६॥

श्री राज जी का दर्शन ही आत्माओं का भोजन है तथा श्री राज जी से गहन आन्तरिक

प्रेम ही पानी पीना है। अंगनाओं को इसी में अखण्ड सुख का अनुभव होता है।

आसिक की एही बंदगी, जाहेर न जाने कोए।

और आसिक भी न बूझहीं, एक होत दोऊ से सोए॥६८॥

ब्रह्मसृष्टियों के द्वारा की जाने वाली भक्ति भी चितवनि से ही शुरू होती है, जिसे प्रत्यक्ष रूप में कोई दूसरा नहीं जान पाता। प्रियतम के प्रेम में डूबी हुई आत्मा को तो यह भी पता नहीं चल पाता कि वह धनी से एक रूप कैसे हो गयी?

भावार्थ— कर्मकाण्डमयी भक्ति की जानकारी तो सभी को हो जाती है, किन्तु रात के अन्धेरे में अकेले की जाने वाली इस प्रेममयी चितवनि को धाम धनी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जान पाता।

इत आंखें चाहिए हक इलम की, तो हक देखिए नैना बातन।

नैना बातून खुलें हक इलमें, ए सहूर है बीच मोमिन॥१०६॥

यदि तारतम ज्ञान की दृष्टि मिल जाती है तो आत्म-दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिससे अक्षरातीत का दर्शन होता है। ब्रह्ममुनियों का चिन्तन यही कहता है कि ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश में ही अन्तर्दृष्टि (आत्म-दृष्टि) खुलती है।

भावार्थ— इस चौपाई से यही निष्कर्ष निकलता है कि अक्षरातीत को पाने के लिये ब्रह्मवाणी का चिन्तन और चितवनि ही दो वास्तविक साधन हैं, जिन्हें ज्ञान और प्रेम का स्वरूप कहते हैं। इसके अतिरिक्त कर्मकाण्ड के अन्य साधनों से प्रियतम परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो सकता।

प्रकरण २४

ज्यों ज्यों होवे अर्स नजीक, खेल त्यों त्यों होवे दूर।

यों करते छूट्या खेल नजरों, तो रुहें कदमै तले हजूर॥१३॥

चितवनि में डूबने पर जैसे जैसे हृदय में परमधाम की शोभा बसती जाती है, वैसे-वैसे हृदय से माया का प्रभाव (खेल) दूर होता जाता है। इस प्रकार चितवनि में डूबते रहने पर आत्म दृष्टि से यह मायावी जगत हट जाता है और ब्रह्मसृष्टियां स्वयं को मूल मिलावे में धनी के चरणों में बैठे हुए अनुभव करती हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात स्पष्ट रूप से दर्शायी गयी है कि आत्म जागृति के लिये प्रेममयी चितवनि के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

अर्स रुहें हक बिना न रहें, विरहा न सहें एक खिन।

जब इलमें हुई अर्स बेसकी, रुहें रहें न बिना वतन॥२०॥

परमधाम की आत्मायें अपने प्राणवल्लभ के बिना इस संसार में नहीं रह सकती। एक क्षण के लिये भी प्रियतम का वियोग सह पाना उनके लिये सम्भव नहीं है। ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जब वे पूर्णतया संशय रहित हो जाती हैं अर्थात् परमधाम की यथार्थ पहचान कर लेती हैं तो चितवनि में डूबकर निजधाम का रस लिए बिना वे नहीं रह पातीं।

भावार्थ—यद्यपि सभी आत्मायें एक साथ ही परमधाम जायेंगी, किन्तु, इस खेल में एक क्षण भी विरह न सह पाने का अर्थ है 'अपने धाम हृदय में उनकी अनुभूति करना'। इसके बिना आत्माओं के लिये यह संसार निरर्थक है। इसी प्रकार चौथे चरण का भी आशय धाम हृदय में अखण्ड परमधाम की शोभा देखने से है, साक्षात् जाने से नहीं।

दुनियां चौदे तबक में, किन पाई न बका तरफ।

तिन अर्स में बैठाए हमको, जाको किन कह्यो ना एक हरफ॥३४॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में आज दिन तक किसी को भी अखण्ड परमधाम का ज्ञान नहीं था। जिस परमधाम के विषय में आज तक कोई एक अक्षर भी नहीं बोल सका है, धाम धनी ने हमें उसी परमधाम का अनुभव कराया है, जिसमें हम अपने मूल तन से बैठे हैं।

द्रष्टव्य— इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित 'अर्स में बैठाने' का भाव है— ध्यान द्वारा परमधाम की प्रत्यक्ष अनुभूति करना।

और जित आया हक इलम, अर्स दिल कह्या सोए।

हक न आवें इस्क बिना, और हक बिना इस्क न होए॥४१॥

जिस आत्मा के हृदय में ब्रह्मवाणी के ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, उस हृदय को ही धाम कहलाने की शोभा प्राप्त होती है। यदि हृदय में प्रेम न हो तो धनी का स्वरूप दिल में विराजमान नहीं हो सकता और श्री राज जी के बिना प्रेम कहीं और मिल भी नहीं सकता।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी से प्रियतम अक्षरातीत की पहचान हो जाने से हृदय में एक मात्र श्री राज जी का ही चिन्तन होने लगता है। इसलिये, ऐसे हृदय को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त हो जाती है। श्री राज जी के स्वरूप की चितवनि किये बिना अन्य किसी साधन या स्रोत से प्रेम प्राप्त नहीं होता। युगल स्वरूप के अतिरिक्त अन्य कहीं पर भी स्वलीला अद्वैत का प्रेम नहीं है।

अर्स कहिए दिल तिन का, जित है हक सहूर।

इलम इस्क दोऊ हक के, दोऊ हक रोसनी नूर॥४२॥

उसी दिल (हृदय) को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त है, जिसमें श्री राज जी का चिन्तन और चितवनि होती है। इस्क और इल्म (प्रेम और ज्ञान) दोनों ही धनी के अंग हैं और इन दोनों से ही श्री राज जी के नूरी स्वरूप की पहचान होती है।

भावार्थ— ज्ञान से चिन्तन होता है तथा प्रेम से चितवनि। 'सहूर' शब्द का तात्पर्य चिन्तन या चितवनि से ही है। बिना चिन्तन या चितवनि (ध्यान द्वारा आत्म दृष्टि से देखना) के प्रियतम की नूरमयी शोभा को नहीं जाना जा सकता।

फेर फेर हक अंग देखिए, ज्यों याद आवे निसबत।

है अनुभव तो एक अंग का, जो हमेसा वाहेदत॥६६॥

हे मेरी आत्मा! तू अपने प्राणवल्लभ के अंगों की शोभा को बार-बार देख, जिससे तुझे अपने मूल सम्बन्ध की याद आ जाये। धाम धनी के किसी भी अंग की शोभा का अनुभव सभी अंगों की शोभा का अनुभव है, क्योंकि वहां सर्वदा ही एकत्व (एकदिली) की लीला है।

भावार्थ— श्री राज जी के सभी अंगों की शोभा समान है, क्योंकि वहां एकदिली है। कोई भी अंग किसी अन्य अंग से कम या अधिक सुन्दर नहीं है। इसलिये, किसी एक अंग की भी शोभा का, आनन्द मिलने पर सभी अंगों की शोभा का आनन्द प्राप्त हो जाता है।

ताथें तूं चेत रुह अर्स की, ग्रहे अपने हक के अंग।

रहो रात दिन सोहोबत में, हक खिलवत सेवा संग॥६७॥

इसलिये, हे मेरी आत्मा! अब तूं सावधान हो जा। अपने प्रियतम के अंगों की शोभा को अपने धाम हृदय में बसा। तूं चितवनि के द्वारा अपनी आत्म दृष्टि से मूल मिलावे में पहुँच और दिन—रात उनकी सानिध्यता (निकटता) में रहकर अपनी प्रेममयी सेवा से रिझा।

हुकम देवे लज्जत, प्याला जेता पिआ जाए।

हर रुहों जतन करें कई बिध, जानें जिन प्याला देवे गिराए॥६८॥

परमधाम के प्रेम का यह प्याला, आत्माओं के द्वारा जितना पिया जा सकता है, उतना ही पिलाकर धाम धनी का हुक्म उन्हें प्रेम के स्वाद का अनुभव कराता हैं। श्री राज जी का हुक्म प्रेम के प्याले की रक्षा के लिये अनेक प्रकार के यत्न करता है, ताकि कोई प्रेम भरे प्याले के अमृत रस को गिरा न दे।

भावार्थ— हाथ में पीने के लिए, लिये हुए प्याले को गिरा देने का अर्थ है, ब्रह्मवाणी के ज्ञान तथा चितवनि के द्वारा अध्यात्म के उस स्तर तक पहुँच जाना, जिसमें प्रियतम का दीदार बहुत ही निकट रह जाय, फिर भी माया के प्रभाव से विषय—विकारों में फँस जाना और प्रियतम के सुख से वंचित रह जाना। धाम धनी का हुक्म परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को इस स्थिति में नहीं आने देता।

प्रकरण २५

बैठे मासूक जाहेर, पर दिल ना लगे इत।

मासूक मुख देखन को, हाए हाए नैना भी ना तरसत॥७॥

मूल मिलावे में श्री राज जी साक्षात् बैठे हैं, किन्तु उनकी शोभा को देखने में दिल नहीं लग पा रहा है। हाय! हाय! अपने प्राणवल्लभ के मुखारविन्द को देखने के लिये हमारे नेत्र अब तरसते भी नहीं हैं अर्थात् दर्शन की तीव्र लालसा हमारे अन्दर नहीं है।

सुनने कान ना दौड़त, मासूक मुख की बात।

इस्क न जानों कहां गया, जो था मासूक सों दिन रात॥८॥

माया के प्रभाव से ऐसा हो गया है कि अब हमारी आत्मा के कानों में प्रियतम के मुखारविन्द की अमृतमयी वाणी को सुनने की उत्कण्ठा ही नहीं रह गयी है। श्री राज जी के प्रति रात—दिन हमारे हृदय में जो अखण्ड प्रेम रहा करता था, पता नहीं वह कहाँ चला गया है?

रुह अंग ना दौड़े मिलन को, ऐसा अर्स खावंद मासूक।

मेहेबूब जुदागी जान के, अंग होत नहीं टूक टूक॥९॥

परमधाम के स्वामी श्री राज जी सभी आत्माओं के मासूक हैं, फिर भी हमारी आत्मा के

अंग उनसे मिलने के लिये दौड़ते नहीं हैं अर्थात् अब हमारे अंगों में मिलन की तड़प नहीं है। अपने प्रियतम से वियोग की बातें जानकर भी हमारे अंग टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते?

मोमिन हक बिना न देखें, एही मोमिनो ताम।

बन्दगी तवाफ सब इतहीं, मोमिनो इतहीं आराम॥५६॥

परमधाम की आत्माएं श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य किसी को भी प्रियतम के भाव से नहीं देखती है। प्रियतम का दीदार ही उनके जीवन का आधार रूप भोजन है। युगल स्वरूप के चरणों में ही इनकी भक्ति (बन्दगी) है और परिक्रमा करना है। इसी में उनको सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है।

खाना पीना सब इतहीं, इतहीं मिलाप मजकूर।

इतहीं पूरन दोस्ती, इत बरसत हक का नूर॥६०॥

युगल स्वरूप के चरणों में ही ब्रह्मसृष्टियों का भोजन करना एवं जल पीना है। उनसे ही मिलन और वार्ता भी होती है। धनी से ही इनकी प्रेम भरी मित्रता (दोस्ती) है। इन आत्माओं पर श्री राज जी के नूर की वर्षा होती है।

भावार्थ— भोजन करना प्रेम की बहिरंग लीला है, जिसमें दर्शन लीला (दीदार) प्रमुख है। जल पीना आन्तरिक लीला है, जिसमें दोनों (आशिक—माशूक) ही एक दूसरे के दिल में प्रवेश कर जाते हैं और स्वयं का अस्तित्व भूल जाते हैं। चितवनि में आत्मा अपने मूल तन (परात्म) का श्रृंगार सजकर प्रियतम का दीदार करती है और उनसे बातें भी करती है।

इस जागनी ब्रह्माण्ड में युगल स्वरूप श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर लीला कर रहे हैं। यही कारण है कि सभी सुन्दरसाथ ने श्री प्राणनाथ जी को साक्षात् अक्षरातीत मानकर ही श्री ५ पद्मावतीपुरी धाम में सेवा की। श्री जी के चरणों में प्रेम रखने पर वही फल प्राप्त होता है, जो परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप के प्रति ईमान (निष्ठा, विश्वास) रखने से प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में खु० में कहा गया है—

जाको दिल जिन भांत को, तासों मिले तिन विध।

मन चाह्या सरूप होए के, कारज किए सब सिध॥ खुलासा १३/६५

सुर असुर सबों को ए पति, सब पर एकै दया।

देत दीदार सबन को साई, जिनहूं जैसा चाह्या॥ किरन्तन ५६/७

धाम धनी के द्वारा आत्माओं को प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य तथा परम सत्य ज्ञान (मारिफत) आदि का अनुभव कराना ही नूर की वर्षा कराना है।

सरूप ग्रहिए हक का, अपनी रुह के अन्दर।

पूरन सरूप दिल आइया, तब दोऊ उठे बराबर॥६१॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मा के हृदय में धाम धनी की शोभा को बसाइए। जब श्री राज जी का सम्पूर्ण स्वरूप दिल में बस जाता है, तब आत्मा और परात्म की समान स्थिति हो जाती है।

भावार्थ— परात्म के दिल में तो धनी की शोभा अखण्ड रूप से बसी ही होती है, किन्तु जब वही शोभा आत्मा के भी धाम हृदय में बस जाती है तो दोनों की स्थिति समान हो जाती

है, जिसे बराबर रूप में उठना (जागृत होना) कहते हैं।

ए सरीयत अपनी मोमिनों, और है हकीकत।

क्यों न विचार के लेवहीं, हक हादी बैठे तखत॥६२॥

हे साथ जी! ये सब अपनी शरीयत और हकीकत की बातें हैं। इस बात का विचार करके आप सिंहासन पर विराजमान युगल स्वरूप की शोभा को अपने हृदय में क्यों नहीं बसाते हैं?

भावार्थ— चौदह लोक, निराकार और बेहद से परे परमधाम तथा युगल स्वरूप के दर्शन को प्राप्त करने का लक्ष्य बनाना शरीयत है, जबकि युगल स्वरूप तथा परमधाम की शोभा को बसा लेना हकीकत (वास्तविकता) है।

जो कदी दिल में हक लिया, कछू किया ना प्रेम मजकूर।

क्यों कहिए ताले मोमिन, जाको लिख्या बिलन्दी नूर॥६३॥

यदि कभी, किसी आत्मा ने अपने दिल में श्री राज जी को बसा तो लिया, किन्तु उनसे प्रेम भरी बातें नहीं की, तो उसके सौभाग्य में परमधाम के नूर की अनुभूति कैसे मिल सकती है, जो उसका स्वाभाविक अधिकार है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि मात्र ज्ञान दृष्टि के द्वारा ही धनी को दिल में बसाने से जागृति का लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता। जब तक श्री राज जी के नख से शिख तक की सम्पूर्ण शोभा हृदय में बस नहीं जाती और आत्म-चक्षुओं से वह जी भरकर देखी न जाय—आत्मा की रसना से प्रियतम से कुछ कहा न जाय तथा आत्मा के कानों से उनकी प्रेम भरी आवाज सुनी न जाय, तब तक यह कैसे माना जा सकता है कि आत्मा ने अपने प्राणप्रियतम के नूर (प्रेम, आनन्द, शोभा, सौन्दर्य, एकत्व) को प्राप्त कर लिया है।

ए हकीकत मोमिनों, और ले न सके कोए।

बेसक होए बातें करें, तो मजकूर हजूर होए॥६४॥

प्रियतम को पाने के लिये हकीकत (सत्य) का यह मार्ग ब्रह्मसृष्टियों का है। इस मार्ग पर अन्य कोई भी (जीव) नहीं चल सकता। हे मेरी आत्मा! यदि तू इस सत्य मार्ग (हकीकत) के प्रति पूर्ण रूप से संशय रहित होकर चले और अपने प्राण प्रियतम से बातें करने की इच्छा करें, तो अवश्य ही प्रत्यक्ष रूप में उनसे वार्ता होगी।

रुह नैनों दीदार कर, रुह जुबां हक सों बोल।

रुह कानों हक बातें सुन, एही पट रुह का खोल॥६५॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मा के नेत्रों से प्रियतम का दर्शन कीजिए तथा आत्मिक रसना से श्री राज जी से प्रेम भरी बातें कीजिए। इसी प्रकार अपनी आत्मा के कानों से प्रियतम की मधुर आवाज सुनिए। इस प्रकार आप अपनी आत्मा के पर्दे को हटाइए।

ए सहूर करो तुम मोमिनों, जब फैल से आया हाल।

तब रुह फरामोसी ना रहे, बोए हाल में नूरजमाल॥६६॥

हे साथ जी! इस बात का आप विशेष रूप से चिन्तन कीजिए कि जब करनी रहनी में

बदल जाती है तो आत्मा में माया की नींद (फरामोशी) नहीं रहती। उस रहनी की सुगन्धि में प्रियतम का दीदार होता है।

बेसक होए दीदार कर, ले जवाब होए बेसक।

एही मोमिनों मारफत, खिलवत कर साथ हक॥७०॥

हे मेरी आत्मा! तू पूर्णतया संशय रहित होकर अपने प्राण वल्लभ का दीदार कर तथा उनसे अपने प्रेम भरे प्रश्नों का उत्तर भी ले। तू मूल मिलावे में अपनी आत्मिक दृष्टि से प्रियतम के साथ प्रेम और आनन्द में डूब कर एक रूप हो जा तथा अपने अस्तित्व को मिटा दे। ब्रह्मसृष्टियों के लिये यही मारिफत की बन्दगी (परम प्रेममयी स्थिति) है।

रुह हकसों बात विचार कर, दिल परदा दे उड़ाए।

रुह बातें वतन की, कर मासूक सों मिलाए॥७१॥

हे मेरी आत्मा! तू अपने प्रियतम से होने वाली बातों का विचार कर और अपने दिल पर पड़े हुए माया के इस पर्दे को उड़ा दे। तू अपने प्राणप्रियतम से निजघर की अति प्रेममयी बातें कर।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय होता है कि मारिफत की स्थिति में पहुँची हुई आत्मा से यह बात क्यों कही गयी है कि तू अपने दिल के ऊपर पड़े हुए माया के पर्दे को हटा ? क्या इस अवस्था में भी माया का पर्दा बना ही रहता है? इस संशय का समाधान यह है कि इस चौपाई में आत्मा को अपने जीव के दिल पर पड़े हुए माया के पर्दे को हटाने के लिये कहा गया है। आत्मा तो तीनों ही काल में सर्वथा निर्विकार ही रहती है, किन्तु जीव के लिये ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। इस नश्वर जगत में पंचभौतिक तन को जो भोज्य पदार्थ ग्रहण करने पड़ते हैं, उसके प्रभाव से प्रत्येक परमहंस में सत्त्व, रज और तम कम या अधिक मात्रा में रहते ही है, जिसके कारण महान विभूतियों से भी कुछ भूलों के हो जाने की सम्भावना बनी रहती है। इसलिये इस चौपाई में आत्मा को इस बात के लिये सावचेत किया गया है कि वह अपने जीव को पूर्ण रूप से जागृत एवं निर्विकार बनाने की दिशा में प्रयत्नशील रहे, क्योंकि उनके आचरण के साथ ही आत्मा की भी गरिमा जुड़ी हुई है।

जो गुझ अपनी रुह का, सो खोल मासूक आगूँ।

यों कर जनम सुफल, ऐसी कर हक सों तू॥७२॥

हे मेरी आत्मा! अब तू अपने विरह-प्रेम की अति गोपनीय बातों को भी अपने प्रियतम से स्पष्ट रूप से कह। तू उनसे इतना प्रेम कर कि इस खेल में तुम्हारा आना सार्थक हो जाय।

भावार्थ— जन्म जीव का ही होता है, आत्मा का नहीं। इस चौपाई में माया के खेल में आने को ही जन्म लेना कहा गया है। वस्तुतः यह कथन आत्मा के जीव द्वारा तन धारण करने के सम्बन्ध में है।

सब अंग सुफल यों हुए, करी हकसों सलाह सबन।

देख बोल सुन खुसबोए सों, जिनका जैसा गुन॥७३॥

इस प्रकार श्री राज जी से बातें करके आत्मा के सभी अंग सफल हो गये। आत्मा की

आंखों, कानों एवं रसना ने अपने गुणों के अनुसार प्रियतम के सौन्दर्य, मधुर ध्वनि एवं प्रेम की सुगन्धि का रसास्वादन किया।

भावार्थ— मेरी आत्मा के नेत्र धाम धनी के अनन्त सौन्दर्य को निहार कर निहाल (परितृप्त) हो गये। मेरे आत्मिक कान अमृत से भी अनंत गुना मीठी उनकी आवाज को सुनकर धन्य-धन्य हो गये और मेरी रसना ने मेरे हृदय के सारे भावों को व्यक्त कर स्वयं को कृतकृत्य माना।

मारफत लदुन्नी जिन लई, सो करे हक सहूर।

सहूर किए हाल आवहीं, सो हाल बीच हक मजकूर॥८१॥

जिन्होंने तारतम ज्ञान (ब्रह्मवाणी) के गुह्य रहस्यों को जान लिया होता है, वे अक्षरातीत श्री राज जी का ही चिन्तन एवं चितवनि करते हैं। चितवनि के द्वारा उनकी रहनी परमधाम वाली (प्रेममयी) हो जाती है और उस अवस्था में प्रियतम का दीदार होता है तथा उनसे प्रत्यक्ष बातें होती हैं।

भावार्थ— इस चौपाई से यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्मवाणी का ज्ञान 'कथनी' है, चितवनि 'करनी' है तथा चितवनि से युगल स्वरूप के प्रति प्रकट होने वाला प्रेम ही 'रहनी' है। मात्र इसी के द्वारा ही प्रियतम का दीदार होता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

पीछे हक सब करसी, रूह सुख लिया चाहे अब।

सुख लेने को अवसर, पीछे लेसी मोमिन सब॥८३॥

धाम धनी तो बाद में सब कुछ करेंगे ही, किन्तु आत्मायें तो अभी ही सारा सुख लेना चाहती हैं। बाद में अर्थात् परमधाम में तो सब सुन्दरसाथ सुख लेंगे ही, किन्तु जागनी लीला में अखण्ड सुख लेने का यही सुनहरा अवसर है।

भावार्थ— परमधाम के अखण्ड सुखों का अनुभव करने का यही वास्तविक समय है। यह सौभाग्य परमधाम में भी प्राप्त नहीं था।

सुख हक इस्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सो करो विचार॥ सागर १२/३०

प्रकरण २६

दूर नजीक भी अर्स के, सो भी पाइए अर्स सहूर।

नैन चरन अंग तीनों हीं, एक यादै में हजूर॥८६॥

परमधाम की चितवनि से निजधाम की बहुत दूर से भी दूर और अति निकट की भी वस्तुओं का साक्षात्कार हो जाता है। प्रियतम की प्रेम भरी याद रूपी चितवनि में धनी के नेत्र, चरण और हृदय का भी दीदार हो जाता है।

भावार्थ— चितवनि में किसी थम्भ आदि की मेहराब में बने हुए फूलों, पत्तियों आदि का दर्शन अति निकट का दर्शन है तथा उसी समय सागरों, बड़ी रांग की हवेलियां तथा माणिक पहाड़ के हिण्डोलों आदि को देखने लगना अति दूरस्थ वस्तुओं का दर्शन है।

चाल मिलाप या दीदार, ए तीनों रूह के नेक।

जबहीं याद जो आवहीं, तब हीं होए माहें एक॥१०॥

परमधाम की प्रेममयी चाल, हृदय में मिलन की अनुभूति या प्रत्यक्ष दर्शन ये तीनों ही वस्तुएं आत्मा को बहुत आनन्द देने वाली है। प्रियतम अक्षरातीत की जब भी याद आती है, तो इन तीनों में से किसी एक की प्राप्ति आत्मा को अवश्य होती है।

भावार्थ— श्री राज जी के स्वरूप की चितवनि में डूब जाने पर या तो हमारी रहनी प्रेममयी हो जाती है या धाम धनी के हृदय में विराजमान होने की झलक मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रियतम मेरे सम्मुख ही है। यह भावात्मक मिलन है। अन्तिम परिणाम प्रत्यक्ष दर्शन है, जिसमें आत्म चक्षुओं से आत्मा अपने प्राणवल्लभ को स्पष्ट रूप से सामने देखती है।

ए अर्स देखें रूह मोमिन, जो उतरे नूर बिलन्द से।

नाहीं क्यों देखे है को, ए तो जाहेर लिख्या किताबों में॥२४॥

परमधाम से आने वाली ब्रह्मात्मायें ही इस परमधाम को देखने में सक्षम हैं। धर्मग्रन्थों में तो यह बात स्पष्ट रूप से लिखी है कि स्वप्न की तरह मिट जाने वाले जीव भला परमधाम का कैसे दर्शन कर सकते हैं?

भावार्थ— यह प्रसंग पुराण सं० ११/४२-५० में वर्णित है, जिसमें कहा गया है कि जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब कभी भी सूर्य तक नहीं पहुँच सकता है, उसी प्रकार चिदाभास स्वरूप जीव उस जागृत स्वरूप ब्रह्म का दर्शन कैसे कर सकते हैं, जो स्वप्न में आदि नारायण के स्वरूप में है, और उसी की चेतना के प्रतिभास रूप सभी जीव हैं।

हक हुकमें सब बेवरा किया, वास्ते हादी रूहन।

जो सहूर कीजे मिल महामती, तो लज्जत लीजे अर्स तन॥२७॥

श्री राज जी के हुक्म (आदेश स्वरूप) ने श्यामा जी एवं सखियों के लिये यह सम्पूर्ण विवरण किया है। श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! यदि आप सभी युगल स्वरूप की चितवनि करते हैं तो इसी संसार में परमधाम की तरह ही अपने मूल तनों के सुखों का रसास्वादन कर सकते हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में 'सहूर' शब्द का तात्पर्य चिन्तन नहीं, बल्कि चितवनि है। युगल स्वरूप की छवि के हृदय में अंकित हो जाने पर आत्मा को अपने परात्म स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है और उसे वे सारे आनन्द प्राप्त होने लगते हैं, जो परमधाम में परात्म को प्राप्त होते हैं। यहां यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि आत्मा को प्राप्त होने वाले प्रेम और आनन्द की एक सीमा है, अन्यथा यह पंचभौतिक शरीर परमधाम के अनन्त आनन्द का बोझ नहीं झेल सकता है।

प्रकरण २७

अर्स मता जेता हुता, किया जाहेर नजर में लें।

हमें न आया इस्क सुपने, ए किया वास्ते जिन के॥५३॥

परमधाम का जो भी गुह्य ज्ञान था, उसे मैंने अपनी दृष्टि में लेकर वाणी द्वारा उजागर

(प्रकट) किया। इस स्वप्न के संसार में, जिस इश्क को पाने के लिये मैंने ब्रह्मवाणी के ज्ञान को प्रकाशित किया, वह इश्क तो प्राप्त ही न हो सका।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के ज्ञान से ही अन्य आत्मायें जागृत हुई और चितवनि की राह पर चलकर इन्होंने इश्क (प्रेम) को पा लिया। इल्म और इश्क (ज्ञान तथा प्रेम) दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। श्री महामति जी के हृदय की प्रेम भरी पीड़ा यही है कि उन्होंने ज्ञान के क्षेत्र में स्वयं लगकर हब्बो वाली विरहावस्था को छोड़ दिया। इस चौपाई में प्रेम को किनारे करके मात्र शब्द—जाल में फंसे रहने वाले विद्वत जनों के लिये भी परोक्ष रूप में सिखापन है।

प्रकरण २६

सराब मेरी सुराही का, सो रूहों मस्ती देवे पुरन।

दे इलम लदुन्नी लज्जत, हक बका अर्स तन॥५८॥

मेरे हृदय रूपी सुराही में उमड़ने वाला प्रेम आत्माओं को पूर्ण आनन्द देने वाला है। तारतम वाणी के द्वारा ही अक्षरातीत, परमधाम तथा परात्म के तनों का रसास्वादन मिलता है।

भावार्थ—इस चौपाई में यह बात स्पष्ट की गयी है कि जब ब्रह्मवाणी के ज्ञान को आत्मसात् कर चितवनि में डूबा जाता है तो धाम धनी का प्रेम प्राप्त होता है, जिसकी रस धारा में आत्मा अपने मूल तन (परात्म), युगल स्वरूप तथा परमधाम के पच्चीस पक्षों को देखती है। यदि ब्रह्मवाणी नहीं होती तो यह सौभाग्य नहीं प्राप्त होता। इसे ही ब्रह्मवाणी द्वारा रस लेना कहा गया है।

सो दिया लदुन्नी तुम को, तुम खोलो मुकता हरफ।

मैं अर्स किया दिल मोमिन, जाकी पाई न किन तरफ॥६५॥

सभी रहस्यों को स्पष्ट करने वाला तारतम ज्ञान मैंने तुम्हें दे दिया है। अब तुम्हें इन हरूफे मुक्तेआत के भेदों को उजागर करना चाहिए। जिस परमधाम को आज दिन तक कोई भी जान नहीं सका है, मैंने तुम्हारे दिल को धाम कहलाने की शोभा दे दी है अर्थात् तुम्हारे दिल में मैं सम्पूर्ण परमधाम की शोभा सहित विराजमान हो गया हूँ।

भावार्थ— चितवनि में डूब जाने पर आत्मा को अपने हृदय में ही युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम का साक्षात्कार होने लगता है। इसे ही दिल में परमधाम का विद्यमान होना कहा गया है।

अर्स बताए दिया तुमको, और बताए दर्ई वाहेदत।

सहूर इलम कुंजी सब दर्ई, बैठाए माहें खिलवत॥१२२॥

मैंने ब्रह्मवाणी द्वारा तुम्हें परमधाम तथा वहां की एक दिली (एकत्व) की पहचान करायी। तारतम ज्ञान रूपी कुंजी और परमधाम की चितवनि (सहूर) देकर मैंने तुम्हें आत्म—दृष्टि से मूल मिलावे में बैठा दिया।

सिन्धी

प्रकरण १

तो तरसाएं तरसण, तोके पसण नैण।

कोड थिए कनन के, तोहिजा सुणन मिठडा वैण॥१६॥

शब्दार्थ—तो—आपके, तरसाएं—विलखाये, तरसण—विलखती हूं, तोके—आपको, पसण—देखने, नैण—नेत्रों से, कोड—हर्ष, थिए—होता है, कनन के—कानों का, तोहिजा—आपके, सुणन—सुनने, मिठडा—मीठे, वेण—वचन।

अर्थ—अपने नेत्रों से आपको जी भरकर देखने के लिये मैं तरस रही हूं। ऐसा आप ही करवा रहे हैं। आपके प्रेम भरे मीठे वचनों को सुनने से मेरे कानों में अपार आनन्द का अनुभव होता है।

भावार्थ—इस प्रकार का कथन मात्र सुन्दरसाथ के लिये ही है। श्री महामति जी ने तो हब्बो में ही अपने प्रियतम का साक्षात्कार कर लिया था—

जब आह भी सूकी अंग में, स्वांस भी छोड़यो संग।

तब तुम परदा टाल के, दियो मोहे अपनो अंग॥ क० हि० ८/८

धनं धनं सखी मेरे नेत्र अनियाले, धनं धनं धनी नेत्र मिलाए रसाले।

धनं धनं मुख धनी को सुन्दर, धनं धनं धनी चित चुभायो अन्दर॥ किरंतन ८४/२

आत्मा अपने धाम हृदय में जब एक बार भी प्रियतम की शोभा को बसा लेती है, तो वह शोभा हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है। वह उठते, बैठते, सोते, जागते उसी में डूबी रहती है। हाँ! जीव को अवश्य उसके पुनः दीदार की तड़प हो सकती है, क्योंकि पंचभौतिक शरीर की सीमाएं हैं और वह लगातार ब्रह्मानन्द रस का पान नहीं कर सकता। इस चौपाई में सुन्दरसाथ में प्रियतम के दीदार की जो प्यास है, उसका बहुत ही मनोहारी चित्रण किया गया है।

धणी मूंहजी रुहजा, मूं से हित गालाए।

पिरी पसण जीं थिए, से तूंही डिए उपाए॥४८॥

शब्दार्थ—धणो—प्रीतम, मूंहजी—मेरी, रुहजा—आत्माके, मूंसे—मुझसे, हित—यहां, गालाए—बातें करो, पिरी—प्रीतम के, पसण—देखने को, जीं—जिस तरह, थिए—दोए, से—सो, तूंही—आपही, डिए—देते हो, उपाए—उपाय।

अर्थ—मेरी आत्मा के प्राण वल्लभ! आप इसी संसार में मुझसे प्रेम भरी बातें कीजिए। किस तरह से मैं आपको देख सकूं, उसका उपाय भी बताइये।

भावार्थ—प्रियतम का दीदार ही प्रत्येक सुन्दरसाथ का अनिवार्य लक्ष्य होना चाहिए। यही सिखापन इस चौपाई में परोक्ष रूप से सुन्दरसाथ को दी गई है। श्री महामति जी ने तो हब्बो में ही प्रियतम का जी भर कर दीदार कर लिया था।

सिकण सडण जीरे मरण, से सभ हथ धणी।

तो चंगी पेरे डेखारियो, त मूं न्हास्यो नैण खणी॥५४॥

शब्दार्थ— सिकण—कुढ़ना , सडण—बुलाना, जीरे—जीना, मरण—मना, से—सो, सभ—सम्पूर्ण, हथ—हाथ, धणी—प्रीतम के है, तो—आपने, चंगी—अच्छी, पेरे—तरह से , डेखारियो—दिखाया, त—तो, मूं—मैंने, न्हारयो—देखा, नेंण—आंख, खणीं—खोलकर।

अर्थ—हे धनी! तड़पना, ललचाना, जीना और मरना आदि सभी कुछ आपके ही हाथों में है। आपने मुझे यह पहचान बहुत ही अच्छी तरह से दे दी है, इसलिये अब मैं अपने नेत्रों को खोलकर आप को देख रही हूँ।

भावार्थ— चाहे, धनी के लिये विरह में तड़पना हो या माया के लिये ललचाना हो, सब कुछ धाम धनी के हुक्म के अधीन है। इस शरीर का जीवन और मृत्यु भी उन्हीं के हुक्म से बंधा हुआ है। जब आत्मा को श्री राज जी की इस लीला की पहचान हो जाती है तो वह उनके प्रेम में डूब कर अपने आत्मिक नेत्रों को खोल लेती है तथा जी भरकर उनका दीदार करती है। समर्पण और प्रेम के बिना कभी भी आत्म जागृति नहीं हो सकती।

प्रकरण ३

रे पिरियम, मंगां सो लाड करे।

एहेडी किजकां मुदसे, खिलंदडी लगां गरे।।१।।

शब्दार्थ— रे—हे, पिरियम—प्रीतम, मंगां—मांगती हूँ, सो—सो मिलाप, लाड़—प्यार, करे—करके, एहेडी—ऐसी, किजकां—करो, मुदसे—मुझसे, खिलंदडी—हँसकर, लगां—लगाँ, गरे—कंठ से।

हे मेरे प्राणवल्लभ! आपसे मिलकर अति प्यार पूर्वक मैं यही मांगती हूँ कि आप मेरे ऊपर ऐसी मेहर कर दीजिए कि मैं हंसती हई आपके गले लग जाऊँ।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के ज्ञान रूपी अमृत से जब प्रियतम के धाम, स्वरूप और लीला का बोध हो जाता है और हृदय विरह में तड़पने लगता है तो इसे ज्ञान की दृष्टि से मिलाप करना कहते हैं। वास्तविक मिलाप (मिलन) प्रेम द्वारा प्रत्यक्ष दीदार (दर्शन) है, जिसके लिये इस चौपाई में गले मिलने के भाव से दर्शाया गया है। इस अवस्था में आत्मा अपने प्राणवल्लभ से वैसे ही एक रूप हो जाती है, जैसे लौकिक दृष्टि से गले मिलने वाले स्वयं को भूल जाते हैं।

ब्रह्मवाणी के चिन्तन—मनन का सर्वप्रथम लाभ जीव को ही होता है। माया में फंसी होने के कारण परमधाम का ज्ञान पाकर भी आत्मा जीव से अधिक नहीं जान पाती है। जब आत्मा के सम्बन्ध से जीव के हृदय में विरह—प्रेम की धारा प्रवाहित होती है तो आत्मा प्रेम द्वारा अपने प्राणवल्लभ का साक्षात्कार करती है। इसके पश्चात् वह अखण्ड रूप से अपने धनी का दीदार करती रहती है और उसका कुछ रस जीव को भी मिलता रहता है। इसके पूर्व विरह की अवस्था में आत्मा को अपने प्रियतम के धाम, स्वरूप और लीला का कुछ—कुछ आभास सा होता है, जिसे इस चौपाई में मिलाप करना कहा गया है क० हि० 11/1 का यह कथन भी इसी सन्दर्भ में है कि 'जो कदी भूली वतन, तो भी नजर तहां निदान।'

तो मूँके चेओ तूं मूंहजी, हेडी करे निसबत।

मूँके केयज सुरखरू, से लखे भाइयां भाल।

रुहें कोठे अचां आं अडूं, जीं खिल्ली करियां गाल॥६॥

शब्दार्थ— केयज—किया, सुरखरू—समान, लखे—लाखों, भाइयां—जानू, भाल—लाखों, रुहें—ब्रह्मसृष्टियों को, कोठे—बुलाकर, आं—आपके, अडू—तरफ, जीं—जिससे, खिल्ली—हँसकर, करियां—करुं, गाल—बातें,

आपने मुझे माया के दोषों से रहित कर दिया हैं। इसके लिये मैं आपके लाखों एहसान मानती हूँ। अब मेरी एक मात्र यही इच्छा है कि सभी सखियों को साथ लेकर आपके पास आ जाऊं और हंसते हुए आपसे प्रेम पूर्वक बातें करूँ?

भावार्थ—इस चौपाई में श्री महामति जी ने परोक्ष रूप में यही भाव व्यक्त किया है कि आत्म-जागृति के लिये प्रत्येक सुन्दरसाथ को प्रियतम की शोभा में डूब जाना चाहिये तथा इस माया से परे होकर अपनी परात्म के श्रृंगार से धाम धनी से प्रेम-पूर्वक बातें करनी चाहिए।

डिठम सुख सोणेमें, हिक आंझो तोहिजो आए।

मूसे संग केइए हिन भूँअ में, जे डिए हित सांजाए॥७॥

शब्दार्थ— डिठम—देख, सोणेमें—स्वप्न में, हिक—एक, आंझो—भरोसा, तोहिजो—आपका ही, आए—है, मूसे—मुझसे, केइए—किया, हिन—इस, भूँअमें—पृथ्वी पर, जे—जो, डिए—दी है तो, हित—यहां, सांजाए—पहचान।

इस स्वप्नमयी संसार में मने आपके सुखों का अनुभव किया हैं। अब तो एक मात्र आपका ही सहारा (भरोसा) है। जब, इस संसार में आपने मुझे अपनी पहचान दी है तो इस जगत् में ही आकर मुझसे सम्बन्ध बनाइये अर्थात् दर्शन दीजिए।

डिनिए वळ्यूं वडाइयूं हांणे जे डिए दीदार।

मिठा वैण सुणाइए वलहा, त सुख पसूं संसार॥२३॥

शब्दार्थ— डिनिए—दर्ई, वळ्यू—बड़ी, वडाइयूं—बडाई, हांणे—अब, डिए—देओ, दीदार—दर्शन, वैण—वचन, सुणाइए—सुनाओ, वलहा—प्यारे धनी, पसूं—देखूं, संसार—संसार के।

मेरे प्रियतम! आपने हमें इस संसार में बहुत बड़ी शोभा दी है। अब मुझे अपना मधुर दर्शन (शर्बत ए दीदार) दीजिए और अपने अमृत से अधिक मीठे वचनों को सुनाइये, जिससे मैं इस संसार में ही सुख का अनुभव कर सकूँ।

भावार्थ— यह सारा संसार नश्वर एवं दुःखमय है। इसमें यदि प्रियतम परब्रह्म का प्रत्यक्ष दर्शन (आत्मिक दृष्टि से) हो जाय तथा उनकी प्रेम भरी बातें सुनने को मिल जाय तो इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है ? इस अवस्था में तो सुख का सागर ही हृदय-धाम में हिलोरे मारने लगता है और दुःखमय संसार का जरा भी भान नहीं होता। संसार में सुख लेने का यही अभिप्राय है।

प्रकरण ७

हिक मंगां दीदार तोहिजो, बी मिठडी गाल सुणाए।

कांध मूंहजा दिल डेई, मूसे हित गालाए॥६॥

शब्दार्थ—हिक—एक, मंगां—मांगती हूँ, दीदार—दर्शन, तोहिजो—आपका, बी—दूसरी, मिठडी—मधुर, गाल सुणाए—बात सुनाइये, कांध—प्रीतम, मूंहजी—मेरेको, दिल—दिल, डेई—देकर, मूँसे—मुझसे, हित—यहाँ ही, गालाए—बातें कीजिए।

हे प्रियतम! एक तो मैं आपका दर्शन चाहती हूँ। मेरी दूसरी इच्छा यह है कि आप मुझे मीठी—मीठी बातें सुनाइए। इसके अतिरिक्त मेरी यह भी चाहना है कि आप इसी संसार में मुझे अपना दिल देकर प्रेम भरी बातें कीजिए।

प्रकरण ८

पट अर्स अजीम जो, मुराई कीं उघाडे।

जे मूं कोठिए लिकंदी, त आऊं को न अचां लिके॥१८॥

शब्दार्थ—पट—पर्दा, अर्स अजीम जो—परमधाम का, मुराई—मूल से, कीं—क्यों, उघाडे—खोला, जेमूं—जो मुझको, कोठिए—बुलाओ, लिकंदी—छिपती, त आऊं—तो मैं, को—क्यों, न—नहीं, अचां—आऊं, लिके—छिप के।

आपने परमधाम के दरवाजे प्रारम्भ से ही क्यों खोल रखा है। यदि आप मुझे छिपकर बुलाते हैं तो मैं छिपकर अकेले क्यों नहीं आऊं।

भावार्थ—सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी सबको परमधाम के पच्चीस पक्षों एवं युगल स्वरूप की शोभा—श्रृंगार का वर्णन सुनाया करते थे, ताकि उसको दिल में बसाकर सुन्दरसाथ जागृत हो सकें। श्री मुख वाणी एवं बी० सा० में यह प्रसंग इस प्रकार है—

सब सोभा देखों निज नजर, अपना वतन निजघर।

धनी केहे केहे चित चढ़ाई, पर नैनो अजूं न देखाई॥ प्र०हि० ३/७

धनिएं आगूं अर्स के, कहे तीन चबूतर।

दाहिनी तरफ तले तीसरा, हरा दरखत तिन पर॥ परि० ३०/१६

भाव काढ़ दिखावहीं, सब चर्चा को रूप।

बरनन करें श्री राज को, सुन्दर रूप अनूप॥ बी०सा० ११/१६

श्री महामति जी का आशय सब सुन्दरसाथ को युगल स्वरूप एवं परमधाम का साक्षात्कार कराना है। इसलिये, परिक्रमा, सागर तथा श्रृंगार ग्रन्थ के अवतरण के पश्चात् जब अन्तिम ग्रन्थ मारिफत सागर भी अवतरित हो गया तो वि० सं० १७४८—१७५१ तक उन्होंने स्वयं भी गुम्मत जी की गुम्मटी में बैठकर चितवनि (ध्यान) किया तथा सब सुन्दर साथ को भी चितवनि करने के लिये प्रेरित किया। धाम चलने अर्थात् धाम देखने के प्रसंग वाले सभी कीर्तन इसी समय उतरे। स्वयं श्री इन्द्रावती जी (महामति जी) के द्वारा चितवनि करना ही अकेले आना है तथा, सुन्दरसाथ को भी उसमें लगाना 'सबके साथ आना है'। 'चलो चलो रे साथ, आपन जईए धाम'। कि० ८६/१ का कथन यही तथ्य दर्शाता है। इसी सिन्धी ग्रन्थ में १/४३ में उन्होंने स्पष्ट कहा है—'आऊं हेकली कीं थिया' अर्थात् मैं अकेली आप के पास कैसे आऊं?

प्रकरण ६

चुआं रुआं के न्हारियां, बेठो आइए मूं बट।

लाहिए दममें तूंहीं धणी, अंखे कंने जा पट॥५१॥

शब्दार्थ—चुआं—कहूं, रुआं—रोए, न्हारियां—देखूं तो, बेठो—बैठे, आइए—हो, मूं—मेरे, बट—पास में, लाहिए—उतारते हैं, दममें—क्षणमें, तूं हीं—आप ही, धणी—प्रीतम, अंखे—नेत्र, कंनेजा—श्रवण का, पट—पर्दा।

हे मेरे प्रियतम! यद्यपि, मैं अपने हृदय की पीड़ा आपसे कहती हूँ और विरह में रोती भी हूँ, किन्तु, जब मैं अपनी आत्मिक दृष्टि से देखती हूँ तो आप मूल मिलावे में मेरे पास ही बैठे हुए दिखायी देते हैं। यदि, आप चाहें तो मात्र एक पल में ही हमारी आंखों और कानों के पर्दों को हटा सकते हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में आंखों और कानों के पर्दे हटाने का तात्पर्य—आत्मिक आंखों और आत्मिक कानों के ऊपर पड़े हुए माया के पर्दे को हटाने से है। यहां पंचभौतिक तन की बाह्य इन्द्रियों (आंख और कान) से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। रुह नैनों दीदार कर, रुह जुबां हक सों बोल।

रुह कानों हक बातें सुन, एही पट रुह का खोल॥ सि. २५/६८

के कथन का संकेत इसी ओर है। आत्मा की प्रमुख इच्छा है— १. प्रियतम का दीदार और २. प्रियतम से प्रेम भरी बातें करना। आत्मिक आंखों और आत्मिक कानों के ऊपर पड़े हुए माया के पर्दे को हटाते ही सुरता (आत्मिक दृष्टि) मूल मिलावे में पहुँच जाती है और प्रियतम अक्षरातीत को प्रत्यक्ष रूप से सामने बैठे हुए देखती है।

प्रकरण १०

कडीं आसिक हेडी न करे, कांध काठींदे पांहीं रहे।

सुख छडे बका धणीयजा, दुख कुफरमें पए॥१३॥

शब्दार्थ— कडी—कभी भी, आसिक—प्रेमी, हेडी—ऐसा, ना—नहीं, करे—करता है, कांध—प्रीतम के, कोठींदे—बुलाते, पांहीं—पीछे, रहे—रहे, सुख—आनन्द, छडे—छोड़कर, बका—अखण्ड, धणीयजा—प्रीतमका, दुख—दुःख कुफरमें—झूठ के बीच में, पए—रहे।

धनी की आशिक (आत्मा) ऐसा कभी कर ही नहीं सकती कि प्रियतम बुलायें और वह न जाए (पीछे रहे)। वह धनी के अखण्ड सुखों को छोड़कर इस दुःखमयी संसार में नहीं रह सकती।

भावार्थ—परात्म में वहदत होने के कारण सबकी जागृति एक साथ ही होनी है। इस प्रकार इस चौपाई में धनी के बुलाने पर परमधाम जाने का तात्पर्य है— तारतम वाणी को आत्मसात् करके प्रेममयी चितवनि द्वारा संसार से परे हो जाना और अपने धाम हृदय में परमधाम एवं युगल स्वरूप को बसा लेना।

प्रकरण ११

अर्स दिल मोमिन जो, जे पसे अर्स मोमिन।

चाहिए कोठियां हक अर्समें, त तो पेरो न्हाए ए तन॥२२॥

शब्दार्थ— जो—का, पसे—देखें, अर्स—धाम का, चाहिए—चाहे, कोठियां—बुलाना, त तो—तब तो, पेरो—पहले ही, न्हाए—नहीं है, ए—यह, तन—शरीर।

वस्तुतः ब्रह्मसृष्टियों का हृदय ही धाम होता है। इसलिये, वे ही परमधाम को देखती हैं। जब धाम धनी आत्माओं को परमधाम में बुलाते हैं (दर्शन कराते हैं) तो उनकी दृष्टि से ये शरीर पहले ही ओझल हो जाते हैं (हट जाते हैं)।

भावार्थ— परमधाम में बुलाने का आशय है—परमधाम का दर्शन कराना। जब आत्मिक दृष्टि परमधाम की ओर होती है तो उसे अपने पंचभौतिक तन या ब्रह्माण्ड का कुछ भी आभास नहीं होता। इसे ही यहां तन का छूटना कहा गया है।

छोटा कयामतनामा

प्रकरण १

जो पोहोंच्या इन खिलवतें, दिल हकीकी इन राह।

इत दिल मजाजी आए न सके, जित अबलीस दिलों पातसाह॥३०॥

इस मूल मिलावे में सच्चे हृदय वाला कोई (मुहम्मद साहब या ब्रह्ममुनि) ही ईशक—ईमान के द्वारा जा सका है। जिन जीवों के हृदय में अज्ञान रूपी शैतान का स्वामित्व है, वे मिथ्या दिल वाले इस मूल—मिलावे तक नहीं पहुँच सकते।

भूले करे जाहेरियों सिफत, सुध न परी बातन।

मारफत सूरज उगे बिना, क्यों देखें बका अर्स तन॥३१॥

माया में आने वाली ब्रह्मसृष्टियां स्वयं को ही भूल गयी हैं। उन्हें अध्यात्म जगत के गुह्य रहस्यों का ज्ञान नहीं है। परिणामस्वरूप वे कर्मकाण्ड की राह पर चलने वाले जीवों के महिमा मण्डन में लगी रहती हैं। जब तक उनके हृदय में मारिफत का सूर्य कहे जाने वाले श्री कुल्जुम स्वरूप के ज्ञान का प्रकाश न मिले और चितवनी न करें, तब तक वे मूल मिलावे में विद्यमान अपनी परात्म को कैसे देख सकती हैं ?

तो दें बड़ाई जाहेर परस्तों को, जो समझे नहीं हकीकत।

हक इलम आए बिना, तो क्यों समझे मारफत॥३२॥

यही कारण है कि वास्तविकता को न जानने के कारण ही ब्रह्ममुनि भी कर्मकाण्ड के अन्धेरे में फंसे हुए जीवों के महिमा गायन में लगे रहते हैं। जब तक ब्रह्ममुनियों को श्री कुल्जुम स्वरूप का ज्ञान प्राप्त न हो, वे भी श्री राज जी या परमधाम की पहचान कैसे कर सकते हैं ?

सरीयत करे फरज बंदगी, करे जाहेर मजाजी दिल।

बका तरफ न पावे अर्स की, ए फानी बीच अंधेर असल॥३३॥

झूठे (स्वाप्तिक) हृदय वाले जीव दिखावे के लिये शरीर तथा इन्द्रियों से होने वाली कर्मकाण्ड (शरीयत) की भक्ति करते हैं। उसे वे अपने जीवन के लिये आवश्यक समझते हैं, इसलिये अपना कर्तव्य मानकर पूरा करते हैं। उन्हें अखण्ड परमधाम का कोई भी ज्ञान नहीं होता है। मोहसागर से बने हुए इस नश्वर जगत को ही वे वास्तविक मानते हैं।

भावार्थ— फर्ज बन्दगी वह है जो अपने जीवन को सुखमय बनाने अथवा धन या प्रतिष्ठा के लोभ में की जाती है। इसमें तरीकत और हकीकत की तरह हृदय या आत्मा का प्रेम नहीं होता, केवल अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये शरीर तथा इन्द्रियों का सहारा लिया जाता है।

दिल हकीकी जो मोमिन, सो लें माएने बातन।

हक इलम इस्क हजूरी, रुहें चलें बका हक दिन॥३४॥

सच्चे हृदय वाले जो ब्रह्ममुनि हैं, वे अध्यात्म के गुह्य तत्त्वों को ग्रहण करते हैं तथा तारतम्य ज्ञान के प्रकाश में प्रियतम परब्रह्म का प्रेम लेकर मूलमिलावे की चितवनी करते हैं। वे श्री कुल्जुम स्वरूप के ज्ञान के प्रकाश में श्री राज जी एवं परमधाम से प्रेम करते हैं।

इत मैं चलो जो अब्बल, कर यारोंसों सहूर।

तो खूबी होए तेहेकीक, नूर पर नूर सिर नूर॥३५॥

जब मैं संसार में सबसे पहले सुन्दरसाथ से जागनी के सम्बन्ध में चिन्तन करके मूलस्वरूप की चितवनी में लग जाऊंगा तो बेहद से परे अक्षर और अक्षर ब्रह्म से भी परे अक्षरातीत परमधाम की महिमा को संसार निश्चित रूप से समझेगा।

भावार्थ— उपरोक्त तीनों चौपाईयों तथा ३८-४५ तक की चौपाईयों में चितवनी की महिमा दर्शायी गयी है। चितवनी के बिना आत्म-जागृति एक दिवा स्वप्न है। चितवनी का नाम सुनते ही नाक-भौंह सिकोड़ने वाले सुन्दरसाथ को इन चौपाईयों को पढ़कर आत्म-मन्थन करना चाहिए।

खूबी खुसाली अधिक, और ज्यादा सोभा संसार।

ले प्याला रुह जगाए के, ल्यो इस्क चलो हादी लार॥३६॥

युगल स्वरूप सहित २५ पक्षों की चितवनी से सुन्दरसाथ में और अधिक आनन्द की वृद्धि होगी, साथ ही साथ जागनी की इस ब्रह्मलीला में इस नश्वर जगत की शोभा बढ़ जायेगी। अतः हे साथ जी! परमधाम का प्रेम लेकर श्री महामति जी के द्वारा दर्शाये गये चितवनी के स्वर्णिम पथ पर उनके साथ चलिये और अपनी आत्मा को जागृत कर परमधाम के अखण्ड प्रेम का रसपान कीजिए।

पोहोंचे नहीं अंग दिल के, ताथें रुह अंग लीजे जगाए।

तो लों आपा ना मरे, जोलों खुदी न देवे उड़ाए॥३७॥

इश्क का यह रस परात्म तक नहीं पहुँच सकता, इसलिये अपनी आत्मा के अंगों को जागृत करना चाहिए। जब तक मैं (खुदी) नहीं मिटती है, तब तक अहंकार का आवरण (पर्दा) भी नहीं हटता।

भावार्थ— परमधाम में परात्म श्री राज जी के दिल (हृदय) का स्वरूप है। उस परात्म के दिल का प्रतिबिम्ब आत्मा के रूप में संसार में अवतरित हुआ है। 'अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछु नाहें। श्रृंगार/

मोमिन असल तन अर्स में, उन दिल बीच ए दिल।

केहेने को ए दिल है, है अर्से दिल असल॥ श्रृं. / से यही प्रमाणित होता है। खिल्वत के पहले प्रकरण में कहा गया है कि परमधाम में परात्म नींद (फरामोशी) में है। यही कारण है कि वह श्री राज जी के सामने बैठी होने पर भी न तो उन्हें देख सकती है, न बातें कर सकती है और न सुन सकती है। यहां तक कि वह उठ बैठ भी नहीं सकती है। यहां तक कि वह उठ बैठ भ्झी नहीं सकती है। ऐसी स्थिति में संसार में आत्मा चितवनी के द्वारा जिस प्रेम और दर्शन का आनन्द प्राप्त करती है, परात्म उस सुख का तब तक अनुभव नहीं कर सकती है, जब तक वह जागृत नहीं हो जाती। यहां तक कि श्री कुलजम स्वरूप के ज्ञान का भी उसे तब अनुभव होगा, जब जागनी लीला समाप्त होगी और परात्म में जागृति आयेगी। इस जागनी लीला में आत्मा ही अपने जीव के माध्यम से श्री कुलजम स्वरूप के ज्ञान और चितवनी के आनन्द को प्राप्त करती है।

अहंकार में बीज (सूक्ष्म) रूप से अस्मिता का अस्तित्व है। वही 'मैं' है। प्रियतम की मैं आने पर ही संसार की मैं जायेगी और अहंकार का नाश होगा।

जब उठें अंग रूह के, सो तूं जागी जान।

आई अर्स अंग लज्जत, तिन पूरी भई पेहेचान॥४१॥

हे साथ जी! जब आपकी आत्मा के अंग जागृत हो जाय तब आप स्वयं को जागृत हुआ समझिये। जिसे परात्म के एक-एक अंग का रसास्वादन मिलता है उसे ही अपने स्वरूप की पूर्ण पहचान मिलना कहा जा है।

भावार्थ— चितवनी के द्वारा आत्मा श्री राज जी के जिस जिस अंग की शोभा को देखती है आत्मा का वह-वह अंग दिखायी पड़ता है। इसके साथ ही उसे अपनी परात्म का भी वह अंग दिखायी पड़ता है किन्तु आत्मा को उस समय यह बोध नहीं होता है कि मेरी आत्मा और परात्म अलग-अलग है।

चितवनी टूटने के बाद केवल दृष्टि से ही इस तथ्य को जाना जा सकता है कि मैंने मूल-मिलावे में ब्रह्मसृष्टियों के मूल तनों के साथ अपने तन को भी देखा था। इसे इस दृष्टान्त से समझा जा सकता है कि जैसे अपने नेत्रों के द्वारा अपने शरीर को जब हम देखते हैं तो हम यही अनुभव करते हैं कि हम अपने रूप को देख रहे हैं।

आत्मा अपनी अन्तर्दृष्टि के द्वारा श्री राज जी के चरण कमल, मुख, नेत्र आदि जिस-जिस अंग की शोभा को देखेगी, आत्मा का वह-वह अंग भी उसे दिखता जायेगा। जब श्री राज जी का पूर्ण स्वरूप दिख जाय तो आत्मा का भी अपना पूर्ण स्वरूप दिखायी पड़ेगा।

जब पूरन स्वरूप हक का, आए बैठा माहें दिल।

तब सोई अंग आतम के, उठ खड़े सब मिल।।

ए अंग जेते मैं कहे, आवे रुह के हिरदे हक।

तेते अंग रुह के, उठ खड़े होए बेसक।। श्रृं. ४/७०, २८

यही अवस्था आत्मा की पूर्ण जागृत अवस्था कहलायेगी। इस अवस्था में उसे अपनी परात्म का भी पूर्ण स्वरूप दिखायी देगा जिसे इस चौपाई में परात्म की लज्जत (रसास्वादन) लेना कहा गया है।

जो अंग होवे अर्स की, उपजत नहीं अंग आहे।

बारे हजार रुहन में, सो काहे को आप गिनाए।।४२।।

जो सुन्दरसाथ परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कहलाने का दावा तो करते हैं किन्तु उनके हृदय में अपने प्राणेश्वर के लिये विरह की आहें नहीं निकलती हैं तो उन्हें १२ हजार ब्रह्मात्माओं में अपनी गणना करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है अर्थात् वे ब्रह्मसृष्टि हैं ही नहीं।

करवट लेते सूते नींदमें, नाला मारत जे।

याद बिगर किए अंग आवहीं, स्वाद आसिक मासूक के।।४३।।

जो ब्रह्ममुनि निद्रावस्था में भी करवट लेते समय प्रियतम के विरह में ठण्डी आहें भरते हैं, उन्हें अपने आराध्य को याद नहीं करना पड़ता क्योंकि उनके हृदय में युगल स्वरूप की छवि अखण्ड रूप से बसी होती है। इस प्रकार आशिक ब्रह्ममुनि अपने प्रेमास्पद युगल स्वरूप की शोभा एवं मूल सम्बन्ध का निरन्तर रसास्वादन करते रहते हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में शरीयत एवं तरीकत (उपासना) को ही सर्वोपरि मानने वालों के ऊपर एक व्यंग्यात्मक हास्य किया गया है। सामान्यतः कर्मकाण्ड या उपासना के मार्ग पर चलने वाला गहरी निद्रा में सोता है, और अपने निश्चित समय पर पूजा—पाठ, मानसिक जप आदि के द्वारा अपने आराध्य की स्तुति करके अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेता है। इसके विपरीत हकीकत (ज्ञान) तथा मारिफत (विज्ञान) के मार्ग पर चलने वाला एक ब्रह्ममुनि प्रेम मार्ग का अनुसरण करता है। एकान्त पाते ही वह अपने सर्वस्व के रूप माधूर्य का रसपान करने में इतना डूब जाता है कि वह गहन समाधि की अवस्था में चला जाता है। सामान्य अवस्था में ब्रज की गोपियों, चैतन्य महाप्रभु या रामकृष्ण परमहंस की तरह भावलीनता में इतना डूबा रहता है कि उसे हर पल अपने प्राणवल्लभ की सामीप्यता का आभास होता है। सांसारिक कार्यों को करते समय भी उसका आधा मन अपने जीवन के आधार युगल स्वरूप में खोया रहता है। स्थिति ऐसी बन जाती है कि मन सोने की इच्छा तो नहीं करता किन्तु प्रकृति के नियमों की विवशता उसे सोने के लिये बाध्य तो कर देती है किन्तु हृदय में धधकती हुई विरह की ज्वाला उसे गाढ़ निद्रा में सोने नहीं देती, परिणामस्वरूप उसे करवट लेते समय भी ऐसा लगता है कि मेरा प्राणेश्वर मेरे पास ही प्रत्यक्ष रूप से खड़ा है। नेत्र भले ही बन्द होते हैं, किन्तु हृदय की आंखें अपने सर्वस्व को निहार रही होती है।

हे साथ जी! इस अवस्था को प्राप्त करने वाले ब्रह्ममुनि के लिये क्या पूजा—पाठ, परिक्रमा

करना सम्भव है ? क्या ब्रज लीला में गोपियों ने किसी भी प्रकार का कर्मकाण्ड, पूजा-पाठ, जप आदि किया था ? यदि नहीं, तो परमधाम की प्रेममयी चितवनी के स्वर्णिम मार्ग को छुड़ाकर कंकड़-पत्थरों के कंटीले मार्ग पर समाज को क्यों चलाया जा रहा है ?

जो होए आवे मोमिन रूह से, सो कबू ना और सों होए ।

इत चली जो रूह जगाए के, सो सोभा लेवे ठौर दोए ॥४४॥

परमधाम की ब्रह्मांगनायें चितवनी के जिस प्रेममयी मार्ग पर चलती हैं, संसार के जीव उस पर कभी भी चल नहीं पाते। उनके लिये तो कर्मकाण्ड और उपासना ही सर्वोपरि है और उसे वे बलपूर्वक सबके ऊपर थोपने का भी प्रयास करते हैं। इस प्रकार, चितवनी के प्रेम मार्ग का अनुसरण करके जो अपनी आत्मा को जागृत कर लेता है वह इस संसार में भी धन्य-धन्य होता है और परात्म में भी जागृत होने पर धन्य-धन्य होता है।

देख बिछोहा हादी का, पीछा साबित राखे पिंड ।

धिक धिक पड़ो तिन अकलें, सो नहीं वतनी अखंड ॥४५॥

अपने प्राणेश्वर का प्रत्यक्ष वियोग देखकर भी जो अपने शरीर के मोह के कारण उसके भरण-पोषण में ही लगा रहता है, उसकी बुद्धि को धिक्कार है। निश्चित रूप से वह परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कहलाने का अधिकारी नहीं है।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाई में प्रेमोन्माद की अवस्था का वर्णन किया गया है। जो इस अवस्था में पहुंच जाता है, उसके लिये शरीर और संसार का समस्त वैभव एक तिनके के समान तुच्छ प्रतीत होता है। ऐसी दशा में शरीर को रखना उसके लिये सम्भव नहीं होता। यही कारण है कि श्री जी की अन्तर्धान लीला के समय लगभग २५ सुन्दरसाथ ने अपना तन छोड़ दिया था।

किन्तु निरन्तर चितवनी में डूबे रहने से जो पहले ही अपने मन से मर चुके होते हैं, वे मात्र बाह्य रूप से ही संसार में अपने तन को धारण किये होते हैं। स्वयं महाराजा छत्रसाल जी ने भी अपनी तलवार से अपना प्राणान्त करना चाहा, किन्तु श्री ली ने उन्हें ऐसा करने नहीं दिया। श्री लालदास जी भी अपना तन छोड़ना चाहते थे, किन्तु श्री राज जी के आदेश ने उन्हें ऐसा करने नहीं दिया। स्वयं श्री मिहिरराज जी भी सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धाम गमन के पश्चात् शरीर को रखना नहीं चाहते थे, किन्तु उस तन से ब्रह्मलीला होनी थी, अतः उस तन को रखना अनिवार्य था। क्या इस स्थिति में यही माना जाय कि महाराजा छत्रसाल जी एवं श्री लालदास जी ब्रह्ममुनि नहीं थे ?

ऐसा कदापि नहीं है, अपितु चौपाई का भाव यह है कि अपने प्राणेश्वर, आराध्य स्वरूप श्री जी के अन्तर्धान होने पर जो संसार के वैभव, सुख एवं प्रतिष्ठा के मोह में शरीर को पालता है, वह ब्रह्मसृष्टि नहीं है किन्तु यदि चाहकर भी कोई सुन्दरसाथ अपना तन नहीं छोड़ पाता है, किन्तु श्री राज जी के प्रेम में इस प्रकार डूबा रहता है कि उसे अपने शरीर का न तो कोई मोह रहता है और न संसार के वैभव-विलास को भोगने की उत्कण्ठा रहती है, न पद-प्रतिष्ठा के प्रति कोई आकर्षण रहता है, वह व्यक्ति शरीर से जीवित रहते हुए भी मन से मरा हुआ ही होता है। ऐसी अवस्था में ब्रह्ममुनि अपने शरीर की शेष आयु को पूर्ण करते हैं। इस तथ्य को इस घटना से सरलतापूर्वक

समझा जा सकता है कि मुहम्मद साहब के देहत्याग के पश्चात् जब हजरत अली उन्हें धरती में दफना रहे थे, उस समय अबूबक्र, उमर और उस्मान एक कक्ष में खलीफा पद के लिये मंत्रणा कर रहे थे। उन्हें मुहम्मद स. के देहत्याग का कोई दुःख नहीं था। अपितु स्वयं को मुहम्मद साहब का निकटस्थ दर्शाकर मुस्लिम जगत का खलीफा बनना उनकी प्राथमिकता थी। उन्होंने आपस में मन्त्रणा करके स्वयं ही अबूबक्र को खलीफा पद के लिये चुना तथा बाद में अपने लिये खलीफा पद भी सुरक्षित कर लिया। इनके विपरीत हजरत अली को मुहम्मद साहब के वियोग का दुःख था और उनके हृदय में अपने रसूल के लिये अगाध श्रद्धा, विश्वास और समर्पण का भाव था।

लाहूत बका फना नासूत, ए तौल देखो दोए।

चिरकीन जिमी सें निकस के, क्यों न लीजे बका खुसबोए॥१०२॥

परमधाम अखण्ड है, जबकि यह मृत्युलोक नश्वर है। हे साथ जी! इन दोनों का मूल्यांकन कीजिए। आप चितवनी के द्वारा गन्दगी से भरपूर इस पृथ्वीलोक से परे होकर परमधाम की सुगन्धि का आनन्द क्यों नहीं लेते हैं ?

भावार्थ— प्रत्येक प्राणी का शरीर जहां मल (गन्दगी) से भरा होता है, वहीं बड़े-बड़े नगरों के नालों से गन्दगी ही गन्दगी निकलती है। इसके विपरीत परमधाम के कण-कण में करोड़ों सूर्यों का प्रकाश है, अपार सौन्दर्य है, सुगन्धि है और चेतनता है। ऐसी अवस्था चितवनी में न डूबना कितनी विवेकहीनता है ?

जान बूझके भूलिए, इलम पाए बेसक।

देखो दिल विचार के, क्यों राजी करोगे हक॥१०३॥

हे साथ जी! आपने संशय रहित कर देने वाला श्री कुल्जुम स्वरूप का अलौकिक ज्ञान पाया है। ऐसी अवस्था में आप जानकर अपने प्राणेश्वर को क्यों भूले हुए हैं ? आप अपने हृदय में इस बात का विचार कीजिए कि अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को आप कब और किस प्रकार रिझायेंगे ?

जीवते मारिए आपको, सब्द पुकारत हक।

जो जीवते न मरेंगे मोमिन, तो क्या मरेंगे मुनाफक॥१०४॥

श्री कुल्जुम स्वरूप में अक्षरातीत के कहे हुए शब्द बार-बार पुकार करके यही कह रहे हैं कि अपने प्रियतम के प्रेम में जीते जी अपने मन की इच्छाओं को समाप्त कर दीजिए। यदि ब्रह्ममुनि ही शरीर के जीवित रहते हुए अपनी इच्छाओं को नहीं मारेंगे तो क्या वे मिथ्यावादी लोग मारेंगे जो सामने तो ज्ञान एवं भक्ति का नाटक करते हैं किन्तु छिपकर विषय भोगों में लिप्त रहते हैं ?

द्रष्टव्य— स्वयं को मारने का तात्पर्य है अपने मन की समस्त लौकिक चाहनाओं को समाप्त कर प्रियतम अक्षरातीत के प्रति समर्पित हो जाना।

फुरमाए कलाम सब रूहों को, ए मोमिन करें सहूर।

इन अंधेरी से निकस के, क्यों न जैए पार नूर॥१०५॥

श्री कुल्जुम स्वरूप में सभी ब्रह्मात्माओं को सम्बोधित करके कहा गया है। उन कथनों का

गहन चिन्तन परमधाम के ब्रह्ममुनि ही करते हैं। हे साथ जी ! आप चितवनी के द्वारा अज्ञानता के अन्धकार से परिपूर्ण इस नश्वर जगत को छोड़कर अक्षरब्रह्म से परे परमधाम के मूल मिलावे में जाकर अपने प्राणेश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन क्यों नहीं करते हैं ?

हक हुकम हादी चलावते, क्यों न लीजे अर्स राह ।

मूल सरूप ले दिल में, उड़ाए दीजे अरवाह ॥१०६॥

इस नश्वर जगत में श्री प्राणनाथ जी मूल स्वरूप श्री राज जी के निर्देशों को क्रियान्वित कर रहे हैं। आप उनका आदेश मानकर परमधाम की चितवनी में क्यों नहीं लग जाते ? आप चितवनी के द्वारा मूल स्वरूप श्री राज श्यामा जी की अनुपम शोभा को अपने धाम हृदय में बसाइये तथा अपनी आत्मा को उनके प्रेम में पूर्णतया समर्पित कर दीजिए।

चलना सबों सिर हक है, ए जान्या सबों तेहेकीक ।

पर आप बस कोई न चल्या, चले एक दूजे की लीक ॥१०७॥

संसार के सभी लोग निश्चित रूप से यह जानते हैं कि अन्ततोगत्वा सभी को एक परब्रह्म की भक्ति के मार्ग पर ही चलना पड़ेगा, क्योंकि वे ही सबके स्वामी हैं। किन्तु यह जानते हुए भी कोई अपने मन को वश में करके उनके प्रेम मार्ग पर नहीं चलता। सभी एक दूसरे की देखा-देखी विषयों में सुख शान्ति की कामना से भागते चले जा रहे हैं।

जो कोई इत जागिया, सो क्यों चले परवस ।

सब सावचेत सुरत बांध के, बीच उठिए अपने अर्स ॥१०८॥

तारतम ज्ञान के प्रकाश में जो यहां जागृत हो जाएगा, वह संसार के जीवों की देखा-देखी उस अंधकार से परिपूर्ण विषय-भोग के मार्ग पर क्यों चलेगा ? हे साथ जी! आप सभी माया से सावधान हो जाइये और अपनी अन्तर्दृष्टि (सुरता) को एकाग्र कर अपने परमधाम के पच्चीस पक्षों और युगल स्वरूप की शोभा में डूब जाइये।

जो जागी इत होएसी, तिनका एही निसान ।

मूल सरूप ले सुरत में, पट खोलिए कर पेहेचान ॥१०९॥

मूल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की शोभा को अपने धाम हृदय में बसाइये और माया का आवरण हटाकर उनकी पूर्ण पहचान कीजिये। परमधाम की जो भी आत्मा इस संसार में जागृत होगी उसकी स्पष्ट पहचान यही है।

भावार्थ— इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित 'सुरत' शब्द का अर्थ कहीं स्वरूप होता है तो कहीं 'आत्मदृष्टि' अर्थात् 'सुरता' को भी 'सुरत' कहा जाता है। जैसे— 'सुरत धनी सों बांध के चलिए, ले विरहा रस प्रेम काम' — किरन्तन ८६/६।

भला कहे दुनियां मिने, न भूलिए अपने तन ।

हक हादी रूहें बीच खिलवत, उठिए बीच बका वतन ॥११०॥

भले ही आपको इस संसार में कितनी ही प्रतिष्ठा क्यों न मिल जाये (कितने ही लोग प्रशंसा क्यों न करें), किन्तु अपनी परात्म को कभी भी न भूलें अर्थात् यह हमेशा ध्यान रखिये कि आपका वास्तविक स्वरूप मूल मिलावे में विद्यमान है। हे साथ जी! मूल—मिलावे में श्री राज श्यामा जी ब्रह्मांगनाओं के बीच में सिंहासन में विराजमान हैं। अपनी अन्तर्दृष्टि से परमधाम के मूल—मिलावे में जाकर उस शोभा को निहारिये।

जो मसलहत कर चलिए, अर्स रूहें मिल कर।

अपनी जुदाई दुनी से, सो क्यों होए इन बिगर॥१११॥

आप१ परमधाम के सभी ब्रह्ममुनि मिलकर मेरे इन कथनों पर विचार कीजिये और चितवनि के प्रेम मार्ग पर चलिये। ऐसा किये बिना इस दुःख भरे संसार से अपने को अलग करने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

अपनी जुदाई दुनी से, किया चाहिए जहूर।

दोऊ एक राह क्यों चलें, वह अंधेरी एह नूर॥११२॥

स्वयं को इस दुःखमयी संसार से अलग करने वाले चितवनि के प्रेममार्ग का प्रसार होना चाहिये। ब्रह्मसृष्टि और जीव दोनों एक ही मार्ग पर नहीं चल सकते हैं। संसार के जीव निराकार से उत्पन्न हुये हैं इसलिए संसार के विषय—भोग ही उनके लिए सुख के साधन प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत परमधाम की आत्माएं तो श्री राज जी के नूरी अंग हैं। भला वे संसार के क्षणिक सुखों के पीछे क्यों भागेंगी ?

महामत कहे सुनो मोमिनो, मेहेर हक की आपन पर।

सब अंगों देखो तुम, तब खुले रूह की नजर॥११३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! प्राणेश्वर अक्षरातीत की हमारे ऊपर अपार कृपा है कि चितवनि का यह प्रेम मार्ग हमें प्राप्त हुआ है। अब आप चितवनि के स्वर्णिम पथ पर चलकर युगल स्वरूप के सभी अंगों की शोभा में अपने को डुबोइये जिससे आपकी आत्मिक दृष्टि खुल जाये।

प्रकरण २

मेयराज हुआ महंमद पर, कोई और न आया ढिग इन।

सो आखिर ईसा इमामें, किए मेयराज में सब मोमिन॥४०॥

अब से पहले मात्र मुहम्मद स. को ही परब्रह्म का साक्षात्कार हुआ था। अन्य कोई भी महापुरुष यह सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सका था। कियामत के समय में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी तथा श्री प्राणनाथ जी ने ब्रह्ममुनियों को चितवनी का मार्ग बताकर परमधाम तथा अक्षरातीत श्री राजश्यामा जी के दर्शन करने का द्वार खोल दिया अर्थात् स्वर्णिम अवसर प्रदान किया।

खूबियां आखिर बखत की, किन मुख कही न जाए।

खूबी कहिए तिन की, जो सब्द माहें समाए॥४१॥

कियामत का यह ऐसा सुनहरा समय है जिसमें सबके लिये प्रियतम अक्षरातीत के दर्शन का द्वार खुला हुआ है। इसकी विशेषताओं का वर्णन किसी भी मुख से नहीं हो सकता। वर्णन तो तब हो जब शब्दों में उसे बांधा जा सके। जो विशेषता शब्दातीत हो, उसे कैसे कहा जाय ?

बड़ा कियामतनामा

प्रकरण ६

ए जो चौदे तबक की जहान, इनकी फिकर लग आसमान।

जब लग आए रसूल महंमद, किने न छोड़ी अक्सा मसजिद॥६॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में जो भी योगी-यति, पीर-फकीर हैं, उनका चिन्तन निराकार तक ही सीमित है। जब तक मुहम्मद सहब इस संसार में नहीं आये थे, तब तक किसी ने भी इब्राहीम पैगम्बर की बनायी हुई अक्सा मस्जिद को नहीं छोड़ा था अर्थात् सभी निराकार की ही भक्ति करते रहे थे।

भावार्थ— श्री जी ने कुल्जुम स्वरूप के द्वारा निराकार के पार के पार परमधाम का ज्ञान दिया है और सभी को कर्मकाण्ड (शरीयत) से छुड़ाकर चितवनी के ज्ञान द्वारा परमधाम की हकीकत मारिफत का मार्ग दर्शाया है।

और लिख्या मेयराजनामें माहीं, जब हुआ मेयराज रसूल के ताई।

रसूल चले पाउं सिर दे, संग एक जबरार्इल ले॥७॥

मेयराजनामें लिखा है कि जब मुहम्मद स. को मेयराज हुआ तो वे जिब्रील फरिश्ते के साथ मन से भी अधिक तीव्र गति से चले।

भावार्थ— शिर पर पैर रखकर चलना एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ होता है— मन से भी अधिक वेग से चलना। परब्रह्म का साक्षात्कार आत्मिक दृष्टि से ही होता है, जिसका वेग मन से भी अधिक माना जाता है।

चौद तबक की खबर भई, ला मकान हवा को कही।

निराकार कहिए सुन, एही बेचून बेचगून॥८॥

उन्होंने चौदह लोकों के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखा। इसके पश्चात् वे उस मोहतत्व (ला मकान) में प्रवेश किये जिसे हिन्दू-धर्मग्रन्थों में निराकार, महाशून्य तथा कतेब ग्रन्थों में बेचून-बेचगून कहा जाता है।

भावार्थ— यद्यपि बेचून-बेचगून का शाब्दिक अर्थ अनुपम अद्वितीय ही होता है किन्तु तारतम ज्ञान (इल्म ए लदुन्नी) से रहित संसार के लोगों ने निराकार को ही परमात्मा मानकर ये विशेषण उसके साथ जोड़ दिया है। यही कारण है कि उक्त चौपाई में निराकार को ही बेचून, बेचगुन गया है।

छोड़ याको आगे को गए, नूर बनमें दाखिल भए।

जबरार्इल रह्या इन ठौर, ला मकान से ए मकान और॥९॥

इस निराकार को पार करके वे बेहद मण्डल (जबरुत) में गये, जहां वे सत्स्वरूप से आगे

परमधाम के नूर वन में प्रवेश कर गये। जिब्रील सत्स्वरूप में ही रुक गया। यह धाम निराकार से पूर्णतया भिन्न है।

भावार्थ— सत्स्वरूप अक्षर ब्रह्म के अहम् का स्वरूप है। अतः अक्षर धाम का क्रियात्मक स्वरूप सत्स्वरूप को ही माना जाता है। परमधाम के अन्दर अक्षर ब्रह्म का रंगमहल अवश्य है, किन्तु अक्षर ब्रह्म उसमें की उसमें कोई भी लीला नहीं होती है। उनकी लीला का धाम बेहद मण्डल (जबरुत) है। सत्स्वरूप से आगे सर्वरस सागर की भूमिका आती है, जिसे परमधाम के ही अन्तर्गत माना जाता है।

आगे चल न सक्या क्योंहीं कर, नूर तजल्ली जलावे पर।

तहां पोहोंचे रसूल एक, तित अनेक इसारतें कही विवेक॥१०॥

जिब्रील सत्स्वरूप से आगे नहीं जा सका। परमधाम के तेज से उसके पर (पंख) जलने लगे। उस परमधाम में एकमात्र मुहम्मद साहब ही पहुँचे। वहां अक्षरातीत श्री राज जी के सम्मुख पहुँचकर उन्होंने उनके श्री मुख से संकेतों में बहुत सी बातें सुनी।

भावार्थ— जिब्रील इस ब्रह्माण्ड के पक्षी जैसा कोई स्वरूप नहीं है, जिसके पंख होते हैं। पंख जलना भी एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ होता है— शक्ति रहित हो जाना, असमर्थ हो जाना। इसी प्रकार पंख होने का तात्पर्य है— सामर्थ्यवान् होना। पंख काट देने का अर्थ है— शक्ति को नष्ट कर देना।

प्रकरण ८

पैगंमर हजरत, निमाज अदा इन सरत।

ऊपर से आयत आई, तब नजर आसमान से फिराई॥४॥

मुहम्मद स. एकान्त में बन्दगी करते (नमाज़ पढ़ते) समय आकाश की ओर देखकर परब्रह्म से दुआ मांगा करते थे (प्रार्थना किया करते थे)। उस समय परब्रह्म की ओर से आयत आयी कि हे मुहम्मद! तुम ऊपर क्यों देखते हो ? अपने हृदय में देखो तथा अपनी आत्मिक दृष्टि से प्रणाम (सिज्दा) करो। ऐसी आयत आने पर मुहम्मद साहब ने आकाश की ओर देखना बन्द कर दिया तथा अपनी आत्मिक दृष्टि से (आत्म स्वरूप से) बन्दगी करता प्रारम्भ कर दिया।

किया सिजदा मूल वतन, जो दरगाह बड़ी है रोसन।

यों कह्या बीच लवाब, ए हमेसां मूल सवाब॥५॥

इसके पश्चात् मुहम्मद स. ने अनन्त शोभा वाले अपने मूल घर परमधाम में ध्यान किया तथा अपने आत्म स्वरूप से परब्रह्म के चरणों में प्रणाम किया। लवाब ग्रन्थ में लिखा है कि इस प्रकार की बन्दगी करने से सर्वदा ही अखण्ड आनन्द प्राप्त होता है।

जो बका साहेब का धर, रखो दीदे धनी नजर।

ए सिजदा तब पाइए, खूबी घर की देखी चाहिए॥६॥

अनादि परमधाम में अक्षरातीत का निवास है, अतः अपनी आत्मिक दृष्टि को परब्रह्म के चरणों में बनाये रखना चाहिए। जब अपने हृदय में परमधाम की शोभा को देखने की इच्छा होती है, तभी

इस प्रकार ध्यान द्वारा आत्मिक दृष्टि से परब्रह्म को प्रणाम किया जाता है।

जब ए हुई खुसाली, तब भूले सिजदे खाली।

निमाज के बखत दिल धर, छूटी दाएं बाएं नजर॥७॥

जब ध्यान द्वारा परब्रह्म को प्रणाम करने से परमधाम का आनन्द मिलता है तब शरीयत के सिजदे भूलजाते हैं अर्थात् कर्मकाण्ड की भक्ति बन्द हो जाती है। बन्दगी (नमाज) के समय अपने हृदय में आत्मिक स्वरूप से परमधाम का ध्यान करने से लोगों ने शरीयत की नमाज के समय अपने दायें-बायें शैतान को देखना बन्द कर दिया अर्थात् तारतम ज्ञान के प्रकाश में लोगों ने शरीयत की नमाज बन्द कर परमधाम की चितवनी (ध्यान) करना प्रारम्भ कर दिया।

हुआ साहेब का करम, पाया भेद बीच हरम।

हुई कबूल निमाज इन हाल, हुए साहेब सों खुसहाल॥८॥

श्री राज जी की कृपा दृष्टि से श्री कुलजुम स्वरूप के द्वारा रंगमहल-मूलमिलावे का ज्ञान प्राप्त हो गया। वहां की चितवनि करने से आत्मिक दृष्टि श्री राज जी के चरणों में पहुंची और उनका दर्शन करके आनन्दित हुई।

सिर से छूट गया करज, हुए मोमिन बेगरज।

छूटा मूल जो हुकम, दुआ सिजदा हजूर कदम॥९॥

जब ब्रह्ममुनियों ने चितवनी के द्वारा मूल मिलावे में श्री राज जी के चरणों में प्रणाम किया तो उनके ऊपर से उस हुक्म (आदेश) का बन्धन छूट गया जो इस संसार में आते समय प्राणेश्वर अक्षरातीत ने दिया था। ऋण पूरा करने की भांति कर्मकाण्ड की भक्ति करने का बोझ भी उनके शिर से हट गया और ब्रह्ममुनि परमधाम के प्रेम में डूबकर सांसारिक इच्छाओं से रहित हो गये।

भावार्थ- परमधाम से खेल में आते समय श्री राज जी ने कहा था कि तुम मुझे माया में जाकर भूल नहीं जाना। खेल में आकर ब्रह्मात्माएं उस आदेश का बोझ तब तक ढो रही थी, जब तक चितवनि के द्वारा उनका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो गया। इसके पश्चात् ही उनका यह दावा हो सकता है कि माया में भी हमने आपको भुलाया नहीं। इसे ही हुक्म के बन्धन से छूटना (मुक्त होना) कहा गया है।

सो ए करता हों मैं तफसीर, जुदे कर देऊं खीर और नीर।

पेहेले था बेहेरुल्लहैवान, तब तो तिनमें था फुरमान॥१०॥

इसलिये अब मैं सत्य और असत्य को अलग करके परब्रह्म की सच्ची प्रेम लक्षणा भक्ति की व्याख्या करता हूँ। पहले अरब की धरती पर पशुवृत्ति थी अतः कुर्आन के ज्ञान द्वारा सबको शरीयत के मार्ग पर चलाया गया।

अब दरिया हुआ हक, इनमें न रहे किसी की सक।

दरिया हक बीच मजकूर, कहा जाहेर खुसाली नूर॥११॥

अब तारतम ज्ञान के प्रकाश में चितवनि करने में ब्रह्मात्माओं का हृदय प्रेम का सागर (इश्क का दरिया) हो गया है। इस अवस्था में अपने आराध्य के प्रति किसी के भी मन में संशय रह ही नहीं सकता है। जब हृदय में प्रेम के सागर की लहरें उमड़ती हैं तो प्रियतम से प्रत्यक्ष वार्ता होती है और नूरमयी परमधाम का अखण्ड आनन्द स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है।

सुरत दाएं बाएं भान, सिर आगूं धरिया आन।

खड़ा रहे दोऊ हाथ पकर, सो सके हजूर बातां कर॥१२॥

अपनी आत्मिक दृष्टि (सूरता) को दायें-बायें अर्थात् संसार में या दज्जाल को खोजने में न लगाकर शिर के आगे रखो (ज्ञान दृष्टि से प्रेम के सहारे परमधाम की ओर ले चलो)। जो अपने दोनों हाथों से अर्थात् पूर्ण विश्वास से युगल स्वरूप के चरणों को पकड़े रह सकता है, वहीं श्री राज जी से प्रत्यक्ष वार्ता करने में सक्षम हो सकता है।

भावार्थ— शिर ज्ञान एवं निष्ठा का प्रतीक है। चितवनि करते समय सूरता को शिर के आगे रखने का अभिप्राय है संसार से अपने मन को हटाकर केवल मूल—मिलावे एवं युगल स्वरूप की शोभा का भाव बनाये रखना। इसके साथ प्रेम की रसधारा का होना अनिवार्य है। दोनों हाथों से युगल स्वरूप के चरणों को पकड़ कर खड़ा रहने का आशय यह है कि अटूट विश्वास, प्रेम एवं समर्पण के साथ मूल मिलावे में अपनी एकाग्रता को बनाये रखना, तुरन्त संसार में वापस नहीं आ जाना।

हुआ साहेबसों परस, दिल से छूटी हवा हिरस।

भेद पाया सिर हक, मासूकी दरिया बीच हुआ गरक॥१३॥

प्रियतम का दीदार होने के पश्चात् हृदय में किसी भी प्रकार का लोभ या तृष्णा नहीं रह जाती। आत्मा अपने प्राणेश्वर के प्रेम रूपी सागर में डूब जाती है और उनके हृदय में विद्यमान प्रेम, एकत्व, मूल सम्बन्ध आदि के मारिफत (परम सत्य) सम्बन्धी गुह्य रहस्यों को जान जाती है।

सो ए रोसन जहूर निसान, खूबी नूर बिलंद गलतान।

एह बात जिनोंने पाई, बीच तेहेकीक के फुरमाई॥१४॥

उपरोक्त चौपाईयों में चितवनि की प्रक्रिया को ज्ञान द्वारा दर्शाया गया है। इसकी विशेषता परमधाम तथा श्री राज जी के प्रेम में डूबना (गलतान होना) है। इस लक्ष्य को जो प्राप्त कर लेते हैं, वे निश्चय ही ब्रह्ममुनि होते हैं। ऐसा कूर्आन में कहा गया है।

अव्वल एही है निमाज, जो गुजरे साहेब सिरताज।

मिले वाही के तालिब, हुआ चाहिए दोस्त साहेब॥१५॥

इस प्रकार प्रेममयी चितवनी का यह मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति है जिसमें हमारा समय अपने जीवन के आधार, मुकुटमणि प्राणेश्वर की अनन्त शोभा को निहारने में व्यतीत हो जाता है। जो इस प्रेममयी चितवनि के इच्छुक होते हैं और इस मार्ग पर चलते हैं, उन्हें ही श्री राज जी का सच्चा प्रेमी (दोस्त) कहलाने का अधिकार है।

जब तें एह आसा मेटी, तब तो तूं साहेबसों भेंटी ।

जो लों कछू देखे आप, तो लों साहेब सो नहीं मिलाप ॥१६॥

हे आत्मा! जब तूं संसार की आशा-तृष्णा को छोड़ देगी तो तेरा प्रियतम अक्षरातीत से मिलन हो जायेगा। जब तक तुम्हारे अन्दर संसार की कुछ भी अहम् की ग्रन्थि है, तब तक तूं अपने प्राणेश्वर का मधुर दर्शन (शरबत ए दीदार) नहीं कर पाएगी।

जो लों कछुए आपा रखे, तो लों सुख अखंड न चखे ।

तसबी गोदड़ी करवा, छोड़ो जनेऊ हिरस हवा ॥१७॥

जब तक किसी भी व्यक्ति के अन्दर संसार के सौन्दर्य, पद-प्रतिष्ठा, विद्या, धन आदि का कुछ भी अहंकार है, तब तक वह व्यक्ति अखण्ड सुख का रसास्वादन नहीं कर सकता। इसलिये अपनी भक्ति के अहंकार को प्रदर्शित करने वाले माला, गुदड़ी, चिप्पी, यज्ञोपवित (जनेऊ) आदि के प्रदर्शन को छोड़ दो। इसके अतिरिक्त अपने मन में छिपी हुयी तृष्णा तथा लौकिक सुखों के लोभ का भी परित्याग कर दो।

दोऊ जहान को करो तरक, एक पकड़ो जो साहेब हक ।

या हँस कर छोड़ो या रोए, जिन करो अंदेसा कोए ॥१८॥

हिन्दू और मुसलमान की साम्प्रदायिक कट्टरता रुपी संसार को छोड़कर एक अक्षरातीत सच्चिदानन्द परब्रह्म की छत्रछाया में आ जाओ। प्रियतम के प्रेम में हंसते हुये संसार का मोह छोड़ दो अन्यथा रोते हुये तो छोड़ना ही पड़ेगा। मेरे इस कथन में किसी भी प्रकार का संशय न रखो।

इनके साथ बीच हक, कोई बांधे कौल खलक ।

निगाह रखे खड़ा रहे आप, सुरत आयत करे मिलाप ॥३२॥

ब्रह्मात्माओं के धाम हृदय में प्रियतम अक्षरातीत का निवास होता है। जीव-सृष्टि में कोई-कोई महापुरुष इसी भाव से अपने कथनों में परब्रह्म का निवास मानते हैं, जबकि वे स्वाप्निक होते हैं और मोह सागर में उत्पन्न हुए होते हैं। एक ब्रह्ममुनि सर्वदा ही इस बात का ध्यान रखता है कि उसकी इन्द्रियां अपने राजा मन के आदेश पर विषयों की ओर आकर्षित न होने पाएं। वह परब्रह्म के प्रति एकनिष्ठ प्रेम एवं अटूट विश्वास के साथ दृढ़तापूर्वक स्थित रहता है। ब्रह्ममुनियों का समूह आपस में श्री कुल्जम स्वरूप के प्रकरणों तथा चौपाईयों के सम्बन्ध में गहन चिन्तन करता है।

कोई निगाह रखे निमाज करे, हमेसां कबहूँ ना फिरे ।

रखे अदब बंदगी सरत, फुरमाया अदा सोई करत ॥३३॥

ब्रह्ममुनि आत्म-निरीक्षण एवं विवेक के द्वारा मन को विषयों में भटकने से रोकते हैं और युगल स्वरूप की प्रेममयी चितवनि से विमुख नहीं होते हैं। उसके हृदय में अपने प्राणेश्वर के प्रति अटूट सम्मान भरा होता है। अपने समय पर चितवनि वे अवश्य करते हैं। श्री जी ने श्री कुल्जुम स्वरूप में जो भी निर्देश दिया है, उसका वे निष्ठा-पूर्वक पालन करते हैं।

मुलथें बंदगी करे जिकर, करे सिफत निकोई आखिर।

ए जो मुतकी मुसलमान, करी इसारत ऊपर ईमान॥३४॥

परमधाम के ब्रह्ममुनि परात्म की भावना से परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप की चितवनि करते हैं तथा श्री प्राणनाथ जी को उन्हीं का आवेश स्वरूप मानकर उनकी सेवा करते हैं, उनकी आपस में चर्चा करते हैं तथा दिव्य लीलाओं की महिमा गाते हैं। ईश्वरीय सृष्टि के जो सुन्दरसाथ हैं, उनका भी संकेतों में वर्णन किया गया है। वे भी अटूट विश्वास के साथ श्री जी की सेवा एवं बन्दगी में तल्लीन रहते हैं।

बंदगी एही है बुजरक, दूजी पाक गिरो बीच हक।

गिरो मोमिन जमें करें, छे सिफतें वारसी धरें॥३५॥

ब्रह्मसृष्टियों के द्वारा की जाने वाली प्रेममयी चितवनि का मार्ग सर्वोपरि है। ईश्वरी सृष्टि के द्वारा अटूट श्रद्धा-विश्वास के साथ युगल स्वरूप का ध्यान किया जाता है। ब्रह्ममुनि स्वाभाविक रूप से इन छः निधियों अटूट विश्वास, प्रेम, अखण्ड ज्ञान, जोश, परब्रह्म की मेहर तथा आदेश के उत्तराधिकारी होते हैं और इन्हें अपने हृदय में संभालकर रखते हैं।

और जेती कोई वारसी नाम, सो ना पकड़ें हाथ हराम।

जिनों किया साहेब तेहेकीक, लई मिरास अल्ला नजीक॥३६॥

परब्रह्म की निधियों के उत्तराधिकारी जो ब्रह्ममुनि हैं वे संसार के विषयों, तृष्णाओं तथा लौकिक पद-प्रतिष्ठा से सर्वदा दूर रहते हैं। जिन्होंने श्री प्राणनाथ जी को श्री अक्षरातीत के रूप में पहचाना है, वे चितवनि के द्वारा अपने प्राणेश्वर के निकटस्थ होने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् उनका साक्षात्कार कर लेते हैं।

जिनों भिस्त बिलंदी पाई, गिरो बड़े मरातबे पोहोंचाई।

लई औरों भिस्त मीरास, जो रहे मोमिन बीच विलास॥३७॥

श्री प्राणनाथ जी की छत्रछाया में रहकर जिन ब्रह्मात्माओं ने परमधाम का ज्ञान ग्रहण किया तथा चितवनि के द्वारा प्रत्यक्ष उसकी अनुभूति की, श्री जी ने उन्हें सब सुन्दरसाथ में बड़ी ऊँची शोभा दी। जिन ईश्वरीय सृष्टियों ने महारास के समय में ब्रह्मसृष्टि के एक-एक तन में दो-दो की संख्या में बैठकर अनन्त आनन्द का रसपान किया था, उन्होंने इस जागनी लीला में भी श्री जी की कृपा दृष्टि से अखण्ड सुख के उत्तराधिकार को प्राप्त किया।

भावार्थ— ईश्वरीय सृष्टि परमधाम का ज्ञान ग्रहण कर चितवनि के द्वारा परमधाम के २५ पक्षों और श्री राज जी का दर्शन कर सकती है। किन्तु निस्वत के स्वरूपों श्री श्यामा जी और ब्रह्मात्माओं के स्वरूपों का साक्षात्कार नहीं कर सकती।

उपरोक्त चौपाई के पहले चरण में 'भिस्त बिलंदी' का तात्पर्य परमधाम से है जबकि इसी चौपाई के तीसरे चरण में 'भिस्त' का आशय सत्स्वरूप की पहली बहिस्त से है। जिसमें परमधाम की सम्पूर्ण ब्रह्मानन्द लीला का प्रतिबिम्ब पड़ेगा। ईश्वरीय सृष्टि इसी बहिस्त के सुख का अधिकार

प्राप्त करेगी।

बिना मोमिन ए जो और, ताको दोजख भिस्त बीच ठौर।

और काफर दोजख में जल, देखें भिस्ती मरें जल॥३८॥

सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में ब्रह्मसृष्टियों के जीव ब्रह्मात्माओं का प्रतिबिम्ब रूप धारण कर अखण्ड होंगे जिसमें परमधाम की लीला का प्रतिबिम्ब पड़ेगा। शेष बेहद मण्डल की सात बहिश्तों वाले इन्हें ही ब्रह्मात्माओं का स्वरूप मानेंगे। सत्स्वरूप में दूसरी बहिश्त ईश्वरीय सृष्टि की होगी। इन दोनों बहिश्तों के अतिरिक्त पूर्व की चार अन्य बहिश्तों तथा बाद की सातवीं को छोड़कर आठवीं बहिश्त में अव्याकृत के स्थूल में जीव प्रायश्चित्त रूपी दोजख की अग्नि में जलकर अखण्ड मुक्ति को प्राप्त होंगे।

प्रायश्चित्त की अग्नि में जलने वाले ये काफिर जीव जब सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में ब्रह्मात्माओं के प्रतिबिम्ब तथा अन्य बहिश्तों वालों को देखेंगे तो दुःख और लज्जा की अग्नि में और अधिक जलेंगे।

भावार्थ— चौपाई ३८ तथा ३९ में जो मोमिन शब्द आया है, उसका तात्पर्य परमधाम के मोमिन नहीं अपितु उनके प्रतिबिम्बित स्वरूपों से है जो सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में होंगे। खेल की समाप्ति के पश्चात् तो परमधाम की आत्मायें अपने मूल तनों में जागृत हो जायेंगी, किन्तु उन्हें बेहद की बहिश्तों वाले कदापि नहीं देख सकेंगे। उन ब्रह्मात्माओं के जो प्रतिबिम्बित स्वरूप पहली बहिश्त में होंगे, शेष सभी सातों बहिश्तों वाले उन्हें ही परमधाम की ब्रह्मात्मायें समझेंगे। श्री मिहिरराज जी का जीव श्री राज जी का स्वरूप बनेगा तथा श्री देवचन्द्र जी का जीव श्यामा जी। सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में इन्हें ही युगल स्वरूप मानकर सभी पूजा करेंगे तथा यही स्वरूप सबका न्याय करेगा। श्री कुल्जम स्वरूप में इस सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है—

मेरे गुण अंग सब खड़े होसी, अरचासी आकार। क.हि. २३/१०४

आगूं हुई ना होसी कबहूँ, हमें धनिएं ऐसी सोभा दर्ई।

सब पूजें प्रतिबिम्ब हमारे, सो भी अखण्ड में ऐसी भई॥ कि. ८१/३

तुम खेल में आए वास्ते, करी कायम जिमी आसमान।

तिन सबके खुदा तुमको किए, बीच सरभर लाहूत सुभान॥ श्रृं. २६/१२६

हुए इन खेल के खावंद, प्रतिबिम्ब मोमिनो नाम।

सो क्यों न ले इस्क अपना, जिन अरवा हुज्जत स्यामा स्याम॥ श्रृं. २१/८८

प्रकरण ६

किताब इलाही उत्तरी, गैब से आई इत।

महीने आठ लों उत जुध हुआ, चले मदीने से इन सरत॥६॥

अनूप शहर में श्री महामति जी के धाम हृदय से श्री राज जी के जोश एवं आवेश द्वारा अखण्ड ज्ञान देने वाले सनद ग्रन्थ का अवतरण हुआ। इसी ज्ञान के आधार पर ब्रह्मात्माओं ने औरंगजेब बादशाह से धर्मयुद्ध किया। जब सूरत से श्री जी जागनी कार्य के लिये निकले तो इस अन्तराल

की यह महान घटना है।

भावार्थ— 'गैब' का तात्पर्य मन, बुद्धि से परे त्रिगुणातीत स्थान से है। इसका आशय परमधाम से होता है। सामान्यतः जब तारतम ज्ञान का अवतरण होता था तो यही समझा जाता था कि श्री महामति जी कह रहे हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि मूल स्वरूप अक्षरातीत ही अपने आवेश स्वरूप से महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर कह रहे थे, जिसको मुख से व्यक्त करने में जिब्रील और अस्त्राफील की विशेष भूमिका थी। इस तथ्य को श्री कुल्जुम स्वरूप की इन चौपाईयों से जाना जा सकता है—

ये नूर आगे हो आइया, अक्षर ठौर के पार।

ये सब जाहेर कर चल्या, आया निज दरबार॥ क.हि. २४/३४

तुम देखत हो मोहे इन इंड में, मैं चौदे तबक से दूर।

अंतरगत ब्रह्माण्ड थें, सदा साहेब के हजूर॥ कीर्तन ६५/१८

ये बोले माहें बका खिलवत— श्रृंगार का कथन भी इसी ओर संकेत करता है। उपरोक्त चौपाई के दूसरे चरण में 'गैब' से अवतरित होने का यही आशय है।

पाँच किताबें पेहेचान से, हुकमें हाथ दई।

ए साल निन्यानवें लिख्या, गंज छिपे जाहेर भई॥१०॥

अक्षरातीत, परमधाम तथा श्री प्राणनाथ जी की पहचान देने के लिए श्री राज जी के आदेश से पांच ग्रन्थों रास, प्रकाश, खटरुती, कलश तथा सनद ग्रन्थ का अवतरण हुआ। इस समय तक (दूसरे तन) श्री श्यामा जी को तन धारण किये हुये निन्यानब्बे वर्ष होचुके थे अर्थात् वि.सं. १७३७ का समय था। जब श्री जी रामनगर में जागनी लीला कर रहे थे। इसी लीला कालमें परमधाम के गुह्य ज्ञान को प्रकाशित करने वाले अनेक प्रकरण अवतरित हुये।

लकब इद्रीस जान्या गया, सौ साल की मजल।

जित तीस वरक खुदाए के, हुए थे नाजल॥११॥

रामनगर में श्री श्यामा जी के दूसरे तन तक की अवधि सौ साल की हो गयी थी अर्थात् वि. सं. १७३८ का समय था। इस समय उन्हें कतेब पक्ष के इद्रीस की शोभा मिली। इसके तीन वर्ष पूर्व ही अनूपशहर में सनद ग्रन्थ के तीस प्रकरण परब्रह्म के आदेश से अवतरित हुये थे, जिनमें कुर्आन के तीस सिपारों का भाव दर्शाया गया था।

भावार्थ— सनद ग्रन्थ के ४२ (ब्यालिस) प्रकरणों में बारह प्रकरण वेद पक्ष से सम्बन्धित हैं तथा तीस प्रकरण कुर्आन से सम्बन्धित हैं। जिस प्रकार इद्रीस पैगम्बर ने कपड़े के छोटे-छोटे टुकड़ों को सिलकर चादर का निर्माण किया था, उसी प्रकार श्री जी ने वेद-कतेब में छिपे हुए ज्ञान के मोतियों को एकत्रित कर तारतम ज्ञान के सूत्र में ऐसी माला का निर्माण किया, जिसको धारण करने वाला सरलतापूर्वक अक्षरातीत की पहचान कर सकता है। यद्यपि श्री प्राणनाथ जी की उपमा किसी से नहीं दी जा सकती, किन्तु इद्रीस पैगम्बर की तरह ज्ञान रत्नों के संचयन के कारण लौकिक भावों में उन्हें इद्रीस की उपमा दी गयी।

प्रकरण २२

रात निकोइयों को भाने, कूवत हैवानी की आने ।
बंदगी इनसे होवे दूर, सब ढांपे अंधोर मजकूर ॥१०॥

रात तमोगुण और रजोगुण से ग्रस्त जीवों को पतन की ओर ले जाती है और उनमें पाशविक (अज्ञानमयी) प्रवृत्तियों की और अधिक वृद्धि करती है। रात्रि में ऐसे जीवों से भक्ति नहीं हो पाती है। अज्ञानता का अन्धकार इनके सभी आध्यात्मिक भावों को छिपा देता है, जिसके परिणामस्वरूप ये प्रेम-भक्ति में डूबकर अपने आराध्य से आत्मिक वार्ता नहीं कर पाते हैं।

साहेब फतुआत का यों कहे, साहेब रातों के तले रात रहे ।
इनकी नजरों न छिपे दुस्मन, जो कोई हैं साहेब के तन ॥११॥

फतवा-ए-आलमगीर ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि अपनी प्रेममयी चितवनी से रात्रि को भी अपने अधीन करने वाले अर्थात् पूरी रात्रि ध्यान-भक्ति करने वाले ब्रह्ममुनियों के चरणों में यह मायावी रात रहती है जो जीवों को अज्ञानता एवं भोग विलास के अन्धकार में ढकेलती है। अक्षरातीत के प्रत्यक्ष तन कहे जाने वाले इन ब्रह्ममुनि से उनके मायाजन्य शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि छिप नहीं पाते हैं। वे अपनी ज्ञान एवं ध्यान की अग्नि में जलाकर भस्म कर देते हैं।

रातों चलने वाले कहे सेखल इसलाम, करें परदा दुनियां सों चलें आराम ।
दिन के तांई कह्या बाजार, इत बे इन्साफी चलन हार ॥१२॥

रात्रि के समय परब्रह्म का ध्यान करने वालों को शेखुल इस्लाम (शान्ति का अग्रदूत या संवाहक) कहते हैं। वे संसार के लोगों से छिपकर रात्रि के एकान्त में अपने आराध्य की ध्यान द्वारा आराधना करते हैं और आनन्द में मग्न रहते हैं। दिन का समय तो बाजार के कोलाहल की भांति अशान्त होता है, जिनमें शरीयत (कर्मकाण्ड) के मार्ग पर चलने वाले अपनी जिस्मानी एवं नफ्सानी अर्थात् शरीर और इन्द्रियों से होने वाली भक्ति का प्रदर्शन करते हैं और अपने हृदय के साथ एक प्रकार से अन्याय करते हैं, क्योंकि इस प्रकार की दिखावे की भक्ति उनके जीव का कोई कल्याण नहीं कर सकती।

ए जो चले रातों के यार, मैं इन बंदे पाकों की जाऊं बलिहार ।
कह्या जो साहेब का दिन, ओ बखत तलब करें मोमिन ॥१३॥

महाराजा छत्रशाल जी कहते हैं कि जो ब्रह्ममुनि रात्रि का समय अपने प्राणेश्वर के ध्यान में व्यतीत कर देते हैं, उन पवित्र हृदय वाले सुन्दरसाथ के ऊपर मैं स्वयं को समर्पित करता हूँ। कुर्आन हदीसों में जो फज्र (ज्ञान से सवेरा होना) का दिन कहा गया है, ब्रह्ममुनि उसकी खोज में रहते हैं, जिससे वे अपने प्रियतम का दर्शन प्राप्त कर सकें।

भावार्थ— उपरोक्त चौपाई को पढ़कर चितवनि का विरोध कर अपनी शरीयत का झण्डा खड़ा करने वालों को आत्म मंथन करना चाहिए कि वे किस दिशा में जा रहे हैं।

**इत थें अमल भयो इमाम, चालीस बरसों फजर तमाम।
जोड़ा पर जोड़ा गुजरे, दुनियां उमर इत लों करे।।४५।।**

वि.सं. १७३५ के पश्चात् इमाम महदी श्री प्राणनाथ जी के द्वारा जागनी का स्वर्णिम काल (विशेष समय) प्रारम्भ होता है। श्री श्यामा जी के चालीस वर्षों के स्वामित्व की लीला का प्रारम्भ भी यहीं से होता है। इन चालीस वर्षों (वि.सं. १७३५ से १७७५) तक तारतम ज्ञान का प्रकाश चारों ओर फैल गया। कुर्आन के अनुसार जब बीस और बीस का जोड़ा अर्थात् श्री श्यामा जी के स्वामित्व के चालीस वर्ष व्यतीत हो जाएंगे तब संसार की उम्र समाप्त हो जाएगी।

भावार्थ— यद्यपि वि.सं. १७७५ में संसार की उम्र पूरी हो जाती है, किन्तु मोमिनों (ब्रह्मसृष्टियों) के खेल देखने की इच्छा के कारण मूल स्वरूप श्री राज जी ने खेल को लम्बा कर दिया है।

“ए नेक रखी रात खेंच के, सो भी वास्ते तुम।

ना तो लेते अन्दर, केती बेर है हम।।”

यह खेल कब तक चलेगा, इसका ज्ञान मात्र मूल स्वरूप श्री राज जी को ही है। इसलिये बड़ा कयामतनामा प्रकरण २३ चौपाई ४ में कहा गया है कि —ए दिन किने न किया मुकरर, ताए पेहेचानो जिने दई खबर।”

**तिनमें जो दस बरसों फजर, सब दुनियां भई एक नजर।
तीस बरस जब अग्यारहीं पर, तब दुनियां सब भई आखिर।।४६।।**

वि.सं. १७३५ से १७४५ तक दस वर्षों की लीला हुयी उसमें खिल्वत, परिक्रमा, सागर तथा श्रंगार का अवतरण होने से ज्ञान का पूर्ण उजाला फैल गया। सारे संसार की दृष्टि में एकमात्र अक्षरातीत ही उपास्य रह गए। ग्यारहवीं सदी के पश्चात् बारहवीं सदी के जब तीस वर्ष व्यतीत हुए अर्थात् वि.सं. १७४५ से १७७५ तक का समय बीता तो सारे संसार के लिए कयामत का सब कार्य (सम्पूर्ण ज्ञान का अवतरण) पूरा हो गया।

सत्तर बरस पुलसरात के कहे, सो उठने कयामत बीच में रहे।

पुलसरात दुख कहिए क्यों कर, काफर जलें जुलजुले आखिर।।४७।।

बारहवीं सदी के शेष ७० वर्षों में जीव सृष्टि को कर्मकाण्ड की भक्ति के द्वारा पश्चाताप करते हुए स्वयं को जागृत करना था। इस पुलसरात के मार्ग पर चलने वालों के दुःखों का वर्णन कैसे करें ? काफिरों को तो न्याय की लीला में अन्ततोगत्वा प्रायश्चित की अग्नि में जलना ही होगा।

भावार्थ— यदि विवेक दृष्टि से देखा जाय तो ग्यारहवीं सदी के अन्तिम दस वर्षों (वि.सं. १७३५— १७४५) में ब्रह्मसृष्टियों की विशेष रूप से जागनी हुई। इसमें ज्ञान एवं प्रेम मार्ग (चितवनि) की प्रधानता रही। इसके बारहवीं सदी के तीस वर्षों (१७४५ से १७७५) में ईश्वरीय सृष्टि की जागनी की प्रधानता रही जिसमें ज्ञान एवं भक्ति की प्रधानता रही। इसके पश्चात् जीव सृष्टि की प्रधानता वाली जागनी प्रारम्भ हुई जिसमें आंशिक ज्ञान के साथ कर्मकाण्ड की प्रधानता रही। चितवनि (प्रेम मार्ग) का दीपक कहीं-कहीं मात्र ब्रह्ममुनियों के हृदय में ही टिमटिमाता रहा। सुन्दरसाथ का समूह अधिकतर कर्मकाण्ड (सेवा पूजा एवं मन्त्र जप) पर ही आश्रित हो गया। इसकी साक्षी बीतक के

इस कथन से मिलती है—

अग्यारहीं जोलों रही, दिल बड़ो चाह धरे।

फेर ठण्डे पड़ते गये, कहे लाल अंग ठरे।।

अर्थात् ग्यारहवीं सदी में ब्रह्मसृष्टियों की जागनी लीला में ही चितवनि का महत्व रहा। ईश्वरीय सृष्टि की जागनी में चितवनि का थोड़ा महत्व रहा। चितवनि के स्थान पर चर्चनी (ज्ञान दृष्टि से परमधाम में विचरण करने) का प्रचलन अधिक हो गया, किन्तु वि.सं. १७७५ के पश्चात् कर्मकाण्ड की ही प्रधानता रही। इस सम्बन्ध में किरन्तन के ये कथन देखने योग्य हैं—

सब्दातीत निध ल्याए सब्द में, मेट्यो सबन को अंधकार।

तीसे सृष्टि विष्णु सौ बरसें, प्रेमें पीवेगा सब्दों का सार।।

विष्णु को पोहोंचाए ठौर अक्षर हिरदे, बुधजी देंगे खोल के द्वार।

अखण्ड ब्रह्माण्ड बरस पचास पीछे, रेहेसी हिरदे में खुमार।। कीर्तन ५५/१६,१७

स्पष्ट है कि बारहवीं सदी के अन्तिम ७० वर्षों में जीव सृष्टि तारतम ज्ञान का प्रकाश पाकर श्री प्राणनाथ जी के विरह में तड़पती रही फिर भी वह कर्मकाण्ड पर ही आश्रित रही, चितवनि का मार्ग न अपना सकी।

सत्तर बरस लों आग जलाये, तब फिरस्ते दिये चलाए।

अजाजील विरहा आग जल, पीछे असराफीलें किये निरमल।। ब.कि. ६/४२

बारहीं सदी सम्पूरन, ब्रह्माण्ड ने पायो इनाम। के आधार पर वि.सं. १८६५ में जब इस ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति पाने का सौभाग्य प्राप्त हो गया तो ईश्वरीय सृष्टि श्री प्राणनाथ जी की जागनी लीला को याद करके प्रेम में डूबी रही जिसे खुमारी (याद में डूबे रहने) की लीला कहते हैं।

ब्रह्मसृष्टियों की जागनी लीला के पश्चात् जीव सृष्टि किस प्रकार स्वयं की जागनी के लिये व्यथित होती है, इसकी एक झलक सनद ४१/६७ में इस प्रकार है—

जुदी हमसे भगवान की, रुह फिरी एक सोए।

जब फिरे सुनसी हमको, तब घरों आवसी रोए।

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि जीव सृष्टि श्रीजी के विरह में कर्मकाण्ड के मार्ग का अनुसरण करती रही, जिसे पुलसिरात के मार्ग पर चलना कहा गया है। 'पुलसिरात कहे खांडे की धार, गिरे कटे नहीं पावे पार। से यही सिद्ध होता है कि यहां कर्मकाण्ड का ही प्रसंग है, क्योंकि ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरीय सृष्टि तो अपने प्रेम, ज्ञान एवं विश्वास के बल पर पुलसिरात (निराकार को पार कराने वाले पुल) को पार कर जाती है, किन्तु जीव सृष्टि कर्मकाण्ड के मार्ग पर चलती है, जिससे उसके पैर कट जाते हैं, और वह निराकार को पार नहीं कर पाती है।

दस और दोए बुरज जो कहे, सो बारहीं कयामत के पूरे भए।

ए तीसरी बड़ी फरिस्तों की फजर, पीछे उठ खड़ी दुनियां नूर नजर।।४८।।

कुर्आन में १२ बुर्जों का जो वर्णन है, वह बारहवीं सदी में पूर्ण हो जाता है। इस सदी के ७० वर्षों में जीव सृष्टि (तीसरी सृष्टि) के देवी-देवता अर्थात् उत्तम जीव तारतम ज्ञान का प्रकाश पाकर जागृत होंगे और अखण्ड बहिश्तों का अधिकार प्राप्त करेंगे। इसके पश्चात् तेरहवीं सदी में समस्त ब्रह्माण्ड को अक्षर ब्रह्म के बेहद मण्डल में अखण्ड होने का सौभाग्य प्राप्त हो जायेगा।